मृदुला गर्ग

नेशनल पब्लिशिंग हाउस
(स्वत्वाधिकारी : के० एल० मलिक ऐंड संस प्रा० लि०)
२३, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२

शाखाएं
चौड़ा रास्ता, जयपुर
३४, नेताजी सुभाष मार्ग, इलाहाबाद-३

मूल्य : ३७.५०

स्वत्वाधिकारी : के० एल० मलिक ऐंड संस प्राइवेट लि० के लिए नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली-११०००२ द्वारा प्रकाशित / प्रथम संस्करण १९८० / सर्वाधिकार : मृदुला गर्ग / रेखा बुक प्रो०, सरस्वती प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली-११००५३ में मुद्रित ।

ANITYA (Novel) by Mridula Garg Rs. 37.50

आशु-अपु
और
उनकी नई पीढ़ी को

हमारा सारा जीवन ही संघर्षमय और हिंसायुक्त है···हिंसा का कभी प्रयोग न करने की क़सम खा लेने का अर्थ होता है सर्वथा नकारात्मक रुख इख्तियार कर लेना जिसका स्वयं जीवन से क़तई कोई सम्पर्क नहीं होता···

···अगर इतिहास से कोई एक बात सिद्ध होती है, तो वह यह है कि आर्थिक हित ही समूहों और वर्गों के दृष्टिकोण के निर्माता होते हैं। इन हितों के सामने न तो तर्क और न नैतिक विचारों की ही चलती है। हो सकता है कि कुछ व्यक्ति राज़ी हो जाएं और अपने विशेषाधिकार छोड़ दें··· लेकिन समूह और वर्ग ऐसा कभी नहीं करते। इसीलिए शासक और विशेषाधिकार-प्राप्त वर्ग को अपनी सत्ता और अनुचित विशेषाधिकारों को छोड़ देने के लिये रज़ामंद करने की जितनी कोशिशें अब तक की गई वे हमेशा नाकामयाब ही हुई और इस बात को मानने के लिए कोई वजह दिखाई नहीं देती कि वे भविष्य में कामयाब हो जाएंगी···

जवाहरलाल नेहरू

(दोनों उद्धरण 'मेरी कहानी' से)

१

दस क़दम आगे···'दस कदम पीछे'' फिर आगे···पीछे···आगे···बार-बार पीछे। संकरे बरामदे में दोनों सिरों की दीवारें क़दमों पर मुहर लगा रही हैं। दीवार तक और वापिस ···मुड़ना ही होगा···टकराना न चाहो तो।

बरामदे से सड़क दीखती है···सड़क के पार हरियाली। शहर है न। इक्का-दुक्का पेड़ दिख जाए तो समझ लो हरियाली है। ज़रा-सा आभास ही तो चाहिए··· आदमी बहुत कुछ पैदा कर लेता है।

तीन-चार मील घूम आना अविजित के लिए मामूली बात है। लम्बे डग भरना उसकी आदत है। बरामदा इतना संकरा भी नही है कि दस क़दम में पार हो जाए पर जगह की तंगी को देख कर डग छोटे कर लेना···छोड़ो···जिंदगी में क्या कुछ नहीं सीखना पड़ता···

सौ क़दमों में गली पार होती है, हज़ार में सड़क और हरियाली के हाशिये में खिंची सड़क पर क़दम गिनने जरूरी नही रहते। क़दमों की गिनती पर जाएं तो अविजित कब का सड़क पार कर चुका···मन के पीछे-पीछे।

वह घर छोड़कर बाहर नही जा सकता। श्यामा की तबीयत खराब है। श्यामा की तबीयत अक्सर ख़राब रहती है। उसे छोड़कर बाहर नहीं निकला जा सकता। वह अकेलेपन से घबराती है। घबराहट उसकी बीमारी है या अकेलापन? नहीं, वह अविजित की बीमारी है···नही, अविजित को बीमार पड़ने का हक़ नही है···उतना वक़्त नहीं है उसके पास।

श्यामा ने फ़ोन करके उसे दफ़्तर से बुलवाया है—जल्दी आओ, प्लीज़, मेरा दिल डूबा जा रहा है, जल्दी—जल्दी!

'मेरा दिल डूब रहा है, डाक्टर! मुझे बचाओ···सम्भालो मुझे···कोरामीन··· डाक्टर, जल्दी···मेरा दिल डूब रहा है···!'

'किसमें मिसेज़ बंसल···यहां तो कोई पोखर नहीं है। किसमें डूब रहा है आपका दिल?'

डाक्टर खुशमिजाज़ था।

अविजित ने हंसना चाहा था···

काश, ये अल्फाज़ डाक्टर ने उससे कहे होते तो वह खुल कर हंस देता। सच ···अविजित अपने पर हंस भी लेता है !

श्यामा को ठिठोली पसन्द नहीं···उसकी बीमारी मज़ाक का विषय नहीं हो सकती। खुशमिजाज डाक्टर का घर में आना बन्द हो गया था।

आजकल जो डाक्टर आता है—माचवे—अविजित को लगता है, श्यामा से ज्यादा बीमार है। वह हंसता क्यों नहीं···श्यामा के प्रलाप को इतनी गम्भीरता से क्यों लेता है···गोलियों की मिक़दार बढ़ाता ही चला जाता है।

श्यामा के लिए वह उतना ही जरूरी हो गया है जितना अविजित। अब उसे फ़ोन जाता है तो साथ-साथ डाक्टर माचवे को भी जाता है। बुलाते ही चला आता है वह। एक दिन···अगर आ पाये ऐसा कि श्यामा का पागलपन इतना बढ़ जाए कि वह अविजित को भूल कर सिर्फ़ डाक्टर माचवे को फ़ोन करे! अविजित बरामदे की क़ैद से निकल जाए!

नहीं, ऐसा कैसे होगा। श्यामा न कहे तो भी उसे बीमार हालत में छोड़कर अविजित बाहर कैसे जा सकता है···श्यामा बीमार है, क्या वह जानता नहीं। जब से उसे थ्रोम्बोसिस हुआ है तभी से तो दिमागी हालत ऐसी हो गई है न···शरीर ठीक न हो तो मन और दिमाग़ कैसे स्वस्थ रहेंगे। नहीं-नहीं, यह मस्तिष्क का विकार नहीं देह की बीमारी है। अविजित जानता है···अविजित को जानना चाहिए।

अपनी ज़िम्मेवारी को नकार कर गरदन छुड़ा लेना क्या इतना आसान है? सिनबाद की पीठ पर चढ़े बूढ़े से भी मजबूत पकड़ होती है इसकी।

श्यामा कमरे में अकेली लेटी है। अविजित को उसके पास जाकर बैठना चाहिए। दफ़्तर छोड़ कर घर लौट आने का फ़ायदा क्या अगर वह बाहर बरामदे में टहलता रहे और भीतर श्यामा अकेली बिस्तर पर पड़ी हो।

श्यामा की आखें उसी का पीछा कर रही हैं—शिकायती आंखें—श्यामा की आंखों में हमेशा शिकायत रहती है···सच, उसे उसके कमरे में जाकर बैठना चाहिए···

बस, दस क़दम और···सामने की दीवार तक जा कर मुड़ेगा तो सीधा कमरे के अन्दर चला जाएगा। श्यामा की आंखें उसके क़दम गिन रही है। कमरे का दरवाजा बरामदे के बीच में पड़ता है। पांच क़दम उधर और पाच क़दम इधर—बीच में दरवाज़ा।

तो जाए अन्दर? कमरे में फैली अजीब-सी गन्ध दरवाजे से ही पीछे धकेल देती है। श्यामा ने अभी-अभी बेडपैन लिया है···कमरे में मैले की बू बस-सी गई है। दिन में न जाने कितनी बार श्यामा बेडपैन लेती है···अविजित दिन में चार बार पांव साबुन से मल-मल कर धोता है···सुबह शाम जुराब बदलता है···जूते खोलने पर बदबू का छोटा-

सा भभका भी उठ जाए तो बर्दाश्त करना मुश्किल होता है।

बस···दस क़दम और·· तब तक शायद कमरे में समाई गन्ध हल्की पड़ जाए ···अविजित के लिए अन्दर घुसना आसान हो जाए···बस, कुछ देर श्यामा के पास बैठ ले तो अपने को ग़ैरज़िम्मेवार महसूस न करे। वैसे ग़ैरजिम्मेवारी की कोई बात है नहीं। श्यामा के पलंग के बराबर में मेज पर घण्टी रखी है। किसी चीज़ की ज़रूरत होने पर श्यामा घण्टी बजा देगी···सुनते ही वह भीतर चला आएगा। श्यामा की शिकायती आंखों की अवहेलना वह कर भी दे, घण्टी की पुकार की नहीं करेगा।

वह अन्दर घुसेगा···श्यामा की प्यासी आंखें उसके चेहरे पर चस्पां हो जाएंगी। वक़्त धीरे-धीरे सरकता रहेगा···वह महसूस करेगा कि उसके जिस्म पर सारा पानी श्यामा की तृष्णा ने आंखों में भर लिया है, फिर भी आंखें प्यासी हैं। सिहर कर बोल उठेगा, ऊंचे स्वर में—अपराधी ऊंचे स्वर में ही बोला करते हैं।

"क्या हुआ है तुम्हें ? बात क्या है, बताती क्यों नही ? क्या चाहिए ?"

"तुम जाओ, बाहर जाकर बैठो। स्वर्णा है यहां। तुम्हें जब मेरी परवाह नहीं···" श्यामा की आवाज़ रुंध कर रुकेगी।

"परवाह है ! मुझे तुम्हारी परवाह है !" क्यों अविजित ऊंची आवाज़ में नहीं कह पाता ? चिल्ला कर कहने से नाटक सच नहीं बन सकता, पर···आधे सच और आधे नाटक से अविजित बचना चाह कर भी कब बच पाया है ?

"आया से कह दो, मुझे बेडपैन ला दे," श्यामा कह रही है।

चौक कर अविजित ने देखा, वह कब का श्यामा के कमरे में आ चुका।

कमरे का परदा खिंच गया। अविजित वापिस बरामदे मे लौट आया। बरामदा कमरे से कट गया है।

अविजित के डग और लम्बे हुए···इस बार बरामदा आठ कदमों में तय हो गया। दीवार जैसे अचानक सामने पड़ गई। आंख उठाकर देखा, छत के कोने में मकड़ी का जाला लटक रहा है। यह कहां से आ गया···कल तक तो नही था ? अविजित ने पंजों पर खड़े होकर हाथ ऊपर उठाया, उसका क़द खूब लम्बा है, जाला हाथ से छू जाएगा···छू ही गया···सिहर कर उसने हाथ खीच लिया। जाला गिराना इतना आसान नही है। हाथ लगाने से बिखर कर नीचे नहीं गिरता, उंगलियों पर लिसढ़ कर रह जाता है और फिर छुटाते-छुटाते···

अविजित ने बरामदे की दीवार से लगी अपनी निजी अलमारी खोली। अलमारी क्या है, भानुमती का पिटारा। सुई-धागे-कैंची से लेकर प्याला-प्लेट-गिलास, सब इसमें मिल सकते हैं। करीने से लगे। कवायद करते क़ैदियों की तरह।

अविजित को इस बरामदे में क़ैद कर दिया जाए तो वह हफ़्तों आराम से दिन काट सकता है। अलमारी के सबसे निचले खाने में स्टोव, केरोसीन की बोतल, चाय,

शक्कर, कन्डेन्स्ड दूध और बिस्कुट, किसी खानाबदोश के झोले में सफ़र के सामान की तरह पड़े है। अविजित और खानाबदोश ! हां···एक दिन···सफ़र पर निकला तो था, पर···

अविजित ने जेब में हाथ डाला है, भरी हुई माचिस और सिगरेट का पाकेट जेब में है। सिगरेट-दियासलाई न रहने पर पल भर में बेचैन हो उठता है पर वाक़ई सिगरेट पीता है तब जब माहौल पुरसुकून हो। लम्बी टांगे सीधी आगे फैलाकर, कमर आराम-कुर्सी से टिका, मनपसन्द किताब हाथ में लेकर आधा घण्टा अलग-थलग रह सके तो··· चलो, न हो आधा घण्टा, पन्द्रह मिनट ही सही पर कहां···कब ?

अलमारी खोलकर उसने झाड़न निकाला और फिर जाले की तरफ रुख किया। झाड़न जाले पर छुआ कि उसके बीच थिरकती तुड़ी-मुड़ी चितकबरी टांगो ने हाथ रोक दिया। दस क़दम आगे···दस क़दम पीछे···रेंगने तक की छूट नही !

ठोस पीठ पर चित पड़ा घिनावना कीड़ा दसियों टांगे ऊपर उठाए कैसा वीभत्स नृत्य कर रहा है। जेल तुड़ाकर भाग निकलने की नाकाम कोशिश हमदर्दी न जगाकर घिन क्यों पैदा कर रही है ?

अविजित ने झाड़न के एक झटके से कीड़े समेत जाले को अलग फेंक देना चाहा पर हाथ ठिठका रहा···विकलांग का नाच कुछ और देर देखा उसने। फिर सख्त हथेली को मुलायम बनाकर कीड़े के चारों तरफ कसे महीन धागे समेट लेने चाहे···शायद कीड़ा छूटकर नीचे फ़र्श पर गिरे और रेंग निकले, दस क़दम आगे···

जाले पर हाथ लगा नहीं कि वह सिमटकर कीड़े पर लिसढ़ गया। झीने कफ़न में बंधा कीड़ा पल भर तड़फड़ाया और जड़ हो गया।

अविजित के क़दम न आगे बढ़े न पीछे हटे···कमरे का परदा हट गया··· अनदीखते घेरे के बीच अविजित जड़ खड़ा रहा···भाग निकलने का कोई रास्ता तो मिले···

कोई आ जाए, शुभा, प्रभा, कोई दोस्त, कोई भी, उसे श्यामा के पास बिठला कर वह भाग निकले। कहां···दफ़्तर ? हां, कहीं भी, दफ़्तर ही सही···घर से बाहर तो है न।

चार बज रहे है। शुभा-प्रभा को कालेज से लौट आना चाहिए था, कम-अज़-कम शुभा को। प्रभा का भरोसा कम है; बेहिसाब सहेलियां हैं उसकी। पिक्चर, सैर-सपाटा, खाना-पीना, रोज कोई प्रोग्राम रहता है। देर कर के घर लौटेगी भी तो साथ किसी सहेली को लेकर। अविजित ही की तरह वह भी हरदम लोगो से घिरे रहना पसन्द करती है। प्रकृति है उसकी···खुशमिजाजी, हमदर्दी, मित्रभाव, समाजप्रियता या ···डर, सिर्फ़ डर···अविजित की तरह, अकेलेपन का डर। आमने-सामने अपने··· बेसहारा···खुद को सहना कितना मुश्किल होता है। दस कदम आगे···दस क़दम पीछे ···लगातार···

"पिताजी," एक बारीक आवाज कानों में पड़ी।

वह पांच क़दम पर घूम गया। देखा सामने शुभा खड़ी है।

"आ गई।" उसने कहा।

"आप···अभी तो साढ़े चार ही बजे हैं···तो क्या ममी···?" शुभा की आवाज़ फुसफुसाहट में बदल गई। हाथ में थमी किताबों को उसने एक हाथ से दूसरे हाथ में पलटा।

"तबीयत ठीक नहीं है।" अविजित ने कुछ रूखे स्वर में कहा।

"फिर से?"

"हां।"

"ओह···डाक्टर आए थे?"

"हां, दवा दे गए है।"

"अब कुछ ठीक तो है?" शुभा ने एक नजर कमरे के अन्दर डाली पर भीतर जाने का उपक्रम नही किया।

"तुम, जाओ बैठो उनके पास। मुझे दफ्तर जाना है," अविजित ने कहा।

"अच्छा," शुभा ने बिना प्रतिवाद किये कहा पर उसके चेहरे पर निराशा के भाव साफ उभर आए।

उसका चेहरा पढने में अविजित को कभी दिक्क़त नही होती पर इस वक़्त जान-बूझकर उसे अनदेखा करते हुए कहा, "स्वर्णा है अन्दर। जाओ, कुछ खा-पी लो, फिर··"

"आप···कब तक···लौटेंगे?" शुभा ने एक बार फिर किताबों को एक हाथ से दूसरे में पलटते हुए पूछा।

"नौ बज जाएंगे, कई अपाइंटमेंट है। प्रभा आए तो कहना घर पर ही रहे।"

"प्रभा तो पता नही कब आएगी···" शुभा ने एक उसांस-सी भरकर कहा।

अविजित जानता है, अगर क्षण-भर भी वह और वहां रुका रहा तो हमदर्दी के जाल में फंस जाएगा। शुभा के चेहरे पर निराशा का बादल मंडराए और अविजित कचोट खाए बग़ैर निकल जाए—नामुमकिन है।

शुभा का चेहरा हू-ब-हू वैसा है जैसा श्यामा का था—बीस साल पहले। नहीं, उतना सुन्दर नहीं पर वैसा ही, वायवीय और नाज़ुक। दुनिया की हर परेशानी और मुश्किल से इसे बचाकर रखूंगा, पहले-पहल देखा तो यही सोचा था और जी-जान से पूरा भी किया था अपने वादे को। पर···न जाने कहां क्या हो गया···

क्या किसी इंसान को यह हक है कि वह किसी दूसरे व्यक्ति के जीवन के तमाम निर्णय अपने हाथों में ले ले; उसकी तमाम ज़िम्मेवारियां अपने कन्धों पर उठा ले? दूसरा फिर कौन-सी ज़िन्दगी जिएगा—थोथी और सारहीन?

ठीक है, शुभा को कहीं जाना भी है तो क्या हुआ। घर पर मां जब बीमार है तो उसके लिए अपना शौक और तफ़रीह छोड़नी ही चाहिए।

श्यामा के कमरे के दरवाज़े पर खड़े होकर उसने कहा, "मैं दफ़्तर जा रहा हूं,

फिर दो-एक मीटिंग भी हैं। शुभा है यहां।" और बरामदा पार करके सीढ़ियां उतरने लगा।

तीन-चार सीढ़ियां उतरकर, सबसे निचली सीढ़ी पर आ, अनायास वह पीछे घूम गया। शायद देख लेना चाहता था कि शुभा भीतर जा चुकी। पर देखा, शुभा अभी वहीं खड़ी है, सूखा उदास चेहरा लिये।

चाहकर भी क़दम आगे नहीं बढ़े। कर्कश स्वर में पूछ उठा—

"तुम्हें कहीं जाना है?"

"वह···कालेज में नाटक है। आज रिहर्सल है, मुझे मेन रोल मिला था···पर ठीक है···मैं मना कर दूंगी···" आखिरी शब्द पर आते-आते शुभा का स्वर रुआंसा हो गया।

"मना करने की क्या जरूरत है?" अविजित का स्वर और कर्कश हुआ।

"रिहर्सल रोज़ होगा पांच बजे···मेरा जाना हो सकेगा?"

"क्यों नहीं हो सकेगा। कुछ-न-कुछ इन्तज़ाम हो ही जाएगा। तुम मना मत करना।"

अविजित जानता है शुभा को सिर्फ़ एक शौक है—अभिनय। उसकी सहेली है या नहीं, वह नहीं जानता। शायद ही किसीके घर जाती है या किसी को अपने घर लाती है। कालेज से सीधा घर आती है और किताब लेकर कोने में बैठ जाती है। श्यामा बीमार होती है तो चुपचाप आकर उसके बिस्तर के पास खड़ी हो जाती है, अथाह वेदना चेहरे पर लिए। आंखें श्यामा पर नहीं, अविजित पर टिकी रहती हैं। उसकी सब वेदना-करुणा-श्रद्धा उसी के लिए तो है। बीमार कौन है—श्यामा या अविजित···

अविजित सीढ़ियां चढ़ लौट आया। पूछा, "आज जाना ज़रूरी है क्या?"

"पहला दिन है न···" शुभा ने कहा।

"प्रभा आ जाए तो चली जाना।"

"प्रभा! वह···कौन जानता है कब आएगी," शुभा ने हथियार डालते हुए बुदबुद की।

यह लड़की ज़िद क्यों नहीं करती! अविजित ने क्षण-भर उसके चेहरे को निहारा, फिर मज़े से हंस दिया।

"अरे देखो तो, पांच बजने को आए, अब भला दफ़्तर जाकर क्या करूंगा··· जा-जा, तू जा, कुछ खा-पी ले, फिर मैं तुझे छोड़ आता हूं," उसने कहा।

"नहीं, मैं खुद चली जाऊंगी," शुभा ने खुश होकर कहा, "दो लड़कियां और भी हैं साथ।"

"उन्हें भी लेते जाएंगे।"

"पर मम्मी···"

"अरे दस मिनट में क्या फ़र्क पड़ेगा, आया तो है ही। मैं बस तुझे कालेज के फाटक तक छोड़कर लौट आऊंगा। और वापिस कैसे आएगी?"

"डाक्टर जैन खुद छोड़ जाएंगे।"

डाक्टर जैन यूनिवर्सिटी में प्रोफ़ेसर हैं। यूनिवर्सिटी नाटक क्लब के नाटकों का निर्देशन वही करते हैं। शुभा उनकी तारीफ़ करते नही थकती।

"खुद ?" अविजित ने छेड़ते हुए हंसकर कहा।

"हां। बहुत खयाल रखते हैं हम लोगों का। ही इज़ वन्डरफुल।"

"अच्छा ?" अविजित हंस दिया।

उसी की उम्र के है डाक्टर जैन। शुभा के आदर्श। शायद। लगता है वह उनके और अविजित के व्यक्तित्व को आपस में तोलती रहती है। मजेदार मालूम पड़ता है। कभी-कभी ईर्ष्या भी होती है। अविजित के लिए हर हमउम्र पुरुष एक चुनौती है।

शुभा को छोड़कर अविजित वापिस घर लौट आया। मन काफी हल्का महसूस हो रहा था। ठण्डी हवा, गाड़ी की तेज रफ्तार और जिन्दादिल युवा लोगों का साथ। सारे रास्ते वह शुभा और उसके साथ की लड़कियों को अपने कालेज के दिनो के चुटकुले सुनाता गया था।

"···विजयलक्ष्मी पण्डित को मैं जाकर सभापति बनाने ले आया···इलाहाबाद यूनिवर्सिटी का स्टूडेन्ट्स यूनियन का प्रेसीडेन्ट था मै···सभा मैंने ही बुलवाई थी··· साइमन कमीशन के खिलाफ़···विजयलक्ष्मी आने से कतरा रही थी···मोतीलाल की यूनिवर्सिटी जाने से मनाही थी, वह भी शाम के वक्त।। पर मैंने राजी कर ही लिया। अब एक बार मैं तय कर लू और काम न हो, यह तो···खैर, सभा खूब जमी। विजय-लक्ष्मी डटकर बोलीं···ओह, कितनी सुन्दर हुआ करती थी वह उन दिनों। यूनिवर्सिटी का हर लड़का उन पर फ़िदा था। रंग कुछ ऐसा जमा कि सभा खत्म हुई जाकर रात नौ बजे। डरते-डरते चले उन्हे वापिस घर पहुंचाने। मैं, एक लड़का और—चड्ढा नाम था उसका। आगे-आगे विजयलक्ष्मी, पीछे दुबके-सहमे हम। दरवाज़े की चौखट पर उन्होंने पांव दबा रखा ही था कि भीतर से ज़बरदस्त दहाड़ सुनाई दी, 'विजयलक्ष्मी! कहां गई थी! फिर घर से बाहर क़दम रखा तो टाग तोड़ दूगा!'

'बाप रे,' चड्ढा चिल्लाया, 'मोतीलाल नेहरू!' और उल्टे पांव वापिस दौड़ लिया। मैं उसके पीछे। आनन फानन में लड़का अहाते की दीवार फांदकर दूसरी तरफ। एक ही पैतरे में हाई और लांग जम्प दोनो का लाजवाब करिश्मा! मैं फाटक से होकर दूसरी तरफ पहुंचा तो चड्ढा ज़मीन पर लबेदम।

'यार टांग टूट गई,' मुझे देखते ही बोला। 'कोई बात नही,' मैंने कहा, 'विजयलक्ष्मी की सलामत रहे!'"

लड़कियां खिलखिलाकर हंस दी थी। मुग्ध भाव से अविजित की तरफ ताकती रही थीं। गाड़ी में से उतरते हुए गद्‌गद् भाव से बोली थीं, "शुक्रिया, अंकल।"

कुछ दूरी पर जाकर शुभा से जो कहा, वह भी उसके कानों में पड़ गया था, "सच, कमाल के डैडी हैं तेरे।" हंस-बोलकर घर लौटा तो मन वाक़ई बहुत हल्का था।

वह सीधा श्यामा के कमरे में घुस गया।

"अरे, तुम्हें चड्ढा याद है···वही जो विजयलक्ष्मी के पीछे पागल था !" चहक कर उसने कहा।

"तुम कहां चले गए थे ?" श्यामा ने कहा," मुझे ठण्डे पसीने आ रहे है।"

"बस, ज़रा शुभा को कालेज छोड़ने गया था।"

"इस वक़्त ? क्यों ?"

"नाटक का रिहर्सल था।"

'नाटक करना क्या इतना ज़रूरी है ?"

"जरूरी तो कुछ भी नही है।"

"एक दिन नाटक में न जाती तो क्या हो जाता।"

"क्यों नही जाती ?"

"मां बीमार हो तो घण्टा-आधा घण्टा घर में नही टिका जा सकता ? एक प्रभा है, घर लौटने का कोई वक़्त ही नही है। तुम्हारे लिए सब कुछ जरूरी है, बस एक मैं···"

"आ जा यार, पांच बज चुके। चाय-नाश्ते का बन्दोबस्त हो सकता है। पांच बजे से पहले हमारे घर में चाय मांगना धारा नम्बर तीन सौ सत्रह के अन्तर्गत जुर्म है, "ऊंची खिलखिलाहट के साथ प्रभा की आवाज़ सुनाई दी।

"उफ़," श्यामा ने कहा, "दिल बैठा जा रहा है। देखो तो कितना पसीना आ रहा है···"

अविजित झपट कर बाहर निकल आया।

"धीरे बोलो !" उसने प्रभा से कहा।

"क्यो, इस वक़्त तो पांच बजे हैं ? न दिन के सोने का वक़्त है न रात के।"

"ममी की तबीयत खराब है।"

"फिर से !"

प्रभा का कहा 'फिर से' शुभा के कहे 'फिर से' से कितना फ़र्क है। उसमें आतंक था, इसमें व्यंग्य है।

"हां" अविजित का स्वर कठोर हो गया, "तुम इतनी देर करके घर क्यों आती हो ?"

"क्योकि पांच बजे से पहले यहां चाय-नाश्ता नहीं मिलता।"

"क्या मतलब ?"

"अपने रसोइये हुज़ूर पांच बजे से पहले तशरीफ़ नहीं लाते।"

"तो ? चाय तुम भी बना सकती हो।"

"मैं ?" अविजित के स्वर की कठोरता से चौककर प्रभा ने उसकी तरफ देखा और कुछ सकुचाकर बोली, "ड्राइंग रूम में तोषी बैठी है।"

"ओह," अविजित का स्वर धीमा हो गया।

तोषी प्रभा की खास सहेली है।

"चाय बनवा लो। लछमन आ गया होगा।" उसने कहा, "पर ज़्यादा शोर मत करना।"

"ऐसा करते हैं, पिताजी, हम चाय पीकर तोषी के घर चले जाते हैं। यही, रेल लाइन पार तो है। सात बजे तक लौट आऊंगी, अंधेरा होने से पहले···"

"नहीं, मैं आया को भेज दूंगा, अकेले मत आना।"

"शुक्रिया पिताजी। एक मिनट तोषी से मिल लीजिए न।"

तोषी ने 'नमस्ते अंकल' कहकर एकदम धाराप्रवाह बोलना शुरू कर दिया।

"प्लीज़ मुझे एक दिन इकनॉमिक्स समझा दीजिए न, एकदम समझ में नहीं आती—खासकर थ्योरी···बतला देंगे न ?"

"क्यों नहीं, ज़रूर," अविजित ने कहा, "पर इकनॉमिक्स में मुश्किल क्या है ? सोशल साइंसेज़ में यही फ़ायदा है। तुम ग़लती कर ही नहीं सकते। हर सवाल के दो पहलू होते है, जो भी लिखो, ठीक।"

"ओह अंकल। आप की बात फर्क है। आप गलती कर ही नहीं सकते पर मैं···"

"तेरे भेजे में कूड़ा भरा है तो उसमें पिताजी क्या करेंगे ? अपनी अक़्ल उधार तो नहीं दे सकते," प्रभा ने टोका।

"कूड़ा तो तेरे भेजे में भी भरा है, फिर तू फ़र्स्ट डिवीज़न में कैसे पास हो जाती है ?"

"फर्स्ट डिवीजन में पास होती हूं, इसका मतलब है मेरे भेजे में कूड़ा नहीं भरा, इतनी बात भी समझ में नही आती।"

"बिल्कुल ग़लत ! तू सबकुछ अंकल से डिसकस कर लेती है। अंकल, मेरे पिताजी तो कभी मुझसे बात ही नहीं करते। कहते हैं कालेज के टीचर किसलिए हैं, उनसे पूछो।"

"जब चाहो हमसे पूछ लेना," अविजित ने उदार होकर कहा।

"यह मत कहिए," प्रभा बोली, "यह रोज़ आकर बैठ जाएगी। समझ में इसके कुछ आएगा नही, बस इधर-उधर की हाककर आपका वक़्त बरबाद करेगी," प्रभा ने कहा।

"तू क्यों मरी जा रही है, जलनखोरी !"

"अरे-रे, लड़ती क्यों हो," अविजित ने स्नेहिल हंसी के साथ कहा, "यह लो, चाय आ गई। वाह, पकौड़े भी हैं। किसके हैं ? मिर्च के। चल, चटनी भी डाल दे ऊपर से। भई नमकीन हो तो झालदार और मीठा हो तो तर माल। जानती हो तोषी,

हॉस्टल भर में मेरे बनाए मिर्च के पकौड़े और सूजी का हलवा मशहूर था। बड़े-बड़े लीडर लोग दाद दे चुके है। जेल में बनाया एक मर्तबा तो सच कहता हूं, जेलर के मुंह से, खुशबू सूंघकर ही, लार टपक पड़ी।" और अविजित हॉस्टल के दिनों के चटपटे किस्से सुनाने लगा।

उसके ठहाके के साथ ठहाका लगाकर तोषी और प्रभा हसी ही थीं की तोप की तरह दरवाज़े से स्वर्णा आया ने गोला दाग़ा, "साहब, बीबीजी बुला रहा है।"

अविजित के हाथ ने मुंह तक आया मिर्च का पकौड़ा नीचे छोड़ दिया। हंसी एकदम न रोक पाने के कारण तोषी और प्रभा बेमतलब कुछ देर और हंसती रही।

"उससे कहो, जाए," श्यामा ने कहा, "मेरा सिर दुख रहा है। कितना शोर मचा रही हैं ये लड़कियां।"

"अच्छा-अच्छा, अभी चली जाती है," अविजित अपराधी हो आया, "लाओ तुम्हारा सिर दबा दू," उसने कहा।

"बत्ती बुझा दो।"

अविजित ने बत्ती बुझा दी।

उसे अंधेरे में बैठना बहुत खौफ़नाक लगता है। अकेले तो वैसे ही···रोशनी में भी अकेला बैठता है तो हाथ में किताब लेकर। दूसरे में सिगरेट। सिर पर तेज़ रोशनी का बल्ब हो, दोनो हाथ भरे हों तो अकेलापन कट जाता है वरना···

उफ़, अंधेरे में घुटा यह अकेलापन। ज़मीन से छत तक घटाटोप। धुन्ध, काली, धूल-भरी। हवा के लिए बिलखती आंधी से पहले की घुटन। कुट-कुट क्या धड़का करता है टाइम बम की तरह? उसके सिर की नसे—गोल गुम्बद में उभरी दरारों की तरह—सिर पर बाल जो नहीं है। साफ़ नज़र आती हैं, साप की तरह रेंगने की नाकाम कोशिश में फड़कती नसे। कनपटी के पास की नस तो बस···कोई देखे तो कहे, अविजित तुम लेट जाओ, आओ, मैं तुम्हारा माथा सहला दूं पर···कौन···?

श्यामा को रोशनी पसन्द नही है। सिर का दर्द तो बहाना है—स्पर्श को महसूस करने के लिए। देर तक रहे तो स्पर्श दवा बन जाता है। उसकी उंगलियां श्यामा के बालों में चल रही है पर अविजित कुछ भी महसूस नही कर रहा। एक बार निर्द्वन्द्व भाव से उसका स्पर्श महसूस कर सके तो शायद कनपटी के पास की नस कुछ देर को चटखना रोक रखे।

श्यामा ने आंखे बन्द कर ली।

अंधेरे में भी उसकी गोरी काया काले कुहासे में लुप्त नहीं हुई। सफ़ेद भाप से बने रेखाचित्र की तरह हवा में खिची है। बादल से बनी औरत—स्पर्श से परे; अविजित सोच रहा है, इतनी खूबसूरत औरत और कभी नहीं देखी···कम औरतें नहीं देखीं उसने। शायद खूबसूरती औरत को औरत नहीं रहने देती···मिक़दार में बढ़ जाए

तो दवा ज़हर हो जाती है। श्यामा कहा करती है…करती थी…उसके स्फटिक-से सफ़ेद रंग से घबराकर उसकी मां ने उसका नाम श्यामा रख दिया था—कहीं नज़र न लग जाए। श्यामा की मां बचपन में ही गुज़र गई थी। तुम्हीं मेरी मां हो, उसने अविजित से कहा था, शादी के पहले दिन। पति और मां !

श्यामा की सांस एक लय में बजने लगी। अविजित ने हाथ रोक लिया। श्यामा ने आंखें नहीं खोलीं। अविजित दबे पांव कमरे से बाहर निकल गया। ड्राइंगरूम खाली पड़ा था। तो तोषी के साथ प्रभा भी निकल गई। बेवकूफ़ लड़की है। जब इतनी देर यहां बैठ चुकी थी को अब उसके घर जाने में क्या तुक थी। दिसम्बर की शाम है, सात बजे ही अंधेरा घिर आया है। यह प्रभा को घर काटने को क्यों दौड़ता है…मेरी तरह…छोड़ो…कुछ देर बाद आया को भेज दूंगा उसे बुलाने।

वह बरामदे के कोने में बैठ गया और सिर पर लगा लैम्प जला लिया। शेड कुछ नीचे झुका दिया। इस तरह रोशनी श्यामा के कमरे के भीतर नहीं घुस पाती। बस पड़ा 'टाइम' अखबार उठाकर घुटनों पर रख लिया…जेब से सिगरेट निकाली…स पांच मिनट चुपचाप खाली बैठेगा…फिर अखबार पढ़ेगा…सिगरेट पिएगा…एक और…

"लौट आई प्रभा," सामने दीवार पर नारी आकृति की परछाईं देखकर वह बोल उठा, इतनी रात…"

ज़बान तालू से सटकर सूखी लकड़ी हो गई ! सिर उठाकर जो देखा…सामने स्त्री खड़ी है…नहीं, कैसा भूत-सा नामुमकिन भ्रम है !

"क्या हुआ ?" स्त्री धीमे से हंसी।

"तुम ऽ !"

"पहचाना नहीं क्या ?"

"संगीता !"

"वाह, पहचान तो लिया।"

"तुम…तुम…कब…"

"अभी आई, बस जब आपने देखा। घर में अंधेरा देख कर घण्टी देना ठीक नहीं समझी। सीधी अन्दर चली आई। खैरियत तो है ?"

"तुम…इतने साल बाद…" अविजित अब तक प्रकृतिस्थ नहीं हो सका था।

"सिर्फ़ पांच," संगीता ने कहा।

"हां…पांच…फिर भी…"

शादी कर रही हूं, कार्ड देने चली आई।"

"शादी···तुम···अब ?"

"क्यों, अब क्यों नहीं ? आंधी और लू की तरह शादी का मौसम भी हिन्दुस्तान में हर बरस आता है।"

"मेरा मतलब था···"

"उतनी बूढ़ी नहीं हुई," संगीता ने बीच में टोक दिया।

"नहीं-नहीं, बूढ़ी क्यों होगी।"

"हां, जब आप बूढ़े नहीं हुए तो मैं कैसे हूंगी।"

"लड़का कौन है ?" अविजित ने संभलते हुए पूछा।

"मालदार सेठ का बेटा है।"

"कैसा है ?"

"जवान और सेहतमन्द। काफ़ी जिएगा।"

"संगीता !"

"क्या हुआ ? आप जानते नहीं, हिन्दुस्तान में औरत और चाहे जो करे, पति को जिन्दा ज़रूर रखती है। विधवाओं की यहां गुज़र नहीं। सफ़ेद कपड़ों में भला क्या मिल सकता है ? सब दरवाजे बन्द। हां, पति रहे तो चाहे जो करो···पश्चिम की तरह हमारे यहां 'मेरी विडो' का···"

"रहने दो," अविजित ने तल्खी से कहा, "लड़का मिला कहां ?"

"मिलता कहां ? बाक़ायदा फांसा है।"

"यानी खूब पसन्द है ?"

"लड़का भारी है हुज़ूर। झुमरी तलैया के मेले में खड़ा कर दो तो भैंसों में अव्वल रहे।"

"क्या कह रही हो, संगीता !" अविजित के स्वर में जुगुप्सा उभर आई।

"गौ कहना बेहतर रहता," संगीता ने लापरवाही से कहा, "पर क्या करूं, बर्खुरदार ख़ासे काले है।"

"जिस आदमी के बारे ऐसा सोचती हो उससे विवाह करोगी ?"

"उसे बतलाऊंगी थोड़ा।"

"शादी कर क्यों रही हो उससे ?"

"मालदार है।"

"तुम्हें पैसे की क्या कमी है ? डाक्टरी खूब बढ़िया चल रही है।"

"आपको मेरे बारे में इतनी जानकारी कैसे हुई ?"

"क्यों, इतनी नामी लेडी डाक्टर हो, जानकारी नहीं होगी ?" अविजित ने 'लेडी डाक्टर' शब्द कुछ व्यंग्य के साथ कहा।

"लेडी डाक्टरों से आपका सरोकार ? बच्चे गिरवाने का धन्धा तो नहीं करने लगे।"

"संगीता !"

इस बार संगीता सकुचा गई।

"सॉरी," उसने कहा, "ज्यादती हो गई। दरअसल ज़नाना अस्पतालों में काम करते-करते ज़ुबान खराब हो ही जाती है।"

उसने शादी का कार्ड आगे कर दिया।

"मुबारक," अविजित ने कटु स्वर में कहा, "मैं कभी सोच भी नहीं सकता था, तुम बिना प्यार किये, सिर्फ़ पैसों के लिए शादी कर सकती हो।"

संगीता का संकोच उड़ गया।

"क्यों नही सोच सकते थे," उसने कहा, "आप तो मेरी मां को जानते थे। उन्होंने हमेशा यही सीख दी, किसी मर्द से प्यार की खातिर शादी मत करो। प्यार लो, दो कभी नहीं।"

"तुमने नहीं दिया कभी ?"

"कम-उम्र में छोटी-मोटी ग़लतिया सबसे होती है। पर शादी करने की ग़लती तो नही की।"

"करना नहीं चाहती थी ?"

"अविजित जी," सगीता ने कहा, "दो बातें याद रखिए। चन्दे से पढ़ी हुई लड़कियां अपने प्रेमी के नाम के आगे भी 'जी' लगाती है और शादी मालदार सेठों के बेटों से करती हैं।"

"क्या मतलब ?"

"आगे फिर कभी किसी लड़की की पढाई में चन्दा दें तो सूक्ति काम आएगी, याद कर लीजिए।"

"यही व्यंग्य करने आई थी यहां ?"

"आई तो शादी का न्यौता देने थी पर क्या करें, व्यंग्य बिना अपना काम नही चलता। अब देखिए न, हम न शराब पीते है न सिगरेट। ले-दे कर एक शौक है—व्यंग्य, वह भी छोड़ दे तो जिएं कैसे ?"

अविजित चुप रहा।

"अच्छा, जाने दीजिए," संगीता ने कहा, "आपकी पत्नी कैसी है ? आज मन है, उन्हे गाना सुनाऊं।"

"गाना ?"

"हां। याद है, आप मुझे श्यामाजी को गाना सुनाने घर लाया करते थे। अब भी उतना ही अच्छा गाती हूं।"

"श्यामा की तबीयत ठीक नही है। सो रही है।"

"पूछ कर तो देखिए, शायद गाना सुनने के लिए जागना चाहे।"

"नहीं।"

"तब चलू, शादी में आइएगा ज़रूर।"

"संगीता···" वह चली तो अविजित पुकार उठा।

"जी ?"

"तुम क्या···किसी को पसन्द करके···नहीं कर सकतीं शादी···"

"अविजित जी," संगीता बिल्कुल उससे सट कर खड़ी हो गई, "आप मुझसे शादी करेंगे ?"

"मैं ?" अविजित सिहर कर पीछे हट गया।

संगीता खिलखिलाकर हंस पड़ी।

"हुश," अविजित के मुह से निकला, "श्यामा सो रही है।"

"कौन है ?" भीतर से श्यामा की आवाज़ आई।

"मैं हूं, संगीता," सगीता ने आगे बढ़कर खुद जवाब दिया, "अन्दर आ जाऊं ?"

अविजित बेहद घबरा गया। जाने श्यामा क्या कह दे !

"आओ," श्यामा ने कहा।

"नमस्ते।"

"इतने दिन बाद ?,'

"तबीयत कैसी है ?"

"ठीक नही है।"

"गाना सुनेंगी ?"

"गाना ?"

"हां।"

"गाती हो अभी भी ?"

"हां।"

"मूड है ?"

"देखिए," संगीता ने हंसकर कहा, "अपना बदला आप ले चुकी है। एक दिन आप ने गाना सुनाने को कहा और मैंने कह दिया, मूड नही है। तो अगले दिन मेरे गाना शुरू करने पर आपने भी कह डाला, रहने दो, आज मूड नही है।"

श्यामा भी हंस दी।

"तुम्हे याद है ?" उसने कहा।

"हां। सुनाऊं ?"

"कोई खास बात है ?"

"हा, मेरी शादी है ?"

"मुबारक ! तब तो ज़रूर सुनाओ। तुम्हारा गाना सुनकर हमेशा मेरी तबीयत बेहतर हो जाया कर्ती थी।"

संगीता की आंखों में करुणा उभर आई। उसने श्यामा का हाथ अपने हाथ में ले लिया और धीमे सुर में गा उठी।

अचरज से भरा अविजित उन दोनों को देखता रहा···अब इसका व्यंग्य कहां गया ?

व्यंग्य समर्थ पर किया जाता है, एक दिन संगीता ने कहा था।

सामर्थ्य का नाटक करने वाले को व्यंग्य कितना सालता है, संगीता जानती है ?

२

"आयाजी फटाफट मेरे लिए दो ब्रेड पकौड़े बनवा दीजिए, कालेज को देर हो रही है," सुबह आठ बजे प्रभा ने हांक लगाई, "साढ़े आठ की स्पेशल मिस, तो बस···

"कौन बनाएगा ?" आया ने डपटकर कहा।

"क्या मतलब ? आपके पूज्य स्वामी श्रीयुत लछमन जी महाराज, जो रोज़ बनाते हैं।"

"वह नहीं है।"

"नही है ? क्या हुआ ? भाग गए।"

"भागकर किधर जाएगा, हरामी," आक्रोश से भिन्नाते स्वर में आया ने कहा।

"ओहो, समझी···आसन पाटी !"

आया चुप रही।

"फिर से ?" प्रभा ने मायूस स्वर में कहा और शुभा को पुकारकर बोली, "यार शुभा, इस घर में तो मैं 'फिर से' कहती-कहती बूढी हो जाऊंगी।"

"हूं," शुभा ने कहा और आंखें किताब पर जमाए रही।

"क्या पढ़ रही है ?" प्रभा ने कहा।

"शेष प्रश्न।"

"सुबह आठ बजे ? तेरा दिमाग़ ठिकाने तो है न ?"

"हूं।"

"तूने सुना, श्री-श्री एक सौ आठ लछमनजी महाराज पूज्य स्वर्णा देवी से लड़कर आसन-पाटी लिये पड़े हैं। अब हम क्या खाएंगे, एक-दूसरे का सिर !"

"खाना ?" शुभा ने अनमनी नजरें इधर-उधर दौड़ाकर ताका, फिर बोली, "कुछ भी खा ले।"

"क्या ?"

"स्लाइस···"

"छी: नामुमकिन।"

"मक्खन लगा लेना।"

"नही, मुझसे नही चलता।" प्रभा ने कहा और उठकर आया के पास चली आई।

"स्वर्णाजी," उसने लाड़ से कहा, "आप ही तल दीजिए दो पकौड़े मेरे लिए।"

"हमसे नहीं होगा। लड़के को देखेगा, मां को देखेगा या तुम लोगों का नखरा सहेगा। ऐसे ही खा लो डबलरोटी," आया ने झिड़क दिया।

"हां, लड़के को देखना तो जरूरी है। तू जानती है शुभा, हमारे यहां जब लड़का पैदा हुआ तो स्वर्णा देवी ने गद्‌गद् होकर उसे सोने की तगड़ी भेंट की और फिर ममीजी ने भी उतने ही गद्‌गद् भाव से आयाजी को सोने की चेन बख्शी···"

"तो ?" शुभा ने कहा, "उसे शौक था इसलिए दी···"

"हां, शौक से दिया और शौक से लिया, हिसाब बराबर।"

"तू यह सब बातें कहां से सीखकर आती है ? तेरी सहलियां हैं न···वह तोषी और प्रेमा···"

"चुप। मेरी सहेलियों को कुछ मत कहना। तेरी अपनी तो कोई सहेली है नहीं···"

"लछमन! नाश्ता!" अविजित की आवाज़ सुनाई दी।

बिला घड़ी देखे प्रभा ने कहा, "सवा आठ बज गए। मेरी स्पेशल मिस!" फिर आवाज ऊंची कर के बोली, "लछमन आसन-पाटी लिए पड़ा है।"

"चोप!" झपटकर आया ने उसका मुह बन्द कर दिया, "बेतमीज लड़की। साहब को बोलने का जरूअत।"

"बेतमीज़ नहीं," प्रभा ने कहा, "बदतमीज़, और जरूअत नही···"

"हैं! हमको बेतमीज बोलता है!" आया बीच ही में गरजी।

"नहीं, काली माई, आपकी जुबान ठीक कर रही हूं।"

स्वर्णा आया बहुत काली है पर 'काली माई' कहने से खुश होती है, नाराज़ नहीं।

"जास्ती चपड़-चपड करेगा तो दुर्गा बाड़ी नही लेकर जाएगा इस बार," कहकर वह श्यामा के कमरे की तरफ बढ़ गई।

नाश्ता लेकर आती हूं, साहब, "अन्दर झांककर कहा।

नाश्ता अविजित श्यामा के कमरे में ही करता है, लछमन ट्रे में आमलेट-टोस्ट लगाकर वहीं दे आता है।

"रोज़-रोज़ यह लछमन आसन-पाटी लेकर पड़ जाता है," पीछे प्रभा ने गुस्सा होकर शुभा से कहा, "आखिर हम लोग उससे इतना डरते क्यों हैं।"

"प्लीज प्रभा," शुभा ने घबराकर बाधा दी, "पिताजी सुनेंगे तो परेशान होंगे। उन्हें दफ़्तर जाने दे। कल भी नहीं जा पाए थे।"

"ठीक है। तब तू मेरे लिए ऑमलेट बनाकर ला।"

"पर मुझे ऑमलेट बनाना नहीं आता।"

"क्यों नहीं आता? लछमन महाराज जब रसोईघर में रहते है तो सीखती क्यों नही?"

"पिताजी को मेरा रसोई में जाना पसन्द नहीं है। जब भी जाती हूं आवाज़ लगा लेते हैं।"

"हां, पिताजी का खयाल है, तू कोई बड़ी चीज़ बनने वाली है। क्या बनेगी तू?"

"पता नहीं।"

"मेरा खयाल है···किताब हाथ में लेकर पड़े-पड़े तू एक दिन कीड़ा बन जाएगी और बुक-शेल्फ़ पर रेंगा करेगी। खूब मौजूं रहेगा तेरे लिए। पर तब तक··· तू जाकर अण्डा उबाल न मेरे लिए।

"अच्छा," कह कर शुभा उठ गई। कुछ दूर जाकर सहसा उसे कुछ सूझा और वह मुड़कर बोली, "पर तू खुद क्यों नहीं उबाल सकती अण्डा अपने लिए?"

"मैं सीधा जाकर लछमन को उठाती हूं कान पकड़कर। जब देखो लम्बलेट हो गए। झगड़ा करता है अपनी बीवी से और खमियाजा हमें उठाना पड़ता है। आखिर डर क्या है हमें उससे?"

"प्लीज, चुप रह न। तू जानती तो है वह हरदम जाने-जाने की रट लगाए रखता है। वह चला गया तो कौन जाने आया भी चली जाए उसके पीछे। फिर··· सुधांशु का क्या होगा?"

"वाह, बेटा पैदा किया बीवीजी ने, पालने का शौक आया को है।"

"प्लीज, प्रभा!"

"चल छोड़। तू अण्डे उबाल···और हां, कॉफी भी बना लेना···कितनी तो देर हो गई।"

शुभा ने अण्डे-टोस्ट ला कर मेज़ पर रख दिये। फिर प्रभा से पूछा, "शाम को कितने बजे लौटेगी तू?"

"पता नही। क्यों, तू तो आज कालेज नही जा रही न। पिताजी ने कहा है, एक जने को घर पर रहना है।"

"हां, पर शाम को?"

"शाम को क्या है ?"

"मेरे नाटक का रिहर्सल है ?"

"एक दिन मत जा। सारे संवाद रटे तो पड़े हैं तुझे।"

"उससे क्या ? रिहर्सल में जाना होता ही है।"

"क्यों ? एक दिन डाक्टर जैन से बिना मिले नही रह सकती।"

"क्या मतलब ?"

"मतलब यह कि तू डाक्टर जैन से प्यार करती है।"

"शट-अप !" झपटकर शुभा ने प्रभा के कंधे पकड़ लिए, "यह बेहूदा बकवास करने की हिम्मत कैसे हुई तेरी।"

"अरे-रे क्या हुआ, पागल !" प्रभा ने उसे अलग झटकते हुए कहा, "प्यार तो सभी सभी को करते है। इसमें बुरा मानने की क्या बात है ?"

"तू किससे करती है ?" शुभा ने चुनौती दी।

"अभी किससे करूंगी। मरा लड़कियों का तो कालेज है। बी. ए. कर लू फिर करूंगी प्यार—ठाठ से। पर तू कर डाल, इन रोज़-रोज़ के रिहर्सलों का कुछ तो फ़ायदा हो। तेरी जगह मैं होती न तो डाक्टर जैन को कब का पटा लेती। काम मुश्किल भी नहीं है। सब बुद्धिजीवी पुरुष बेवकूफ़ लड़कियों से शादी करते है। पिताजी को ही देख ले।"

"तू हरदम ममी के पीछे क्यों पड़ी रहती है ?"

"मुझे कमजोर लोगों से नफ़रत है" प्रभा ने ऐसे बिफर कर कहा कि शुभा दंग रह गई।

"और देख, "प्रभा कहती गई,"तू ज़रा अपनी देखभाल कर वरना एक दिन ममी की तरह बन जाएगी। एक तो चेहरे का रंग तेरा ज़रूरत से ज़्यादा साफ है ऊपर से आए दिन बुखार चढ़ता है, अब बात-बात पर रोने की आदत और पड़ जाए तो बस···"

और शुभा सचमुच रो दी।

"अब क्या हुआ ?"प्रभा ने कहा।

"तू ऐसी जली-कटी बातें क्यों करती है हर वक़्त।"

"कॉफ़ी क्यों नहीं बनाई ?" प्रभा का जवाब मिला।

"दूध नही मिला।"

"आयाजी से मांगा होता।"

"आयाजी," स्वर्णा को सामने से आता देख, प्रभा ने ही पुकारा, "दूध कहां है ?"

"अभी आया नहीं," स्वर्णा ने दूर ही से जवाब दिया।

"अरे बाबा, रात का तो रखा होगा।"

"जो था, सुधांशु को दे दिया।"

"तो और मंगा कर रखा क्यों नहीं ?"

"रखा तो था। वह हरामी सब खिडा दिया।"

"'कौन हरामी?"

"वही···हमारे गले का फांसी।"

"क्यों खिडा दिया? दूध फेकने के लिए आता है!" अब प्रभा वाक़ई गुस्से में थी।

"जानता नही, कल सुधांशु खाना खाया नही। रात देर करके बोला, दूध-डबल रोटी लाकर दो। हमने सोचा लड़का का तबीयत ठीक नहीं लगता, उसी का कमरा में सो जाएगा। वह हरामी हमारा साथ जोर-ज़बरदस्ती करता था—उधर चलो अपना कोठरी में। हम बोला, नही-नही, पर सुनता जो नहीं। हम बेलन उसका सिर पर मारा तो वह यमदूत दूध का भिगौना उठाकर फेंक दिया।" आख़िरी बात कहते-कहते स्वर्णा हांफने लगी। पसीने की बूंदों से भीगकर उसका काला चेहरा आबनूस की तरह चमक उठा।

"बीबीजी सोता था नहीं तो हम उसका सिर फोड़ देता।"

"वाह!" प्रभा ने कहा, "नाटक ज़ोरदार है। इसी डर से आसन-पाटी लिये पड़ा है?"

"अफ़ीम खाकर पड़ा है हरामी।"

"और भी बढ़िया। तो सुधांशु को सुबह दूध कैसे मिला?"

"दूसरा बर्तन में था न थोड़ा।"

"और पिताजी को?"

"चाय दिया, बस।"

"और मैं? तुझे घोंटकर पिऊं?"

"खोखी बिना दूध के जा सकता है, तुम नहीं जा सकता।"

"खोखी कौन?"

"खोखी कौन। अपना बहन को नहीं जानता।"

"उसका नाम सुस्मिता है।"

"शू-शू-मिता हम नहीं जानता। खोखी नाम है, समझा।"

खोखी के जन्म के बाद श्यामा को पैर में थ्रोम्बोसिस हो गया था। छह महीने तक बिस्तर पर पड़ी रही थी—एकदम सीधे, बिना हिले-डुले। पैर के दोनों तरफ रेत की थैलियां लगा दी गई थी—टांग जरा हिली नही कि खून का थक्का दिल में पहुंच कर दिल की धड़कन रोक सकता था या दिमाग़ में पहुंचकर पागल बना सकता था।

बच्ची का मुह न श्यामा ने देखा था, न अविजित ने। उसका सारा वक़्त श्यामा की तीमारदारी में गुज़रता था। फिर भी बच्ची पल गई थी। स्वर्णा ने जब जितने पैसे मांगे अविजित ने दे दिये थे। बच्ची बढ़ती रही थी, पहले डिब्बे के दूध पर, फिर गाय के

दूध पर, फिर दाल-भात पर...स्वर्णा जो थी। साल भर तक किसी को याद नहीं आया था कि उसका कुछ नाम भी होना चाहिए। स्वर्णा उसे खोखी कहकर पुकारती। किसी और को उसका नाम लेने की जरूरत कम ही पड़ती।

खोखी साल भर की हो गई। स्वर्णा की कोठरी से निकल कर इधर-उधर घूमने लगी। तभी एक दिन नौ बरस की प्रभा की सहेली घर आने पर बोली, "खोखी तुम्हारी आया की लड़की है ?"

"धत !" शुभा ने कहा, "हमारी बहन है।"

"खोखी ? पर वह तो नौकरों के बच्चों का नाम होता है," सहेली ने अपनी नौ बरस की पूरी सूझ-बूझ का परिचय देते हुए कहा।

"इसका पूरा नाम सुस्मिता है," अचानक प्रभा ने ऐलान किया।

"क्या !" शुभा ने अचरज से कहा।

"हां, सुस्मिता।"

सुस्मिता उसकी कक्षा में पढ़ने वाली लड़कियों के नामों में सबसे मुश्किल नाम था। सहेली पर धाक जम गई थी। पुकारने की कोशिश में ज़बान ऐंठकर रह गई थी। स्कूल जाने पर खोखी का नाम सुस्मिता ही लिखवाया गया पर किसी की ज़बान पर वह चढ़ा नहीं। बस स्वर्णा से झगड़ा होने पर या सहेलियों के आस-पास होने पर प्रभा उसे इस नाम से ज़रूर पुकारती है।

"नहीं समझा," अब उसने कहा, "पर बात हो रही थी दूध की, याद है ?"

"हां, याद है," स्वर्णा ने कहा, "रुको अभी। आ जाएगा दूधवाला।"

"और कालेज मुझे दूधवाला छोड़ने जाएगा !" प्रभा ने ज़ोर से कहा।

भीतर के कमरों तक उसकी आवाज़ गूंजी और पल-भर में अविजित सामने खड़ा था।

"क्या हुआ ?" उसने कहा।

"प्लीज प्रभा," शुभा ने बाधा देते हुए कहा, "हॉरलिक्स पी ले। ममी पीती है। बुरा नहीं होता।"

"शट-अप !"

"क्या हुआ ?" अविजित ने प्रश्न दुहराया।

"घर में दूध तक नहीं है ? मैं क्या भूखी कालेज जाऊं। यह घर है या फुटपाथ ?"

"क्यों नहीं है ?" अविजित का स्वर गुस्से से कांपकर स्वर्णा की तरफ बढ़ा पर उसकी रौद्र मूर्ति देखकर सहम गया।

"आया नहीं दूधवाला," स्वर्णा ने कहा।

"लछमन से कहो हलवाई से ले आए।"

"वो नहीं है।"

"आसन-पाटी लिए पड़ा है," प्रभा फिर चिल्लाई।

"अब नहीं रहेगा वो। और वो गया तो हम भी जाएगा," स्वर्णा ने कहा।

स्वर्णा चली गई तो बच्चे? सुधांशु और वह···क्या नाम है उसका··· खोखी?

"वह कहीं नहीं जाएगा और न यह काली माई जाएगी। रोज़-रोज़ की बन्दर-भभकी। आखिर हम इनसे डरते क्यों है।" प्रभा पूरे तैश में थी।

तभी श्यामा के कमरे की घण्टी जोर से टनटना उठी।

शुभा भागकर वहां पहुंची।

"ममी के जूस को देर हो गई," फौरन ही बाहर आकर उसने घबराए स्वर में कहा, "और वह बेडपैन मांग रही है?"

"बेडपैन!" प्रभा ने हिक़ारत से कहा, "कोशिश करके गुस्लखाने तक नहीं जा सकती। आखिर उन्हें ऐसा हुआ क्या है?"

"प्रभा, धीरे बोलो!" अविजित ने फ़ौरन डांटकर कहा।

"आया, प्लीज़ तुम जूस निकालो, बेडपैन मैं दिये देती हूं," शुभा ने स्वर्णा की बांह पकड़कर मनुहार की और बेडपैन लेने दौड़ गई।

प्रभा और अविजित एक-दूसरे को तोलते खड़े रहे।

ग़लत तो नहीं कहती प्रभा। स्वर्णा-लछमन की यह रोज-रोज़ की किटकिट, झगड़ा-फसाद! पैसा पूरा खर्चो और सुकून का नामोनिशान नहीं! जाना चाहते हैं तो चले जाएं। आया-नौकर और बहुत मिल जाएंगे पर···स्वर्णा के बिना यह घर! श्यामा···सुधांशु और वह खोखी, कौन समझ पाएगा उन्हें?

स्वर्णा को इस घर में आए सोलह बरस बीत गए। अपना कोई बच्चा उसका है नहीं। और अविजित के बच्चे? कभी-कभी उसे लगता है कहीं सुधांशु और खोखी स्वर्णा के ही तो बच्चे नहीं?

शुभा बेडपैन लिए कमरे से बाहर निकली।

"आया! जूस!" उसने आवाज़ लगाई।

इतनी देर में स्वर्णा ने जूस निकाल लिया था। गिलास प्रभा की तरफ बढ़ा कर बोली, "ममी को देकर आओ और उलटा-सीधा कुछ मत बोलना।"

प्रभा ने चुपचाप गिलास थाम लिया। इसका कोई भरोसा नहीं, पूरी चण्डीमाई है, ज़्यादा ची-चपड की तो क्या जाने चल ही दे एकदम!

स्वर्णा को श्यामा से इतना लगाव क्यों है, अविजित सोच रहा था।

"एई प्रभा, जूस पिएगा?" स्वर्णा कह रही थी, "एक दिन कॉफ़ी की जगह जूस पीकर देख न।"

"मुझे नहीं पीना।"

"देख तो पीकर। रंग साफ हो जाएगा तेरा। और देख—जास्ती गुस्सा करेगा

न तो हमारा माफ़िक काला पड़ जाएगा !" कहकर स्वर्णा हा-हा कर मज़े से हंस दी ।

माहौल हल्का होता देख, अविजित ने भी मदद की, "चल, तुझे कालेज मैं छोड़ता जाऊंगा," प्रभा से कहा, "होने दे देर।"

कालेज के रास्ते में प्रभा ने कहा, "इतिहास की हमारी नई लेक्चरार आई है, मिस बनर्जी। इलाहाबाद से ही है। आपको जानती है। उनसे मिलते जाइए न।"

वह चाह रही थी, सुबह के अपने व्यवहार का प्रतिकार कर ले ।

"इतिहास की ? मिस बनर्जी ?"

"हां। मिस काजल बनर्जी।"

काजल। ओह ! पर मिस बनर्जी···शादी नहीं की···ताज्जुब है।

"पर दफ़्तर···" उसने कहा ।

"साढ़े नौ ही तो बजे है। थोड़ी देरी भी हो गई तो क्या। आपका कोई बॉस तो है नहीं।

अच्छा लगता है अविजित को यह सुनना, प्रभा जानती है।

"बॉस नहीं है तो जूनियर्स तो है," अविजित ने कहा, "उनके सामने तो बिना किए बेइज़्जती होती है, पर चल, दस मिनट को मिल लेते है। और सुन, आज शाम को जल्दी घर आ जाना। शुभा को रिहर्सल में जाना है, वह देर से आएगी और मैं भी चाहता हूं···और हां, ममी को खिजाना मत।"

"ओ. के." प्रभा मान गई, "अब मिस बनर्जी।"

काजल बनर्जी के कमरे का दरवाज़ा खटखटाकर प्रभा ने सगर्व परिचय कराया, "माई फ़ादर, मिस बनर्जी।"

"अरे, अविजित, तुम।"

"तो तुम्हीं हो," अविजित ने कहा।

"अब यह न कहना कि बिल्कुल वैसी लगती हो जैसी कालेज में लगती थी।"

"नहीं। पर वैसी ज़रूर लगती हो जैसा बीस साल बाद तुम्हें लगना चाहिए। मेरी तरह···"

"ना बाबा, तुम्हारी तरह नहीं," काजल ने टोका, "तुम्हारे तो सब बाल उड़ गए, अविजित !"

अविजित हंस पड़ा।

"काट तो तुमने भी दिए काजल," उसने कहा, "कितने लम्बे बाल थे तुम्हारे।"

"दोनो स्थितियों में अन्तर है। मैंने जान-बूझकर काटे हैं, तुम्हारे अनचाहे उड़ गए !" कहकर काजल मधुर स्वर में हंस दी पर··· रुकना पड़ा—अविजित ने साथ

नहीं दिया था।

मज़ाक-मजाक में कही बात से उसका चेहरा इस तरह सूख क्यों गया ?

"ठीक कहती हो काजल···" उसने कहा और चुप रह गया।

"तुमने शादी नही की," अगले क्षण उसके मुह से निकला।

"की थी," काजल ने कहा।

"फिर···मिस बनर्जी ?"

काजल ने प्रभा की तरफ देखा; हंसकर बोली, "तुम्हारी बेटी के सामने कहूंगी तो कल तक पूरे कालेज मे···"

"नहीं, मिस बनर्जी," प्रभा ने बाधा दी, "मैं नहीं कहूंगी किसी से···बल्कि मैं जाती हूं अब," कहती हुई वह कमरे से बाहर निकल गई।

हद हो गई यार ! बाहर आकर वह बुदबुदाई—कभी ऐसी भी कोई औरत मिलेगी जिसका पिताजी से इश्क न रहा हो। और एक हम है···

"फिर ?" अविजित ने सवाल पर वापिसी ली।

"डाइवोर्स ले लिया।"

"क्यों ?"

"बस···पटी नहीं।"

"बच्चे ?"

"एक है।"

"लड़की ?"

"नही, लड़का।"

"कहां है ?"

"हास्टल में।"

"तुम···उसके पास यही 'मिस बनर्जी' नाम लेकर जाती हो ?"

"मैं उसके पास नही जाती।"

"क्यों ?"

"उसके पिता उसे वह बहुत कुछ दे सकते हैं जो मै नहीं दे सकती।" काजल का स्वर कटु हो आया।

"तुमने बच्चे को भी छोड़ दिया !" अविजित का स्वर अविश्वास और आतंक से सना हुआ था।

काजल ने पहली बार ध्यान से उसे देखा।

"होता है, अविजित," उसने कहा, "तुम इतना परेशान क्यों हो गए ?"

"कैसे होता है, काजल ?" अविजित ने कहा, "एक ज़िम्मेवारी लेकर छोड़

देना···तुम···"

"हो तुम पुरुष, अविजित !" काजल का चेहरा कठोर हो गया।

"क्या मतलब ?"

"आगे नही कहोगे, तुम पति और बच्चे को छोड़ सकी, जरूर तुम्हारा चरित्र खराब है।"

"नहीं नहीं···"

"नहीं क्यों ? मेरा चरित्र खराब है अविजित, मेरे पति ने सिर्फ़ दूसरी शादी की है।"

"दूसरी शादी भी कर ली। तब तो···"

"कुछ नहीं किया जा सकता।" वाक्य पूरा करके काजल हंस पड़ी।

"तुम क्या हमारा पुनर्मिलन कराने जा रहे थे," उसने कहा, "समाज सुधारक हो ?"

"इसमें समाज-सुधारक की क्या बात···"

"नही, लगते तो नही समाज-सुधारक। बढ़िया सूट पहने हो। बाल उड़ने से तुम्हारे व्यक्तित्व में और निखार आ गया, अविजित। कर क्या रहे हो ?"

अविजित ने सुना और अनायास ही उसका हाथ पेन्ट की क्रीज जमाता हुआ कनपटी पर उगी बालों की इकलौती पट्टी को सहलाने लगा।

"करते क्या हो तुम ?" काजल को अपना सवाल दुहराना पड़ा।

"सिघानिया ग्रुप में जनरल मैनेजर हूं।" उसने कहा।

"तुम ?"

अविजित हंस पड़ा, "क्यों ?" उसने कहा, "मैं मैनेजर जैसा नहीं दीखता ?"

"नहीं," काजल ने कहा, "मैंने सोचा था, तुम मिनिस्टर या गवर्नर जैसी कोई चीज होगे।"

"अरे···" अविजित हंसा पर हंसी मे विषाद था।

"यूनिवर्सिटी के तुम्हारे भाषण मुझे अब तक याद हैं। तुम्हे याद हैं···वे सब मीटिंग, जब साइमन कमीशन भारत आया था। विजयलक्ष्मी के बाद तुम्हारा भाषण ? अहा, क्या बोले थे तुम ! अच्छा···तुम्हारा तो पॉलिटिक्स में जाने का पक्का इरादा था न···तुम्हारे पिताजी चाहते थे तुम आई. सी. एस. करो पर तुम्हें इजाज़त नहीं मिली थी न ब्रिटिश सरकार से···"

"बहुत पुरानी बातें हैं, काजल।"

"अरे, वह दिन याद है···१९३१ का," काजल कहती गई, "जब तुम लोगों पर गोली चलाई जाने वाली थी···हैं ? हां, याद है न। सब लड़को ने बिदाई की चिट्ठियां लिखकर झोले मे डाल दी थी। एक पंक्ति बनाकर चुपचाप बैठ गए थे, गोली खाने की प्रतीक्षा में। नहीं, चुपचाप नहीं," सहसा काजल खिलखिलाकर हंस पड़ी, "तुम्हें चड्ढा याद है न ! बीच-बीच में उठकर कैसे चिल्ला पड़ता था—महात्मा गांधी ज़िन्दाबाद।

बाक़ी लड़के कुर्त्ता खींचकर बिठला देते—श्रमां चुप भी कर यार, गोली जब चलेगी, तब चलेगी, तुझे इतनी जल्दी क्या पड़ी है। श्रो मां, कितना रोई थी मैं उस दिन। तय कर लिया था सफ़ेद कपड़ा छोड़कर दूसरा नहीं पहनूंगी उम्र-भर। श्रौर तभी बग्घी में मोतीलाल नेहरू श्रा पहुचे थे। साथ में कौन थे—महात्मा सुन्दरलाल न? दमे से मोतीलाल की आवाज़ बन्द थी। ज़ोर से बोल नहीं पा रहे थे। जो कहना होता, वे धीमे से कहते श्रौर महात्मा सुन्दरलाल उसे ज़ोर से दुहरा देते। 'किस उल्लू के पट्ठे ने इन मासूम बच्चों को यहां बिठला रखा है,' मोतीलाल ने कहा। महात्मा सुन्दरलाल ने गाली निकालकर वाक्य दुहरा दिया। मोतीलाल चीख़ पड़े थे, 'जो मैं कह रहा हूं, वह कहो' श्रौर देर तक खांसते रहे थे। याद है श्रविजित, मोतीलाल की बग्घी कैसे बैरी-केड तोड़ती धड़ाधड़ श्रागे निकल गई थी। 'लड़को, उठो, घर जाश्रो', उन्होंने हुक्म दिया था। भीड़ बेक़ाबू हो श्रागे बढ़ श्राई थी। लड़के उठ गए थे। भीड़ के ज्वार के सामने श्रंग्रेज़ सार्जेण्ट की राइफ़ल भिश्ती की मशक-सी ठण्डी पड़ गई थी। याद है उसका मुह, श्रविजित? श्रोह, तुम बच गए थे! श्रविजित, याद है, तुमने कहा था···"

"मैं चलूगा श्रब!" श्रविजित सहसा उठ खड़ा हुश्रा।

भौंचक काजल उसे देखती रह गई।

सैंकड़ों बार यह कहानी श्रविजित ख़ुद दोस्तों का मनोरंजन करने के लिए दुहरा चुका है। पर श्राज काजल के मुह से तेईस साल बाद उसे सुनकर जाने कैसा चक्रवात घुमड़ उठा है मन में।

"श्रविजित···" काजल फ़ुसफ़ुसा कर रह गई।

"श्रच्छा···" श्रविजित ने कहा।

"नहीं। बतलाकर जाश्रो श्रविजित, क्यों छोड़ा वह सब?"

"ज़िन्दगी की ज़रूरतें···"

"पैसा?"

श्रविजित चुप रहा।

"सुना था, तुमने लखनऊ के बहुत ऊंचे घराने में शादी की है। माल-मत्ता नहीं मिला?"

"नहीं, ऊंचे घराने के ख़यालात भी ऊंचे निकले," श्रविजित ने कहा श्रौर हल्का महसूस कर हंस दिया।

उसके ससुर जज सिंघल साहब श्रौर दहेज! एक वकील के पास जूनियर पोज़ी-शन के लिए सिफ़ारिश करवाने साथ लेकर चला था एक बार, तो सारे रास्ते दुह-राते गए थे—बात यह है, श्रविजित, यह काम मैंने पहले कभी किया नहीं। तंग श्राकर उसने कह दिया था—जब कभी नहीं किया तो श्रब भी न कीजिए। श्रौर वे बीच रास्ते से लौट श्राए थे। याद करके वह फिर हंस दिया।

"तुम चाहते थे क्या?" उसने सुना काजल कुछ चकित भाव से पूछ रही है।

"नहीं तो," श्रविजित ने वास्तविक श्राश्चर्य के साथ कहा, "मैं तो श्यामा को

चाहता थो।"

"श्यामा···तुम्हारी पत्नी ?"

"हां।"

"बहुत खूबसूरत है?"

"बहुत।"

"ग्रोह।"

"चलूं?"

"एक बात ग्रौर। झूठ मत बोलना, अविजित! बीस साल से ऊपर बीत गए···झूठ ग्रब नही चाहिए···सच कहना ग्रविजित!···उस दिन···तुमने झोले में मेरे नाम चिट्ठी डाली थी ?"

ग्रविजित ठिठक गया। मुड़कर एक नज़र काजल को देखा। ठीक तो है, ग्रब झूठ किसलिए ? और बीस साल पहले के झूठ पर कैसी शर्म। फिर भी उसका सिर झुक गया।

"नहीं काजल," उसने ग्रावाज़ में मिठास भरकर कहा पर स्वर ग्रपराधी बना रहा।

"तब ?"

"पिताजी के नाम।"

"ग्रौर ?"

"बस।"

"बस ?"

"हां।"

"काजल···मैं···" ग्रविजित की समझ में नहीं ग्राया क्या कहे। झूठ की सफ़ाई में ग्रब कौन-सा झूठ बोले, वह भी बीस साल पहले का झूठ।

"तुम जा रहे थे न ?" काजल ने कहा।

"फिर मिलोगी। ग्राऊं कभी ?" अविजित ने कहा।

"बीस साल बाद ?" काजल ने कहा। ग्रौर उसकी बेहद मीठी हंसी भी व्यंग्य की धार को कम न कर सकी।

बाहर ग्राकर ग्रविजित फाटक पर खड़ी ग्रपनी गाड़ी में बैठ गया ग्रौर···बैठा रहा···

यह क्या कर डाला काजल ने ? किस दुनिया में लाकर खड़ा कर दिया उसे ? यूनिवर्सिटी में दिये भाषण···सत्याग्रह···भारत छोड़ो···हिन्दुस्तान हमारा है···स्वराज्य इज़ माई बर्थराइट···

पिताजी ने कहा था—अविजित तुम मेरे सबसे बड़े लड़के हो। सबसे मेधावी। आई. सी. एस. में आ जाओ, मेरी तमाम मुश्किलें हल हो जाएं। बाक़ी बच्चों को तुम सम्भाल लोगे। मैं ग़रीब आदमी, ब्लड-प्रेशर का मरीज़···कौन जाने कितने दिन और जिऊँ··· तुम्हारी माँ की जिम्मेवारी भी किस पर छोड़ूंगा, तुम्हारे सिवा··· ये दोनों लड़के अभी छोटे है···एक तुम ही हो···

अविजित की माँ उसकी अपनी माँ नही है इसलिए उससे कुल पाँच-छह साल बड़ी है। अविजित उस उम्र पर पहुँच चुका जब उनकी ज़िम्मेवारी उठा सके। उनके अपने बच्चे छोटे है···ठीक है, अविजित ने कब जिम्मेवारियो से कन्नी काटी···

"ठीक है," उसने कहा था, "आप बेफ़िक्र रहें। जिस-जिस की ज़िम्मेवारी मुझ पर पड़ेगी, मै उठाऊँगा।"

"आई. सी. एस. के इम्तहान के लिए बैठोगे?"

"बैठ जाऊँगा।"

"तो स्टूडेन्ट्स यूनियन से इस्तीफ़ा दे दो।"

"क्यों?"

"तुम जिस तरह के भाषण देते हो, उन्हे बिना छोड़े सरकार तुम्हे इम्तिहान में बैठने की इजाजत कैसे दे सकती है?"

"पर यूनियन से इस्तीफ़ा देने से क्या होगा, पिताजी? मै सिर्फ़ भाषण तो नही देता, पिकेटिंग, जुलूस, सभी में हिस्सा लेता हूँ।"

"बम भी फेंकते हो?"

"नही, मै गांधी जी के साथ हूं।"

"कलेक्टर साब ठीक कहते थे," पिता ने लम्बी सांस भर कर कहा था। "तुम क्या खाक आई. सी. एस. के लिए बैठोगे। तुम्हारा नाम ग़द्दारों की सूची में आ चुका।"

"कलेक्टर साब से कहिए मेरा काट कर अपना नाम लिख लें, सुविधा होगी, हमें नही लिखना पड़ेगा।"

"अविजित तुम जानते हो, मै सरकारी नौकर हूं। तुम्हारी इन हरकतों से मेरी नौकरी जा सकती है।"

"पिताजी, आप जानते है, चन्द्रशेखर आज़ाद पर पुलिस ने मेरी आंखों के सामने गोली चलाई थी।"

"तो? उसके लिए तुम ज़िम्मेवार हो?"

"नहीं, आप भी है," अविजित ने कह डाला था।

"अविजित, मैं एक मामूली क्लर्क हूं। जो हुक्म मिलता है बजा लाता हूं। अपनी तरफ़ से नहीं सोचता···"

"मैं भी तो, पिताजी, जो हुक्म मिलता है, बजा लाता हूं।"

"किसका हुक्म?"

"अपनी काशन्स का।"

"तुम्हारी कांशन्स कहती है कि बूढ़े बाप को भूखा मार दो।"

अविजित धीमे से हंस दिया था।

"पहली बात, आप बूढ़े नहीं हैं," उसने कहा था, "दूसरी, भूखे आप नहीं मरेंगे। मैंने कहा न, जो भी ज़िम्मेवारी मुझ पर आएगी, मैं उठा लूंगा।"

"कैसे ? तुम तो जेल जा कर बैठ जाओगे, हम लोग···"

"बैठूंगा नही, भाग आऊंगा।"

"उससे हमारा क्या भला होगा," पिताजी का गुस्सा कम नही हुआ था।

"पिताजी, आपने भाई का कर्ज़ चुकाने के लिए अपनी पूरी ज़मीदारी बेच डाली। मामूली क्लर्की के दम पर बीवी-बच्चों को पाला, क्यों ?"

"क्या मतलब ? जमीदारी मेरी नहीं, हम दोनों भाइयों की थी। भाईसाहब का कर्ज़ मेरा कर्ज़ था।"

"तो अपना हिस्सा अलग कर लेते। बाकी की नीलाम हो जाने देते। आधी जायदाद बच जाती तो ताऊ जी को दुबारा हिस्सेदार बनाया जा सकता था।"

"यह तुम कह रहे हो, अविजित ! तुम भी अनित्य की तरह बोलने लगे। वह ···वह···निकम्मा···!"

"अनित्य का पूछना जायज है—उसके हिसाब से। आप का जवाब क्या है ?"

"अपनी इज्ज़त को बाज़ार में नीलाम नहीं किया जाता ! साझेदारी के कुछ असूल होते है !"

"वही तो। मैंने भी साझेदारी कर रखी है—गांधीजी और अपने साथियों के साथ। अपना हिस्सा अलग से कैसे बेच खाऊं ?"

फिर भी अविजित ने आई. सी. एस. की परीक्षा दी थी। सफल भी हुआ था। हां, इन्टरव्यू देने विलायत जाने का वक़्त आया तो सरकार की मनाही आ गई थी। पिता, सरकारी कारिंदे की हैसियत से गिड़गिड़ाये थे और कलेक्टर साब की तरफ़ से उदार ऑफ़र आया था—लिख कर दो कि सरकार के विरुद्ध कार्रवाइयों में हिस्सा नहीं लोगे तो इजाजत मिल जाएगी। अविजित ने कागज़ फाड़ कर फेंक दिया था और पिता को तसल्ली दी थी—आपको पता तो चल गया, आपका बेटा आई. सी. एस. में आने लायक़ है, और क्या चाहिए। पिता जी खुश नहीं हो सके थे। हां, उसका अपना अहं जरूर संतुष्ट हुआ था। देश की सबसे कठिन परीक्षा पास की है उसने···बाद में सुनाने के लिए बढ़िया कहानी मिल गई थी।

दो-एक अध्याय और भी जुड़े थे। दो साल की जेल-यात्रा भी कर आया था वह···

स्वतंत्रता मिलने के बाद नई सरकार बनी तो दोस्तों ने राय दी कि उसे अपने

'महान बलिदान' का मुग्रावजा वसूल करना चाहिए। एम. पी. न सही, एम. एल. ए. ही बने ताकि कुछ उनका भी भला हो। एक बार मैदान में उतर गया तो···

क्यों नहीं कर डाला ग्रविजित ने ? कितना अरसा तो हो गया जब से बड़ी-बड़ी बातें उसे बड़ी-बड़ी बातें लगने लगी हैं, कांशन्स की ज़िम्मेवारिया नही । फिर···

शहादत इतनी सस्ती नहीं होनी चाहिए !

ग्रनित्य !

हां, ग्रनित्य कहता था, लगता है एक दिन शहीदो का भार ही इस मुल्क को ले डूबेगा; पुलिस की दो लाठी खाई ग्रौर शहीदों की फ़ेहरिस्त में ग्रा गए, शहादत इतनी सस्ती नहीं होनी चाहिए···

ग्रविजित जानता है !

हमेशा से जानता रहा है, उसका वह महान बलिदान कितना···

जब तक ग्रनित्य है···

यह कब हुग्रा, ग्रनित्य ? पहले मैं पूछता था, मैं क्यो नहीं; ग्रब पूछने लगा हूं, मैं ही क्यों ?

मैं-क्यों, मैं क्यों, हार्न बजाता ट्रक धड़धड़ाता हुग्रा खड़ी गाड़ी के बराबर से निकल गया । शोर ने पकड़ कर झिझोड़ दिया । चौक कर ग्रविजित ने सिर ऊपर उठाया कि सामने कालेज की दीवाल-घड़ी ने कनपटी पर दस्तक दी । दस बार ।

दफ़्तर ! ग्रविजित ने गाड़ी स्टार्ट कर दी ।

दफ़्तर···'व्यापार'···पैसा···इससे तो मै ग्राई. सी. एस. ही हो जाता, वही क्या बुरा था···

मन चाहे जहा मंडरा रहा हो, पांव खुद-ब-खुद दफ्तर की तरफ़ उठ जाते है । पांव नहीं गाड़ी । बड़े लोग भटकते भी मशीन पर चढ़ कर है, कोई मंज़िल के रास्ते में भटकता है, कोई मंज़िल पर पहुंच कर । पहली भटकन में छुटकारे की उम्मीद की कशिश है, दूसरी में सिर्फ़ गोल-गोल घूमती भटकन ।

अनित्य वाक़ई खुशकिस्मत है !

ग्रनित्य घर का निकम्मा लड़का था । ग्रविजित की मां ही उसकी मां थी । पर वह ग्रविजित से चार साल छोटा था; इतना बड़ा नही कि नई मां की ज़िम्मेवारी ले ग्रौर इतना छोटा नही कि उनके मासूम बच्चों की तरह ज़िम्मेवारी बने । उसने बीच का रास्ता पकड़ लिया था; जिम्मेवारी बनने ग्रौर लेने, दोनों से कट गया था । वह कहां रहता है, ठिकाना नहीं है; क्या करता है, किसी को जानकारी नहीं है । वह

कहता है, किसी शहर में वह सात दिन से ज़्यादा नही रह सकता। हां, वह झूठ बोलता है। ऐसे भी मौके आए है जब लगातार छह महीने वह एक ही शहर में रहा है पर बहुत कम। यू सरधने स्कूल में मास्टर रहा, मेरठ में 'शमा' के लिए गुमनाम शायरों की गजलें हेर-फेर करके लिखी, बम्बई में रेस के घोड़ों का 'बुकी' बना तो दिल्ली में मंदिर के आगे ज्योतिष की पोथी सम्भाली। लखनऊ में किन्हीं गोहरजान की इनायत से चना-ज़ोर गरम बेचने का सामान मुहैया किया और हजरतगंज में कई हफ़्ते बेचा। नुकसान हो गया। हाथ एकदम खाली हो गया तो अविजित के पास आ कर पड़ रहा पर सात दिन नहीं तो दो-एक महीने से ज़्यादा भी कभी नहीं। अनित्य निकम्मा था, आवारा था और अविजित को बेहद प्यारा था। था क्या, है। अनित्य जानता है अविजित उसे प्यार करता है और जम कर उसका फ़ायदा उठाता है। अविजित के अलावा वह सिर्फ़ अज-नबियों का फ़ायदा उठाया करता है।

अनित्य, अविजित ने याद किया, अगर आ सके कुछ दिनों के लिए, घर भी··· ज़िन्दगी आ जाए···लिखेगा उसे···पिछली बार उसका ख़त आया तो एक सतर—ज़िन्दगी हसीन तवायफ़ की बूढ़ी मां है—अविजित समझ गया था, अनित्य फिर जगह बदलेगा। वह खुशकिस्मत है, नहीं जानता हर हसीन तवायफ़ खुद एक बूढ़ी मा है।

अनित्य ने शादी नही की। बी. ए. पास किया तो पिताजी ने सुझाव रखा कि उसकी शादी कर दी जाए। पांव में रस्सी पड़ेगी तो खुद खूटे से बंध जाएगा। ताऊजी ने अक्ल दी और पिताजी के साथ अनित्य को घेर लिया था···

"ठीक है," अनित्य ने प्रस्ताव सुन कर कहा था, "आप में से कौन मुझे दो सौ रुपया देने को तैयार है ?"

"दो सौ रुपये ?" दोनों हक्के-बक्के रह गए थे।

"जी हाँ, दो सौ फ़ी महीना। बन्दोबस्त कर दीजिए, मैं शादी के लिए तैयार हूं। बल्कि लड़की ढूंढने की ज़हमत भी आपको नहीं उठानी पड़ेगी। मैंने देख रखी है। लखनऊ में। मुसलमान है, बेहद खूबसूरत···"

बेशऊर, बदचलन, बदतमीज़, आवारा की चीखो-पुकार के नीचे तमाम गुफ़्तगू दब गई थी और फिर कभी उसके सामने किसी ने शादी का नाम नहीं लिया था। अनित्य, प्यार से लबालब ओठों से अविजित ने याद किया और देखा···सामने रीगल बिल्डिग की शानदार इमारत है—यानी उसका दफ़्तर !

अविजित दफ़्तर के अपने कमरे में पहुंच गया। चपरासी ने उठ कर सलाम ठोंका। वह अपनी मेज़ की तरफ बढा और गोल आरामदेह रिवाल्विंग कुर्सी में क़ैद हो गया।

अनित्य, उसने फिर एक बार याद किया, बुलाना है उसे जरूर; पर हाथ उसका

घण्टी पर पहुंच चुका था, अपने सैक्रेटरी भण्डारी को बुलाने के लिए।

"सर !" भण्डारी सामने खड़ा था।

"स्टेट बैंक के लोन की फ़ाइल लाओ। फ़ाइनेन्स कमीशन में अपाइंटमेंट तय हुआ? कलकत्ते सिंघानिया जी को ट्रंक-काल लगाओ। महाजन को रिमाइंडर भेजो, पेमेंट अभी तक नहीं हुआ। आज रिमाइंडर भेजो। परसों आदमी भेज देना—तुम खुद चले जाना—पेमेन्ट फ़ौरन होना चाहिए। पवन कुमार का ट्रांस्फ़र आर्डर गया था या नहीं? वह कानपुर में बैठा-बैठा क्या कर रहा है? मुझे उसकी जरूरत यहां है। सतना को बुलाओ—सेल्स टैक्स के केस की डेट आज है…"

"सर !" भण्डारी ने कहा।

"सर !" सतना ने कहा।

"सर, कुमार रिपोर्टिंग !" पवन कुमार ने कहा।

"भण्डारी, खिड़की का पर्दा खींच दो, धूप तेज़ है।" अविजित ने कहा।

जेल की खिड़की से आसमान और हरियाली देखने के लिए एक भटकता हुआ मन चाहिए जो अविजित के पास नहीं है। पहले ही 'सर' ने उसे कनपटी की नस में छिप जाने पर मजबूर कर दिया था। शरीर चाभी भरे खिलोने की तरह कस गया था। दूसरे-तीसरे 'सर' ने उसे दीवाल-घड़ी बना डाला था। अब पांच बजे तक वह निरंतर घण्टों और मिनटों में बंधा दौड़ लगाएगा और पांच बजने पर…हां, पांच बजने पर मन अगर फिर मैदान में कूद आया तो…अनित्य को याद किया जा सकता है।

३

दफ़्तर में छह बज गए। आधा दिन तो दिल्ली और कलकत्ता के बीच सूत्र स्थापित करने में ही निकल गया। सिंघानिया जी बंकुरा में नई फ़रटिलाइज़र फैक्ट्री क्या लगा रहे हैं, श्रीगणेश होने में ही माथा खराब होने लगा है। लाइसेंस के लिए अप्लाई किया हुआ है। पता नहीं क्या है कि लाइसेंस मिलते-मिलते टल जाता है। नीचे की सीढ़ियां तय हो चुकीं पर बात बनी नहीं। अब सिंघानिया जी को खुद उद्योगमंत्री से अपाइंटमेन्ट चाहिए। अविजित को दिलवाना है और जल्दी-से-जल्दी।

"आखिरी फ़ाइल पर दस्तखत करके, अविजित ने कुर्सी को घुमा कर मेज़ के

दायरे से बाहर निकाल लिया। लम्बी टांगें सीधी करके फैला लीं, सिर पीछे टिका कर सिगरेट सुलगाई और कहा, "तो···भण्डारी···" और उसके चेहरे पर एक बेहद आत्मीय मुस्कराहट खेल गई।

"सर, चाय?" भण्डारी ने पूछा।

"नहीं," उसने हाथ के इशारे से मना कर दिया।

भण्डारी समझ गया, साहब आज सीधा घर नहीं जा रहे। घर जाते हैं तो दफ़्तर से चाय पी कर जाते है।

आज···घर नहीं आऊंगा अभी।

चाय···सिगरेट···फैले पांव···सुकून और सुकूत के चन्द लम्बे···जहां भी मिलें। कहीं भी मिल सकते हैं। घर के सिवा। तब···दफ़्तर ही क्या बुरा है? पर आज दफ़्तर नहीं···आज!

"यह फ़ाइल," उसने कहा, "आज ही उद्योग-मंत्रालय पहुंचानी है।"

"मैं अभी ले जाता हूं, साब," भण्डारी ने कहा।

"तुम्हारी बेटी ठीक है अब?"

"जी हां।"

"बुखार उतर गया?"

"जी।"

"कब उतरा?"

"परसों उतर गया था।"

"दवा बन्द कर दी?"

"नहीं, अभी चल रही है।"

"एहतियात रखना। टाइफ़ाइड में रिलाप्स का डर रहता है।"

"जी।"

"तुम्हारा घर जाना ज़रूरी हो तो···"

"जी नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है।"

"फिर भी···बच्ची बीमार है, घर जाना चाहिए, ऐसा करना, टैक्सी ले लेना, घर होते हुए चले जाना। बस, आज किसी वक़्त पहुंचाना ज़रूरी है···"

"मैं कर लूंगा साब, आप फ़िक्र मत कीजिए।"

"घर से फ़ोन आए तो कह देना, देर हो जाएगी।"

"जी।"

भण्डारी से कुछ और कहने की ज़रूरत नहीं है। फ़ोन न भी आया तो वह खुद फ़ोन कर के कह देगा—साब को ज़रूरी मीटिंग में जाना पड़ा, देर हो जाएगी। कोई काम हो तो बतलाए···

"अच्छा···तो···" अविजित ने सिगरेट ऐश-ट्रे में रगड़ कर बुझाई और इत्मीनान से उठ खड़ा हुआ।

"तुम्हारी मां को चश्मा मिल गया ?"

"चश्मा ?"

"हां, आपरेशन के बाद ?"

"ओह—हां। जी, मिल गया।"

डेढ महीना हुआ, भण्डारी की मां की आख का मोतियाबिन्द का आपरेशन हुआ है। चार दिन पहले चश्मा मिलना था। भण्डारी को ध्यान नही है, अविजित को याद है।

"ठीक बैठ गया ?"

"जी।"

भण्डारी को शाम का यह वक़्त बहुत अच्छा लगता है। काम खत्म होने पर उसका यह बेहद सख्त बॉस सिर हिलाकर एकदम चल नही देता। दस-पांच मिनट बैठकर एक इंसान और दोस्त की तरह घर का हाल-चाल, दु:ख-तकलीफ़ पूछकर ही उठता है।

भण्डारी उसे रोज़ देखता है। अविजित को सुन्दर नहीं कहा जा सकता। फिर भी हर शाम वह उसके चेहरे पर मुस्कराहट आने का इन्तज़ार करता है। ग्रेनाइट में प्राण भर देनेवाली अपूर्व चीज है। खुलकर मुस्करा-भर देने से किसी के चेहरे पर इतना फ़र्क आ सकता है, यकीन करना मुश्किल है। लगता है यह आदमी कुछ और होने जा रहा था पर···न जाने क्यों और कैसे हो गया बिल्कुल कुछ और। पर अभी भी ···कौन जाने···एक दिन ऐसा कुछ हो गुजरे कि यह वही बन जाए जो बनने जा रहा था; और यह मुस्कराहट हमेशा के लिए उसके चेहरे पर खेलने लगे, जिसे देखकर शरीर अनजाने ही पुलक से भर उठता है।

हंसी भी आती है भण्डारी को अपने सोच पर। ऐसी भी क्या भावुकता ! कभी-कभी अपने साथियों से कहता भी है, "शुक्र है साब की सेक्रेटरी कोई औरत नही है वरना···"

दफ़्तर की सीढियां उतरकर अविजित गाडी पर पहुंचा। अगली सीट पर बैठकर चाभी लगा तो दी पर फ़ौरन घुमाई नहीं। अपनी तरफ का शीशा नीचे घुमाया, भीतर घुस आए ताज़ी हवा के झोंके को सास में भरा और बदन को ढीला छोड़ दिया। आंखें खुद-ब-खुद मुद गई···गाड़ी को पार्किग लॉट से निकाल कर दाएं घुमाना है···फिर सीधी सपाट सड़क है—दो मील लम्बी···एक मोड़—बाएं और···बीसेक मकानों की कतार के बीच टिमटिमाता रंजना का छोटा-सा घर !

रंजना ! नख़लिस्तान में बह रहा ठंडे पानी का सोता···रंजना···

अविजित ने आंखें खोली, चाभी घुमाई और गाड़ी स्टार्ट कर दी···गाड़ी धीमे-से आगे रेंगी। घुमा-फिराकर अहाते-से बाहर निकालने के लिए, अविजित ने गर्दन खिड़की

से बाहर निकालकर ग्रास-पास का जायज़ा लिया ग्रौर···रेत के बगूले की तरह हड़बड़ा कर, रंजना की ग्राकृति को परे धकेल, संगीता भीतर घुस ग्राई !

ग्यारह बरस पहले की संगीता !

"तुम डाक्टरी करना चाहती हो ?" ग्रविजित ने उससे पूछा था।

"जी," उसने सिर भुकाए रखा था।

"कर सकोगी ?"

झटके से संगीता ने सिर ऊपर उठाया था। ग्रांखे ग्रविजित की ग्रांखो से मिली थी। इतनी काली ग्रांखें ! उसने सोचा ही था कि स्याह पुतलियों से उठी लपट उसे झुलसा गई थी।

"कोशिश करूंगी," संगीता ने कहा था पर अविजित ने साफ़ सुना था—क्यों नही कर सकूगी ? शक करने की हिम्मत कैसे हुई ग्रापकी ?

संगीता ने सिर दुबारा झुका लिया था। दुबली देह पर भारी वक्ष···कृश मुख पर वे ग्रसाधारण ज़हरीली जलती ग्राँखे···न कह कर बहुत कुछ कह जाना···ग्रविजित विचलित हो उठा था।

पास ग्रा कर उसने कहा था, "परेशान मत हो। लेडी हार्डिग कालेज में दाख़िला मिल जाएगा।"

"शुक्रिया।"

"सब ठीक हो जाएगा," उसने फिर कहा था।

"शुक्रिया।"

न जाने क्यों अविजित कुछ और सुनने को बेकरार हो उठा था।

ग्रपना हाथ उसके कंधे पर रखकर कह गया था, "तुम···बस, सब-कुछ मुझ पर छोड दो। मैं तुम्हारी पूरी ज़िम्मेवारी लेता हूं।"

संगीता ने सिर ऊपर उठाया था। एक बार फिर उसकी ग्रांखें अविजित की ग्रांखों से मिली थीं। न बहकने की कोशिश में काली पुतलियां फैली हुई थी, ग्रोठों पर वक्र मुस्कराहट खेल रही थी फिर भी चेहरे पर विश्वास की हल्की किरण फूटती नजर ग्रा रही थी। संगीता की उम्र ही क्या थी—सोलह साल। सोलह साल उम्र ही ऐसी है कि विश्वास-ग्रविश्वास की देहरी पर मंडराती रहे।

पर ग्रविजित तो बत्तीस वर्ष का था।

संगीता उसके पास खिसक ग्राई। ग्राज की संगीता।

चन्दे से पढ़ी लड़कियां ग्रपने प्रेमी के नाम के ग्रागे भी 'जी' लगाती है, उसने कहा ग्रौर···

मुझे माफ़ करो, संगीता, तुम जाम्रो···प्लीज़ अब जाम्रो।

ठीक है, आपकी बात मैंने कब टाली है। संगीता मुस्करा रही है। चेहरे पर छल नही है। वाकई वह चली जाएगी। पर उससे क्या होगा। विश्वास अविजित का टूटा है। बराबर से हट भी गई तो पिछली सीट पर उसका अहसास बना रहेगा।

पास कही मोटर का हार्न ज़ोर से बज उठा। पीछे से आ रही कितनी ही गाड़ियां उसे ओवरटेक करके आगे निकल गईं। अविजित ने चाहा वह भी अपनी रफ़्तार बढ़ा ले। पर···उस दो मील लम्बी सीधी सपाट सड़क पर रेंगती उसकी गाड़ी परवश घिसटने से भी इन्कार करने लगी। आखिर उसने ब्रेक लगाया और एक किनारे करके गाड़ी खड़ी कर दी।

संगीता उसके आस-पास मंडराती रही। कभी सीट पर बगल में, कभी पीछे विषैली हंसी हंसती हुई, कभी रियर-व्यू-मिरर में अपनी काली पुतलियों का ज़हर घोलती हुई, कभी कमसिन-सी विश्वास-अविश्वास के बीच लुढ़कती हुई···वही झेलना तो सबसे मुश्किल हो रहा था।

सगीता को पहली बार अनित्य उसके घर लाया था। आज, अभी कुछ देर पहले ही तो उसने अनित्य को बेपनाह मौहब्बत के साथ याद किया था। पर···उस सब में अनित्य का कसूर भी क्या था···

एक प्रौढ़ औरत और एक नवयौवना को लेकर अनित्य उसके घर आया था।

"कौन हैं ये लोग ?" अविजित ने अलग ले जाकर पूछा था।

"आप नही जानते ? खाला अपने पण्डित यज्ञदत्त शर्मा की माशूक़ा हैं।"

"क्या !"

"क्यों, आप तो जानते ही होंगे कि शर्माजी···"

"हां-हां," अविजित ने बात काट दी थी।

अविजित क्या, सभी जानते है कि मेरठ के मशहूर रईस पंडित यज्ञदत्त शर्मा को दो ही शौक़ है—माशूक़ा रखना और आज़ादी की लड़ाई लड़ना।

"तुम कैसे जानते हो ?" उसने पूछा।

"अब भाई साहब, लखनऊ की फ़िजा ही कुछ ऐसी है···" अनित्य ने शुरू किया तो अविजित ने फिर टोक दिया, "हां-हां, रहने दो।"

वह नही चाहता था, अनित्य उसे बतलाए—हुआ यह कि पिछली बार गोहर-बाई पीछे ही पड़ गई, बोली, क्या इन चिनगारियों के पीछे भटकते हो, जलना है तो शोले पर गिरो, मैंने पूछा, कौन है तो बोलीं, अपने पंडित शर्माजी की माशूक़ा। उम्र हो गई पर हुस्न ! और आवाज़ ! एक जमाना था कि ग़ज़ल शुरू की नहीं कि चूड़ियां चटख गई। पर क्या बतलाएं मुजरे से नज़र फेरी तो फेर ही ली···तुम लोगों की सीता-सावित्री से कम नहीं हैं। पण्डितजी का हाथ पकड़ लिया सो पकड़ लिया···मैंने सोचा

एक बार दीदार कर ही लिया जाए···

"लड़की कौन है ?" अविजित ने पूछा।

"पंडितजी की बेटी।"

"झूठ ! नामुमकिन !"

"अच्छा जाने दीजिए। पंडितजी की नही, सिर्फ़ उनकी माशूक़ा की बेटी है।"

अनित्य को याद आ गया था कि जब पंडितजी विलायत गए हुए थे तो उनकी ग़ैरमौजूदगी में उनकी बीवी एक बेटी की मा बन गई थी। शर्माजी ने उस तक को बेसहारा नही छोड़ा···उम्र होने पर ठीक-ठाक लड़का देखकर ब्याह कर दिया था। बीवी को अलबत्ता अलग कर दिया था पर बेसहारा उसे भी नही छोड़ा। पच्चीस रुपया माहवार बराबर उसकी मौत तक उसे मिलता रहा। यह उनकी बेटी होती तो···

"साला हिप्पोक्रेट," वह बुदबुदाया।

अविजित समझ गया था वह क्या सोच रहा है।

"तो इन्हें यहां क्यों ले आए ?" उसने पूछा।

"फिर कहां ले जाऊं ? दिल्ली में आपके सिवा मेरा है कौन ?"

"ये लोग तुम्हारे साथ हैं ?"

"जी। फ़िलहाल तो है।"

"क्यों, तुम्हारा इनसे क्या रिश्ता है ?"

"रिश्ता है तो कोई नही। ख़ाला बनाना चाहती है, मै बिगाड़ना चाहता हूं।"

"क्या मतलब ?"

"मै शादी नहीं करना चाहता, भाई साहब," अनित्य ने मासूमियत से कहा।

"तुमने इस लड़की से शादी के लिए कहा था ?"

"बिल्कुल नही।"

"वह तुमसे शादी करना चाहती है ?"

"अजी नहीं, वह तो डाक्टरी करना चाहती है।"

"डाक्टरी ?"

"मतलब डाक्टरी पढ़ना चाहती है।"

"मैट्रिक, प्री-मैडिकल किया हुआ है क्या ?"

"जी हां।"

"पर तुमसे रिश्ता कैसे जुड़ गया ?" अविजित वापिस बात पर लौटा।

"अब क्या बतलाऊं, दो-चार दिन उनके घर रह क्या लिया, ख़ाला को बेटी का भविष्य सुधरता नजर आने लगा। जरा सोचिए, मुझसे शादी करके किसी का भविष्य भला क्या सुधरेगा।"

"तुम उनके घर में रहे क्यों ?"

"अब कहीं तो रहना था न लखनऊ में ?"

अविजित समझ गया और जिरह बेकार है। उसने दूसरा मोर्चा संभाला।

"ये चली क्यों आई लखनऊ से ?"

"बात यह है," अनित्य सहसा गम्भीर हो गया, "लड़की बेचारी काफी भली है। बच्ची थी तो ठीक-था पढ़-लिख भी ली। पर अब···दलाल लोग इसे छोड़ेंगे नहीं। रमई दादा तो समझिए···"

"ठीक है," अविजित ने विरक्त भाव से कहा, "रहने दो। अपने दोस्तों के नाम गिनाने की जरूरत नही है।"

"मेरे दोस्त का नाम सुलेमान है," अनित्य बोला, "रमई दादा तो समझिए मेरा दुश्मन है। जानते है एक दिन भरे बाजार में उसने गौहरबाई पर ही···और गोहरबाई मेरी मां की तरह है।"

"क्या !"

"जी हां।"

"गौहरबाई···तुम्हारी मा !" अविजित का चेहरा लाल हो गया।

"आपको अपनी मां याद है ?" अनित्य ने पूछा।

"नहीं।"

"फिर गौहरवाई में ही क्या बुराई है ?"

"अनित्य-अनित्य !" सहसा अविजित का गला भर्रा गया।

"अजी छोड़िए, खाक डालिए गौहरबाई पर मसला सामने संगीता का है।"

"लड़की का नाम संगीता है ?"

"जी हां।"

"और खाला का ?"

"पारिजात।"

"क्या ?" अविजित ने अविश्वास की हुंकार-सी भरी।

"दरअसल नाम तो इनका है चमेली बाई। पर लखनऊ से दिल्ली को रवाना हुई तो मैंने बदलकर पारिजात रख दिया। ज़्यादा इज्ज़तदार है।"

"पर···पारिजात ?" अविजित जोर से हंस दिया, "यह नाम तुम्हें सूझा कैसे ?"

"कामदेव के पंचशर का एक पुष्प है," अनित्य ने अतिरिक्त गम्भीरता से कहा।

"इतनी हिन्दी तू कबसे बोलने लगा," अविजित ठठाकर हंस पड़ा।

"क्यों, सरधने स्कूल में मैं हिन्दी ही तो पढ़ाता था।"

"हिन्दी ? तू ! तुझे हिन्दी आती है ?"

"नहीं।"

"फिर कैसे पढाता था ?"

"मास्टरी का गुर मैं आपको बतलाऊं, भाई साहब। वेधड़क क्लास में घुस

जाइए। दो-चार नामाकूल ऐसे ज़रूर मिल जाएंगे जो पहले से किताब घोंट कर आए होंगे। उनकी मदद से आप जो चाहे पढ़ा सकते है, बल्कि पढ़ाते-पढ़ाते थोड़ा-बहुत सीख भी सकते है।"

अविजित हंसता रहा।

"क्यो, मास्टर उगरसेन भी तो आपकी मदद से ही पढ़ाया करते थे अंग्रेज़ी, याद है?"

इस बार अविजित ने ज़ोरदार ठहाका लगाया।

"मसला फिर रह गया···" अनित्य ने कहा।

"ये लोग पंडित शर्मा के पास क्यो नही जाती?"

"शर्मा जी तो जेल में है।"

"ओह, हां। फिर भी कुछ इन्तज़ाम वे कर सकते है। कहो तो मै उनसे मिलू।"

"कोई फ़ायदा नही है। मैं मेरठ होकर आया हूं। शर्मा जी की हालत खराब है।"

"फिर भी···"

"जिगर का दर्द है, पीते बहुत थे···" अनित्य ने आराम से कहा।

"ठीक है।" अविजित ने टोका।

"ठीक तो है," अनित्य बोला।

"उनके घर पर···" अविजित ने बात का रुख़ बदला।

"घर वे ज़रूर आएंगे। जैसे ही ब्रिटिश सरकार को पता चलेगा कि उनके बचने की कोई उम्मीद नही है, फ़ौरन शोर-शराबे के साथ उन्हें रिहा कर दिया जाएगा। पर फ़िलहाल घर पर दोनो लड़के कब्ज़ा जमाए बैठे है, इन लोगो को पास भी नही फटकने देंगे।"

"पर इनका जो जायज़ हक़ है···"

"जायज़?" अनित्य हंस पड़ा, "यहां तो लड़की तक···"

"छोड़ो, करना क्या है, वह बतलाओ," अविजित ने बात काट दी।

"संगीता को मेडिकल कालेज में दाख़िला दिलवा दीजिए, ख़ाला लखनऊ लौट जाएंगी।"

"यहां रहेगी कहां?"

"हॉस्टल में। फ़ीस के लिए चंदा कर लेंगे।"

"कौन देगा?"

"काफ़ी यार दोस्त है।"

"कौन?"

"एक तो आप ही है।"

"और?"

"और···मेरी तरफ़ से भी आप दे दीजिएगा।"

अविजित हंस दिया।

"ठीक है," उसने कहा, "चन्दे का इन्तज़ाम मैं कर लूंगा। पर इस 'पारिजात' को लेकर जाओ यहां से।"

"लखनऊ का टिकट कटा देते हैं, चली जाएंगी।"

"नहीं, ऐसा करो, मेरठ चले जाओ। मैं देखता हूं, शर्माजी से जेल में मिलने का कोई इन्तज़ाम हो सकता हो तो···वे ज़रूर कुछ इनका बन्दोबस्त कर देंगे।"

"हां, हैं तो दरियादिल इंसान! पर भाई साहब उनकी क्या एक ही माशूक़ा है?"

"पता नहीं।"

"एक बात है, ये आजादी की लड़ाई लड़ने वाले तमाम लोग इतने आशिक़-मिजाज़ क्यों है? जब कि गांधीजी बराबर ब्रह्मचर्य का पाठ पढ़ाया करते हैं।"

अविजित चूका नहीं था।

"तुम तो गांधीजी को मान रहे हो," उसने कहा था।

अनित्य शर्मिन्दा नहीं हुआ था।

"अजी तोबा कीजिए," उसने कहा, "लखनऊ की तो कुछ फ़िज़ा ही ऐसी है··"

अविजित हंस दिया था और हंसते-हंसते ही बाहर संगीता के पास चला आया था। कोई बुरी भावना नहीं थी उसके मन में। सच, वह संगीता की मदद करना चाहता था। एक ग़रीब, मज़लूम लड़की समझ कर। पर संगीता···ग़रीब लड़की कहकर उसे स्वीकारने या नकारने का सवाल···

"तुम डाक्टरी पढ़ना चाहती हो?" मददगार की सगर्व अनुकम्पा के साथ ही पूछा था उसने।

पर संगाता···वह चुनौती का सामना कर रही थी, अनुकम्पा का नहीं। और अविजित आख़िर पुरुष था!

हो तुम पुरुष, अविजित, आज ही तो काजल ने कहा था।

कोशिश करके वह एक फ़ीकी-सी हंसी हंसा, पर नहीं, अपने को धोखा क्या देना। अनित्य की तरह वह खुद पर नहीं हंस सकता। अनित्य हंस सकता है, बिला शर्म; न खुद पर भरोसा है, न दूसरों का विश्वास जीतने की कोशिश करता है। पर अविजित···दूसरों के साथ-साथ अपना भी खुद पर विश्वास टूट जाए तो···

और जो हो, आज रंजना के घर नहीं जाया जा सकता।

नख़लिस्तान दीख रहा है, सिर्फ़ इसीलिए हाथ बढ़ाकर उसकी तरफ़ भागा नहीं जाता। गहरी प्यास के बावजूद कोई अहसास है जो तपती बालू पर पड़े रहने को मजबूर कर रहा है···

वह शाम अविजित ने सड़क के किनारे खड़ी गाड़ी में बैठकर बिता दी···

४

सुबह हुई तो घर में कोहराम मचा हुआ था।

खुले बाल पीठ पर छितराये स्वर्णा ज़मीन पर बिखरी पड़ी थी और ज़ोर से विलाप कर रही थी।

उससे कुछ दूरी पर पड़ा सुधांशु उसकी नक़ल करके रो रहा था।

एक कोने में खड़ी खोखी चुपचाप टक लगाकर स्वर्णा को देख रही थी।

शुभा और प्रभा कुछ असमंजस की हालत में उसके बराबर में खड़ी थीं।

"क्या हुआ ?" हड़बड़ाए हुए अविजित ने कमरे में प्रवेश किया।

"लछमन भाग गया!" प्रभा ने कहा।

"हमको सोता छोड़कर भाग गया," स्वर्णा ने फ़र्श पर लोट कर कहा। उसके भारी केश सांप की तरह लहरा कर दो हिस्सों में बंट गए।

"कहां गया ?" अविजित ने पूछा।

"कौन जाने किधर गया हरामी ! गांव गया होगा मरने ! खेती करेगा ! करो। करो खेती ! दो बीघा ज़मीन पर घास का चारा तक उगता नहीं। बोएगा अपना देह का हड्डी, काटेगा हमारा सिर !"

स्वर्णा ने सिर ऊपर उठाया, एक झपेट में पीठ पर बिखरे बाल समेटे और गांठ लगा कर जूड़े में बांध लिए।

"भूखा मरेगा तो अपने आप आएगा लौटकर।"

"हा···लौट आएगा···" अविजित ने कुछ कहने के लिए कहा।

"जितना पैसा जमा किया, सब लेकर भागा है, उड़िया !"

"रुपया खत्म होते ही लौट आएगा," प्रभा ने कहा।

"आए चाहे नहीं," सहसा स्वर्णा ने कहा, "हम उसका पीछे नहीं जाएगा। हमारा अपमान करेगा···चोरी करके भागेगा···" वह ज़ोर से बिलख उठी, "मर जाएगा उसके पीछे नहीं जाएगा···अपने से आकर माफ़ी नहीं मांगेगा जब तक, हम··· हम जूड़ा नहीं बांधेगा !"

उसने जूड़े पर एक हाथ मारा और पहाड़ी प्रपात की तरह केश-राशि खुलकर

पीठ पर छितर गई।

"देखना तुम···हमारा अभिमान···" और स्वर्णा चीख-चीख कर रो उठी।

"तू ऐसे कर सकती है?" प्रभा ने चुपके से शुभा के कान में कहा।

शुभा ऐसे चौकी जैसे चोरी करते पकड़ी गई हो। अपनी बड़ी-बड़ी बादामी आखें ऊपर चढ़ाए यही सोच रही थी कि यह दृश्य मंच पर कैसा रहे?

तू सिर्फ़ नाटक में जीती है, प्रभा ने एक बार कहा था, लगता है ज़िन्दगी में तेरा पार्ट ग़लत लिखा गया, इसी से ग़फ़लत में पड़ी रहती है।

"उससे कहो इतनी ज़ोर से न रोये। मेरा दिल घबराता है," अपने कमरे से श्यामा की आवाज़ आई।

"अरे वाह! कैसे न रोये?" प्रभा ने कहा, "उसका पति भाग गया, वह रोये भी नही।"

शुभा ने और पास खिसक कर स्वर्णा के कन्धे पर हाथ रख दिया।

"प्लीज़, आया," उसने कहा, "ज़रा धीरज रखो न। ममी तुम्हारे लिए बहुत घबरा रही हैं।"

"तो?" प्रभा ने कहा, "इस घर में आदमी रो भी नहीं सकता।"

स्वर्णा के कण्ठ से एक ज़ोरदार चीख निकली। एक क्षण को लगा वह प्रभा की ही बात रखेगी पर अगले क्षण, हिचक कर चुप हो गई।

"उफ़," प्रभा ने हिक़ारत से कहा, "यह फ़्यूडल मानसिकता। घिन आती है मुझे।"

खोखी अपना कोना छोड़ कर चुपचाप आगे बढ़ी और स्वर्णा की गोद में बैठ गई। अपनी बाहे उसके गले में डाल दीं। उसे देख, सुधाशु और बेक़ाबू हो रो उठा और ज़ोर-ज़ोर से पैर जमीन पर पटक कर चीखने लगा, "अन्ना-अन्ना।"

"यह क्या कह रहा है?" अविजित ने पूछा।

"स्वर्णा को पुकार रहा है," शुभा ने कहा।

"नही तो। यह तो अन्ना-अन्ना पुकार रहा है।"

"वह स्वर्णा को अन्ना कहता है।"

"क्यों?"

"वह···बस कहता है।"

"तुतलाता है," स्वर्णा ने कहा।

"तुतलाता है? क्यों?" अविजित ने सवाल किया।

कमरे मे मौजूद सब प्राणियो ने एक-दूसरे की तरफ़ देखा···सुधाशु क्यों तुत-

लाता है ? किसी को जवाब नहीं सूझा।

"लड़का लोग देरी करके बोलता है," स्वर्णा ने कहा ।

इतनी देर से···अविजित के मन में उठा कि श्यामा का स्वर गूँजा, "स्वर्णा, उसे चुप कराओ !"

स्वर्णा ने खोखी को नीचे उतारकर सुधांशु को गोदी में उठा लिया।

वह उसी सुर में 'अन्ना-अन्ना' चिल्लाता रहा।

खोखी ने स्वर्णा का पल्लू थाम लिया ।

"तुम जाना मत," उसने कहा, "कब्बी नही जाना।"

"नही जाएगा," स्वर्णा ने कहा, "कब्बी नही जाएगा। लेने आएगा तब भी नहीं। वह जानता नहीं, हमारा अभिमान···"

"अभिमान !" प्रभा बुदबुदाई, "रोया तक ता गया नही," और कमरे से बाहर निकल गई।

नाटक खत्म, शुभा ने देखा, अब चलो । अभिभूत-सी वह बाहर चली आई। उसकी कनपटियों से लपटे निकल रही थीं, सांस रुक-रुककर चल रही थी। आंखे दो परतो पर एक साथ देख रही थी···आज शाम कालेज के नाटक मे उसका अभिनय ज़रूर असरदार होगा।

स्वर्णा का अभिमान, अविजित सोच रहा था, दो फल का चाकू है, कब किधर काट जाए, भरोसा नही है। आज उसका अभिमान पति के पीछे जाने से रोक रहा है, कल कौन जाने उसे छोड़ कर रहने से रोकने लगे।

पति से यह उसका पहला बिछोह नही है। हर छह-आठ महीने में लछमन घर से भागता ज़रूर है पर दो-चार दिन अफ़ीम की पिनक में रहकर लौट आता है। हर बार उसके भागने पर स्वर्णा इसी तरह आक्रोश प्रकट करती है और लौट आने पर खरी-खोटी सुनाकर माफ़ कर देती है।

हां, इस बार हालात कुछ फ़र्क हैं। पिछले पूरे साल वह घर से नहीं भागा, साथ ही पोस्ट ऑफ़िस में अपने नाम से पैसे भी जमा करता रहा है। स्वर्णा जब-तब शिकायत करती रही है कि अपने साथ-साथ वह स्वर्णा की तनख्वाह भी अपने नाम से जमा करा रहा है। अब अगर रुपये लेकर भागा है, और जरूर भागा होगा, तो कोई योजना भी होगी दिमाग़ में'' सोचता-सोचता वह श्यामा के कमरे में चला आया।

"वह नही आएगा और स्वर्णा भी चली जाएगी," श्यामा ने कहा।

"नही क्यों आएगा ? हर बार तो लौट आता है," अविजित ने कहा।

"तुम देख लेना। इस बार नही आएगा। अब क्या होगा ?"

"देखेंगे। नही लौटेगा तो दूसरे आदमी का इन्तजाम हो जाएगा।"

"पर स्वर्णा···वह भी तो जाएगी।"

"वह नहीं जाएगी।"

"ज़रूर जाएगी। वह ज़रूर जाएगी।"

"वह कह जो रही है, नहीं जाएगी।"

"वह अब कह रही है, मैं बाद की बात कह रही हूं।"

"तुम उससे ज़्यादा जानती हो?" अविजित ने मज़ाक करने की कोशिश की।

"हां, मेरा मन कह रहा है वह जाएगी, और मेरे मन की आवाज़..."

श्यामा के मन की आवाज़!

स्वर्णा का उनके घर में प्रवेश भी उसी की बदौलत हुआ था।

तब वे कलकत्ते में रहते थे...

अविजित अपने मकान के छज्जे पर खड़ा नीचे सड़क पर ताक रहा था। सड़क के किनारे लगे सार्वजनिक नलके पर औरतें पानी भर रही थीं" धक्का-मुक्की और गाली-गलौज से हवा गरम थी। अगर ये लोग एक लाइन में खड़े होकर बारी-बारी से पानी भरें तो काम कितनी शान्ति और सुविधा से हो सकता है, वह सोच रहा था। छह-सात साल पहले का ज़माना होता तो वह नीचे जाकर, डाट-डपट करके, उनसे लाइन बनवाने लगता पर अब...वह जोश नहीं था। लड़ने दो, वह सोच रहा था, दिल की भड़ास तो निकलती है...कब तक आदमी घुटता रहे...यहां नहीं लड़ेंगी तो घर जाकर अपने-अपने घरवाले से सिर फोड़ेंगी...

तभी नीचे दो औरतों में इतना घमासान युद्ध छिड़ा कि बाक़ी औरतें दर्शकों की पंक्ति में आ गईं और अविजित के लिए दर्शक बने रहना मुश्किल होने लगा।

उन दोनों में से अधेड़ मोटी औरत में शारीरिक बल अधिक था पर दूसरी दुबली-पतली नवयुवती में बिजली का वेग और उन्माद था। हाथापाई करते-करते गर्दन पर लटका ढीला जूड़ा खुल आया था और लम्बे-घने काले केश पीठ पर लहरा रहे थे।

आंधी और बिजली, एक साथ! अरे, अविजित ने सोचा, यह तो बिल्कुल काजल बनर्जी की तरह दीखती है, कि अधेड़ औरत ने हाथ की जस्ते की बाल्टी उसके सिर पर दे मारी। खून की फुहार फूटी और वह ज़मीन पर ढह गई। औरतों में भगदड़ मच गई। सीढ़ियां फलांगता अविजित उसके पास जा पहुंचा। बिना इधर-उधर देखे उसे गोदी में उठाया और खटाखट सीढ़ियां वापिस चढ़ गया।

सिर की मरहम पट्टी होने तक उस काली लड़की को होश आ गया और वह धीरे-धीरे उठकर फ़र्श पर बैठ गई।

"लो, दूध पी लो," अविजित ने उसके हाथ में दूध का गिलास थमा दिया।

वह चुपचाप घूंट भरने लगी।

"सुकेशी !" सहसा श्यामा ने कहा।

"क्या ?" अविजित ने चौक कर श्यामा को देखा। इतनी देर में ये उसके पहले शब्द थे।

"नीचे बैठने पर जिस औरत के बाल ज़मीन को छुएं, बहुत शुभ होती है," श्यामा ने कहा।

अविजित ने देखा, सचमुच पीठ पर बिखरे उसके बाल फ़र्श को छूते हुए लटक रहे हैं।

"अपना पता-ठिकाना बतलाओ तो मैं तुम्हें घर छोड़ आऊँ," उसने कहा।

"पता-ठिकाना कोई नही है," जवाब मिला था, "नीचे छोड़ दो, हमारा बाल्टी होगा उधर।"

बाल्टी अब कहां होगी ! भागती औरतों में कितनी ही उसे उठाने को लपकी होंगी और किसी एक के हाथ वह ज़रूर लग गई होगी।

"यह कहां जाएगी," तभी श्यामा बोल पड़ी थी, "यही रहेगी।"

"यहां ?"

"तुम्हारा नाम क्या है ?" श्यामा ने लड़की से पूछा था।

"स्वर्णा।"

"कलकत्ते में तुम्हारा कोई नही है ?"

"नही। हम कलकत्ता काम ढूढने को आया है।"

"तुम्हारे स्वामी कहां है ?"

"नही है।"

"कैसे नही हैं ? इतना चौड़ा मांग-भर सिंदूर लगाती हो···"

"सिन्दूर है," उसने ज़ोर देकर कहा था, "स्वामी नही हैं।"

तभी दो बरस की प्रभा अन्दर घुसी थी और 'मा-मां, बाजा दो,' कहती श्यामा के ऊपर लटक गई थी।

"उफ़, क्या हर वक़्त मां-मां लगाए रखती है। मुझे नही अच्छा लगता," कह कर श्यामा ने उसे अलग झटक दिया था।

श्यामा के दूसरा बच्चा होने वाला था और वह हरदम खीजी रहती थी।

"एई, इधर आओ," स्वर्णा बोल पड़ी थी, "हमको मां बोलो।"

प्रभा उसके पास आ गई थी।

"मां बोलो," उसने फिर कहा था, "हमको मा बोलो।"

प्रभा एकटक उसे देखती रही थी, फिर चिल्ला कर बोली थी, "काली माई !"

"चुप !" अविजित ने डपट कर कहा था पर स्वर्णा खिलखिला कर हंस पड़ी थी। और प्रभा को खींच कर छाती से लगा लिया था।

···और स्वर्णा वही रह गई थी।

"एक अनजान औरत को तुमने घर में रख लिया," अविजित ने श्यामा से कहा

जरूर था।

"मैं तो उसे देखते ही पहचान गई थी," श्यामा ने कहा।

"क्या मतलब ? तुमने उसे पहले कब देखा ?"

"आपको पता है, रामदुलारी जब मरी, मैं आठ साल की थी।"

"कौन रामदुलारी ?"

"मेरी धाय।"

"देखो," अविजित ने कहा था, "तब तुम आठ साल की थी और अब हो बीस की। अगर रामदुलारी दुबारा जन्म लेती तो बारह बरस की होती और यह स्वर्णा कम-अज़-कम बीस-बाईस बरस की है। दूसरी बात, दुबारा जन्म लेने पर आदमी की शक्ल-सूरत वही नही रहती जो तुम देखते ही पहचान लो।"

"मैने कब कहा शक्लें एक जैसी है। रामदुलारी तो बहुत गोरी थी।"

"तब ?"

"मैने तो बात कही थी···अच्छा, रामदुलारी होती तो मुझे अभी भी उतना ही प्यार करती जितना तब···"

"करती, तो ?"

"देख लेना," उसने विश्वास के साथ कहा था, "स्वर्णा मुझे बहुत प्यार करेगी।"

ओह, तो उस तरह पहचाना था श्यामा ने। मन की आवाज ! अविजित हंस कर रह गया था।

बाद में पता चला था, स्वर्णा का पति बलियापाल गांव में खेती करता है।

"तू उसके पास क्यों नहीं रहती ?" श्यामा ने पूछा था।

"वो हमसे धोखा से ब्याह किया।"

"कैसे ?"

"वो उड़िया है," स्वर्णा ने ऐसे कहा जैसे 'उड़िया' कोई जंगली जानवर हो।

"तो क्या हुआ ?"

"हमको बोला, बंगाली है। हम ब्याह कर लिया। गांव पहुंचा तो देखा, शरप-शरप सब लोग उड़िया बोलता है।"

"तो क्या हुआ ?" अविजित को हंसी आ गई थी, "उड़िया भी तो आदमी होते है।"

"आदमी होने से ही हम ब्याह करेगा !" स्वर्णा ने त्यौरी चढ़ाकर कहा था।

"पर···तूने स्वामी को छोड दिया ?" श्यामा ने आश्चर्य प्रकट किया था।

"हम बोला—इस उडिया-शुडिया के बीच हम नहीं रहेगा। हमारा संग रहना है तो चलो कलकत्ता, नौकरी करो। वो बोला—हम गृहस्थ है, खेती करेगा। करो खेती। हम आ गया छोडकर।"

"पर इतनी-सी बात पर स्वामी को छोड़ना···"

"इतना बात ! कितना बात, जानता है ! वो हमको धोखा दिया।"

"तुझसे शादी क्यों करना चाहता था ?"

"और क्यों ? प्रेम करता था।"

"और तू ?"

"हमको बोला—हम बंगाली है, तुमको प्रेम करता है। हम कर लिया।"

"तो तू उसके पास कभी नहीं जाएगी ?"

"इधर आएगा तो रहेगा साथ में, नही तो अपना कमाई आप करेगा। वो क्या समझता है, हमारा अभिमान को लात मारेगा और हम रहेगा उसका पास !"

श्यामा ने सुख की सांस ली थी। स्वर्णा कही नहीं जाएगी।

पर धन्य था लछमन महाराज का प्यार ! स्वर्णा को ढूंढते-ढूढते कलकत्ता आ पहुंचे। एक दिन बाज़ार में टकरा गए और झट स्वर्णा के अभिमान ने दूसरा फल निकाल लिया।

"स्वामी हमको लेने आएगा और हम इधर पड़ा रहेगा, पैसा का खातिर। धिक्कार है हम पर।"

फिर भी स्वर्णा का जाना नहीं हो पाया था। नियति के चक्र में फंस कर लछमन को वही रह जाना पड़ा था, कलकत्ते में। तो अविजित का घर ही क्या बुरा था ?

नियति का चक्र या विदेशी हुकूमत के दमन का ? अविजित के मन में कौधा। विदेशी हुकूमत हमारी नियति थी या हमारी पराजय ? अपनी हार को नियति के गले मढ़ कर सन्तुष्ट हो जाना अविजित की प्रकृति नहीं थी तो क्या, लछमन के लिए वह नियति ही थी जो ब्रिटिश सरकार का मुखौटा पहन कर वार कर बैठी थी। १९४२ का आरम्भ था। लछमन का गांव उड़ीसा के तटवर्ती इलाके के उन सैकड़ों गांवों में से एक था जिनकी खड़ी फसलें ब्रिटिश सरकार ने जला डाली थीं, किसानों के हल-बैल, नावें छीन ली थीं ताकि रसद और साधन हमलावर जापानी फौजों के हाथ न लगें, जिनका डर दिसम्बर १९४१ से लेकर १९४२ के मध्य तक चोटी पर पहुंच चुका था।

पुरानी बातें है, क्या याद करनी, अविजित ने अपने को वर्तमान में खींचने की कोशिश करते हुए श्यामा से कहा, "तुम फ़िक्र मत करो। मैं कर दूंगा कुछ···।"

पर मन फिर अनमना होकर वही अतीत में जा पहुंचा। पता नही कल से क्या हो गया है। जब से काजल···अब जाने कहां से वह किताब याद आ रही है जो उसने १९४२ में लिख मारी थी और···

"···स्वयंभूमिध्वंस नीति के अन्तर्गत किसानों की फ़सलें जला डालना और यातायात के साधन छीन लेना क्या प्रख्यात ब्रिटिश 'सेन्स ऑफ ह्यूमर' का नमूना है या शेक्सपीयर की 'ग्रेड आइरनी' का ! जो भूमि उनकी नही है, जिसकी रक्षा करने का उनका कोई इरादा नही है, उसे ध्वंस करने में इतना निपुण कौशल ! और वाक़ई

जिसकी जमीन वह है, उन्हें हक़ नहीं है कि उसकी हिफ़ाजत कर सकें। ब्रिटिश सरकार हिंदुस्तानी हाथों मे हथियार देने को तैयार नही है। ब्रिटिश ह्यूमर का एक और नमूना! ब्रिटेन की हार को जीत में बदलने के लिए वे हिन्दुस्तानी हाथो में हथियार पकड़ा सकते है पर हिन्दुस्तान की हिफ़ाजत के लिए नही! सिर्फ़ बहादुर कहलाए जाने के लालच में हमारे सिपाही किस गरिमा के साथ मिस्र, सीरिया और ईराक के तपते रेगिस्तानों में जाने दे रहे है और उसका मुआवज़ा हिन्दुस्तानी अवाम को यह मिल रहा है···"

एक-के-बाद एक जुमला अविजित के कानो में गूंज गया। किताब के पन्ने जैसे मंच पर जा खड़े हुए थे। किताब की शुरुआत शायद तभी हो गई थी जब १९४० में चर्चिल ब्रिटेन का प्रधानमंत्री बना। ब्रिटिश पार्लियामेंट में दिए गए उसके भाषण ने खूब वाहवाही लूटी थी पर···उसमें छिपे तथ्य से हर हिन्दुस्तानी आहत हुआ था।

क्या कहा था चर्चिल ने—आप जानना चाहते है हमारा मक़सद क्या है? इसका जवाब मै एक शब्द में दूगा—फ़तह। किसी भी क़ीमत पर फ़तह, तमाम आतंक के बावजूद फ़तह, दुश्वार से दुश्वार, लम्बे से लम्बा सफ़र तय करके फ़तह; क्योंकि आज फ़तह हमारे जिन्दा रहने की शर्त बन गई है। अच्छी तरह समझ ले आप लोग। फ़तह न मिली तो ब्रिटेन ज़िदा नही रहेगा, ब्रिटिश साम्राज्य ज़िदा नही रहेगा, वह कुछ भी ज़िदा नही रहेगा जिसके लिए ब्रिटिश साम्राज्य बना है···

भाषण के जोश ने अविजित को भी अभिभूत कर लिया था पर कुछ ही क्षणों बाद उसका जेहन चीख उठा था—"क्या है वह जिसके लिए ब्रिटिश साम्राज्य बना है? गुलाम देशों के श्रम और माल से ब्रिटेन को दौलतमंद बनाने के लिए ही न। चर्चिल कहते है, किसी भी कीमत पर फ़तह। साफ़ क्यों नही कहते, गुलाम देशों की क़ीमत पर फ़तह; एशिया के जान-माल की कुर्बानी पर फ़तह; हिन्दुस्तानी अवाम को भूखा मार कर फ़तह।"

कुछ कम जोशीले तो नही है ये शब्द! अविजित के शब्द, उस किताब में बन्द। "···हिटलर क्या अकेला आततायी है···"

"प्रभा-शुभा में से एक को कालेज छोडना पडेगा," सहसा उसने सुना, श्यामा कह रही है। ऊंची आवाज में। शायद पहले भी कह चुकी है, उसके न सुनने पर दुहरा रही है।

"क्यो?" अतीत से टूट कर फिर वर्तमान में आ गिरा अविजित।

"स्वर्णा नही रहेगी तो किसी-न-किसी को घर पर रहना ही पड़ेगा," श्यामा ने कहा।

"कभी नहीं! नामुमकिन! उन लोगों का बलिदान क्यो?" किताब के जोश से भरा अविजित बोल उठा।

"इसमें बलिदान की क्या बात है?" श्यामा ने कहा, "शादी के बाद भी तो घरबार देखेंगी। हमारी बुआजी मरी तो उनकी लड़की सिर्फ़ बारह बरस की थी पर

पूरा घर संभाल लिया था। छोटे भाई को मां की तरह पाला। ज़रूरत पड़ने पर…"

पर तुम तो अभी ज़िन्दा हो, बिल्कुल नामुमकिन न होता तो उस क्षण सारी सभ्यता भूल, अविजित कह ही डालता। न कहने के बोझ से उसका बदन कांप उठा।

"यह सब बकवास मैं नही सुनना चाहता," वह चीख़ पड़ा।

"चिल्ला क्यों रहे हो। मेरी तबीयत…" और श्यामा फूट-फूट कर रो दी।

हताश अविजित वापिस कुर्सी में ढह गया।

कमजोर का जुल्म…कमज़ोर पर जुल्म…सहो या करो! क्या समर्थ की सामर्थ्य इसी में है कि कमजोर पर जुल्म करे। जो सह ले वही कमज़ोर, जो कर ले वही समर्थ? हज़ारो सालों से चला आ रहा मानव इतिहास बस यही सिखलाता है? जिसे ज़ुल्म करने का मौक़ा न मिला, वह कमज़ोर हो गया। हम…हमारा देश क्या इसीलिए कमज़ोर बना…क्योंकि ज़ुल्म नही किया। नही, अपने-अपने घर में व्यक्तिगत रूप से तो बख़ूबी कर लेते है। खूंखार भीड़ बनते भी देर नहीं लगती। जब कहो दंगा कर दें, बच्चे-बूढ़ों को जिन्दा जला दे। फिर योजना-बद्ध कुशल आक्रमणकारी हम कभी क्यों नही बने। इसलिए कि हमारा ज़ुल्म कमज़ोर का ज़ुल्म है? बहादुरी फिर क्या है? कमज़ोर की पीठ पर चढकर मंजिल की तरफ बढ़ जाना और पीछे मुड़कर देखना तक नहीं कि वह गिरा या पूरी तरह कुचला गया।

श्यामा रोये जा रही है…

अविजित सुन रहा है…

उसे मनाना चाहिए, वह जानता है।

मनाना पड़ेगा, यह भी जानता है। फिर भी वह बैठा कुछ और देख रहा है, सुन रहा है। हो क्या गया है उसे? बारह-तेरह बरस पुराना उबाल कल से क्यों उफन रहा है नसों में। कब से अलमारी में बन्द पड़ी किताब की मुश्किल से बचाई एक प्रति। मन हो रहा है अभी जाकर उसे निकाल कर पढ़े और…काजल को पढवाए। क्या कहेगी काजल पढ कर…

कितना कुछ तो बिना देखे याद आ रहा है… "सिर्फ़ हिटलर को हम क्यों दोष दें…वह अकेला कब था? मैं मुसोलिनी और तोजो की बात नहीं कर रहा। वे तो उस दानवी त्रिमूर्ति के अभिन्न अंग थे ही पर सवाल योरप के उन देशों का है जो अपने को आज़ादी के हिमायती बतलाते रहे है। किसकी आत्मा से वशीभूत थे योरप के वे समर्थ देश जो अपनी जान बचाने की ख़ातिर पड़ोसी कमजोर और छोटे देशों को धकिया-धकिया कर हिटलर के हवाले करते रहे। हिटलर मानो, महाभारत का बक राक्षस था जो ऐलान कर चुका था कि वह योरप के देशों को एक-एक करके खाएगा। भगदड़ मची हुई थी सभी में, अपनी जान बचाओ…कमजोर को आगे धकेलो! जब तक उसकी भूख मिटती रहेगी, हम सुरक्षित रहेंगे। हिटलर ने पोलेंड को सिर से निगला तो धड़

निगल गया रूस। अपनी सामर्थ्य बढाने को दुश्मन के मददगार भी बना करते है समर्थ। चेकोस्लोवाकिया को खुद उसके संरक्षक ब्रिटेन और फ्रांस ने चाँदी की थाली में सजा कर परोस दिया था हिटलर को। फ्रान्को ने स्पेन को चबा-चबाकर खाया तो खूब तमाशा देखा योरप ने अपनी-अपनी सुरक्षित खिड़की से। इथोपिया की तो खैर बात ही नहीं छेड़नी चाहिए—वह ठहरा काले हब्शियों का देश, उसके लिए कौन खतरा मोल लेता—लीग ऑफ़ नेशन्स तक खामोश बैठी रही···

"··स्वतन्त्र नीति निर्धारण का अधिकार क्या योरप के देशों का पुश्तैनी हक है? आजादी उनकी बपौती है? जब तक उनकी अपनी आजादी पर आंच नहीं आती वे शान्ति की देवी का आह्वान करते रहते है। पर दूर सुलग रही आग की गरम हवा उन्हें छू-भर जाए तो टेम्स के गंदले पानी में उसका विसर्जन कर आज़ादी की देवी को सत्तारूढ करने में ज़रा देर नही लगती। जंग के मैदान में मर मिटना धर्म हो जाता है; शान्ति की पुकार गान्धी जैसे पागलों का प्रलाप।

"···शान्ति किस कीमत पर? उनके लिए जवाब एकदम साफ़ है···औरों की कीमत पर। अपना सिर न झुके, औरो का चाहे कट जाए।···जब गांधी कहता है, हिटलर का सामना अहिंसा से करो, युद्ध का मार्ग मत अपनाओ तो पूरा संसार उसे विक्षिप्त कहता है और नपुसक···पर जब ब्रिटेन और फ्रांस ने चेकोस्लोवाकिया से कहा—योरप की शान्ति की खातिर तुम हिटलर के जबड़ों की भेंट हो जाओ तो किसने उन्हें विक्षिप्त कहा···कौन कह सकता है—इतिहास के सिवा, और इतिहास वे लिखते हैं जिनके हाथों में ताक़त होती है···"

जैसे कल लिखा हो···पढ़कर क्या कहेगी काजल?

श्यामा ने अपना सिर दोनों हाथों में पकड़ा और ज़ोर से चीख उठी।

अविजित चौंककर उठ खड़ा हुआ। श्यामा? हां श्यामा!

लपककर उसने उसका सिर अपने मज़बूत हाथों में थाम लिया। कमज़ोर के सशक्त हाथ!

"क्या हुआ?" उसने पूछा।

"चक्कर!" श्यामा चीखी।

बहुत देर कर दी! काफ़ी पहले इसकी तरफ़ ध्यान देना चाहिए था। अब पूरा दिन लग जाएगा तब जाकर···

"बस अब नही आएगा···धीरज रखो·· मैं हूं न तुम्हारे पास···मेरे रहते कुछ नहीं होगा···लो गोली खा लो···आंखें बन्द कर लो···सोने की कोशिश करो···मै बैठा हूँ तुम्हारे पास··" चुमकार-पुचकार कर वह कहता रहा···और सोचता रहा···पुराने कागज निकाल कर एक बार देखने ही होंगे···

५

"कैसे आना हुआ, अविजित," काजल ने पूछा।

"क्यो, नही आना चाहिए था ?" अविजित कुछ चौकन्ना हुआ।

"नही, वह बात नही है। मैं तो यह पूछ रही हू कि तुम क्या रोज़ घर से दफ़्तर के लिए निकलकर मटरगश्ती करते घूमते हो ?"

"ज़रूरी काम से आया हूं।"

"क्या ?"

"तुम्हारे पचास रुपये लौटाने हैं।"

क्षण-भर काजल ने उसकी तरफ़ ताका, फिर खिलखिलाकर हंस पड़ी।

"ओ मां," उसने कहा, "बीस बरस में सूद कितना हुआ, बतलाओ तो ?"

"हिसाब लगाओ," अविजित ने कहा, सोचा, कितनी मधुर है इसकी हंसी।

हंसी-हंसी में कितना फ़र्क होता है। संगीता हंसती है तो लगता है तुमसे तुम्हारी मानवीय गरिमा छीने ले रही है; आदमी एकदम नंगा हो जाता है। यह हंसती है तो लगता है बहुत कुछ दिये दे रही है; भयानक सरदी में जैसे कोई ऊपर दुशाला डाल रहा हो।

फ़र्क हंसी में होता है या आदमी के अपने मन में ?

"अभी चढ़ने दो," काजल ने कहा, "बुढ़ापे में काम आएगा," और फिर वैसे ही खिलखिलाकर हंस दी।

"कितनी सुन्दर लगती हो तुम हंसते हुए," अनायास अविजित के मुंह से निकल गया।

काजल की हंसी ग़ायब हो गई। चेहरा सख्त पत्थर हो गया।

"मैं सुन्दर नहीं हूं, अविजित," उसने कहा, "न बीस साल पहले थी न अब हूं। मै नहीं चाहती कोई मुझे मेरे मुह पर मुझे सुन्दर कहे।"

हतप्रभ अविजित मुह ताकता रह गया।

...झूठ नहीं कहा था मैंने...सचमुच इस वक़्त यह मुझे ख़ूबसूरत लगी थी। बीस साल पहले नहीं लगी थी, अब लगी, यह आश्चर्यजनक हो सकता है पर झूठ नही

है। पता नहीं क्यों उन दिनों सिर्फ़ इसका सांवला रंग और चेहरे पर गुदे चेचक के दाग़ ही दिखलाई देते थे। मन में करुणा उपज आती थी। इतनी भली, मेधावी, हंसमुख लड़की बदसूरत क्यों है ?

उस दिन मोतीलाल नेहरू के बचा लेने पर जब सही-सलामत हॉस्टल लौटा था तो फाटक के बाहर सड़क पर ही काजल पागलों की तरह आकर उसके गले में झूल गई थी।

"अविजित-अविजित ! ओ अविजित, झोले में तुमने मेरे नाम चिट्ठी डाली थी ? बोलो, डाली थी न।"

"हां," अविजित ने अनायास कह डाला था।

इतने लोगों के सामने कोई लड़की इस तरह लज्जा त्याग कर प्रणय निवेदन कर सकती है, वह सोच भी नहीं सकता था। वह भी काजल जैसी स्वाभिमानी लड़की। नहीं, कहकर उसका अपमान करना असम्भव था उस समय।

पर···सचमुच क्या इसी करुणामय निस्वार्थ भावना से उसने 'हां' कह डाला था ? उसके युवा गदराये जिस्म के स्पर्श से पुलक नहीं उठा था उसका शरीर ? बांहें उसके चारों तरफ कसकर सीने से सटा नहीं लिया था उसे ? अगर उसी वक़्त अपना काला दाग़ी चेहरा उठाकर वह उसकी तरफ़ ताक न उठती···उसकी बदसूरती का अहसास मन में जग न गया होता तो···

···फिर भी झूठ पलता रहा था···

"काजल," उसने विह्वल कण्ठ से कहा, "मुझे माफ़ कर सको तो···"

"अरे, छोड़ो," काजल हंस दी, "ये बतलाओ, अनित्य आजकल क्या करता है ?"

"जो आज करता है, कल नहीं करता।"

"अब तक शादी नहीं की ?"

"नहीं।"

"कहां है ?"

"पिछली बार ख़त आया तो मुग़लसराय में था। अब पता नहीं कहां है।"

"कभी मिलता तो होगा।"

"हां, जब जी चाहता है, चला आता है।"

"अगली बार आए तो मुझसे ज़रूर मिलवाना।"

"क्या करोगी मिलकर ?"

"ब्याह करूंगी उससे," काजल ने कहा और खिलखिलाकर हंस पड़ी।

संकुचित अविजित चुप रहा।

"क्या हुआ ? इतना संकोच क्यो ? ब्याह करना क्या इतना बुरा काम है ?"

"नहीं-नहीं···मैंने तो कुछ कहा नहीं।"

"भीषण ग़लती हुई मुझसे। उस दिन जब अनित्य ने कहा था—आमि तोमाके भालो बाशी—तभी झट उसका हाथ थाम लेना चाहिए था। अनित्य जैसे आदमी के साथ और जो हो, धोखा नहीं होता।"

याद करके अविजित ठठाकर हंस पड़ा, बीच ही में। बाद का वाक्य सुना ही नहीं।

पच्चीस साल पहले···मार्च १६२६···अनित्य अचानक इलाहाबाद उसके हॉस्टल आ धमका था। काजल उसके कमरे में ही बैठी हुई थी।

"मुझे पचास रुपये चाहिए," भीतर घुसते ही उसने कहा था।

"यह काजल बनर्जी हैं," अविजित ने टोककर परिचय कराया था, "और यह मेरा छोटा भाई अनित्य।"

"आमि तोमाके भालो बाशी," अनित्य ने फ़ौरन कहा था।

"क्या !" तमक कर काजल उठ खड़ी हुई थी।

"अनित्य !" अविजित दहाड़ा था।

"कुछ ग़लत हो गया क्या ?" अनित्य ने सहम कर कहा था।

"मालूम भी है जो तुमने कहा उसका मतलब क्या है—तुम इनसे प्यार करते हो ?"

"या खुदा," अनित्य ने झुककर काजल के पैर ही छू डाले थे, "माफ़ करना, तुम मेरी मां हो···यह सब उस चटर्जी के बच्चे की करतूत है। मैंने उससे पूछा, कोई बंगाली लडकी मिले तो दुआ-सलाम कैसे करनी चाहिए तो उसने यह बतला दिया।"

हंसते-हंसते काजल का बुरा हाल था।

"ओ मां, तुम्हारा भाई तो एकदम पागल है ?" उसने कहा था।

"अब जब परिचय हो ही गया तो काम की बात पर आया जाए," अनित्य बोला, "मुझे पचास रुपये चाहिए।"

"क्यों ?" अविजित ने पूछा।

"फ़ीस जमा करवानी है।"

"पिताजी ने नही भेजे ?"

"भेजे तो थे पर पचास रुपयों में आप सोचिए बम्बई घूमना क्या होता। उसके लिए तो मुझे···"

"फ़ीस के रुपयों में से तुम बम्बई घूमने गए थे ?"

"और नहीं तो बम्बई का नाम लेने से वे भेजते ?"

अविजित क्या कहता।

"साथ में अंगूठी भी बेचनी पड़ी," अनित्य ने कहा।

"तुमने मां की अंगूठी बेच दी !"

"फ़िक्र मत कीजिए, जिसे बेची उसे कह दिया था तुम मेरी मां हो।"

अविजित नाराज़ होकर कुछ कहता, इससे पहले ही काजल खिलखिला उठी, "तुम क्या हर औरत को मां कहते हो ?"

"नही, सिर्फ़ जिनके पास पैसा होता है। आपके पास पचास रुपये है ?"

"अनित्य !" अविजित फिर दहाड़ा।

"माग नही रहा भाई साहब," अनित्य ने कहा, "सिर्फ़ बतौर जानकारी पूछ रहा हूं।"

"हां, हैं," काजल ने कहा।

"मेरे पास तो पचास रुपये हैं नही," अविजित ने चिन्तित भाव से कहा, "क्या करे···नहीं, तुम मत बोलो काजल, तुमसे लेने का सवाल ही नही उठता।"

"एक काम हो सकता है," कुछ देर सोचने के बाद अनित्य ने कहा।

"क्या ?"

"आप तो आजकल खादी पहनते हैं। पहले के मिल वाले कपड़े यूं ही पड़े होंगे।"

"हां, है तो।"

"क्या करेंगे उनका ?"

"जलाएँगे।"

"कब ?"

"परसो।"

"ऐसा कीजिए, उन्हें आप मुझे दे दीजिए। मैं बेच लूंगा। काम चल जाएगा।"

"तुम अपने कपड़े क्यों नहीं बेच लेते," काजल ने कहा।

"वह तो मै बेच चुका।"

"क्या !" भौचक्का अविजित कह उठा।

"जी हा, बहुत ही मनहूस शहर निकला बम्बई। अँगूठी बेचकर पैसा मिला तो यह सोचकर रेस के घोड़े पर दाव लगाया कि जीत गया तो ऐश करेंगे बम्बई में। और वहां—बीच दौड़ घोड़े की टाग टूट गई। मजबूरन कपड़े बेचने पड़े। अब तो आपके कपड़ो के सिवा मेरे पास कुछ नही है।"

"मेरे कपड़े मेरे पास है, तुम्हारे नही," गुस्से से अविजित ने कहा, "और मैं उन्हे बेचूगा नही।"

"जला डालेंगे पर किसी के काम नही आने देगे," अनित्य बोला।

"विदेशी माल जलाना हमारी नीति है।"

"क्यों ?"

"उनका माल खरीदकर हम अपना शोषण नही करवाना चाहते।"

"खरीद तो आप चुके। शोषण भी आपका हो चुका है। हां, उन्हें जला ज़रूर सकते है पर सिर्फ़ वही लोग जिनके पास ज़रूरत से ज़्यादा कपड़े हैं। जिसके पास मिल की बुनी एक धोती है वह उसे बेचकर नंगा तो होने से रहा। इससे तो उसे एक यूनिफ़ार्म देकर लड़ने भेज दिया जाए तो वह ज़्यादा खुश रहे।"

"तो ?"

"तो कपड़े आप मुझे दे दीजिए। मैं वादा करता हूं सिर्फ़ ज़रूरतमंदों को बचूंगा, कम दाम पर।"

"नहीं," बीच में काजल बोल पड़ी, "कपड़े तुम मुझे बेच दो। मैं उन्हें जला दूंगी।"

"काजल, तुम भी···"

"नहीं तो मैं क्या जलाऊंगी ? मैं तो कबसे खादी पहनती हूं। जलाने को एक भी विदेशी कपड़ा मेरे पास नहीं है," काजल ने कहा।

"तुम भी मेरा मज़ाक उड़ा रही हो !" अविजित ने आहत भाव से कहा, "ठीक है, मैस में देने के लिए मैंने पचास रुपये रख छोड़े थे, वह तुम ले जाओ।"

"फिर आप क्या करेंगे ?"

"जेल चला जाऊंगा !" अविजित गरज उठा था, "वहां खाना मुफ़्त मिलता है !"

कुछ देर तीनों स्तब्ध बैठे रहे थे, फिर अपनी बात पर सबसे पहले अविजित ही हंस दिया था।

अन्त में काजल ने कहा था, "अभी मैं दे देती हूं, मेरे पास हैं जो। क्या कहा था गांधीजी ने उस दिन, किसी को अपने पास फ़ालतू पैसा नहीं रखना चाहिए···क्यों अनित्य, कौम्यूनिज़्म भी यही सिखलाता है न ?"

"सिखलाता नहीं, ज़बरदस्ती करवाता है।"

"वही तो। बस अनित्य, तुम बाद में लौटा देना···पांच रुपया महीना करके···ठीक है न···और क्या, ठीक तो है···" काजल ने रुपये अनित्य को पकड़ा दिये थे।

"हां, ठीक है," अनित्य ने फ़ौरन कहा था, "फ़िक्र की कोई बात नहीं है, भाई साहब आपको रुपये ज़रूर लौटा देंगे।"

अविजित काजल का विरोध नहीं कर पाया था पर उसके रुपये लौटा भी नहीं पाया था।

उसे वाक़ई जेल हो गई थी ! विदेशी माल जलाने के जुर्म में सिर्फ़ छह महीने की उस बार, पर···

"अच्छा, अविजित," अब काजल ने कहा, "बच्चों की तरह होलिकाएं जलाकर हमने क्या पाया ?"

"विदेशी माल पसन्द करने की आज़ादी," अविजित ने सूखी हंसी हंसकर कहा।

"हां, गुलाम मानसिकता को बिला शर्म पालने की आज़ादी," काजल ने कहा,

"जब हम गुलाम थे तो कानून तोड़ते थे, जेल जाते थे, यह दिखलाने को कि हमारा मन गुलाम नही है। और आज जब हम आज़ाद है···हमारा मन गुलाम हो गया है।"

"ब्रिटिश साम्राज्य का सबसे खौफ़नाक पहलू है यह," अविजित ने कहा, "हम ख़ुद अपने से बेग़ाने हो गए है। उनसे नफ़रत करने के बजाय ख़ुद से नफ़रत करने पर मजबूर है। जर्मनी ने जब किसी देश को जीता इतनी बर्बर क्रूरता से उस पर शासन किया कि उसके मन में उसके लिए गहरी नफ़रत और प्रतिशोध की भावना पैदा हो गई। पर ब्रिटेन ने हिन्दुस्तान पर दो चेहरे लगाकर इस ख़ूबी से राज किया कि हिन्दुस्तानी इलीट ख़ुद अपने देश में विदेशी हो गया। आस्ट्रेलिया की तरह कम जनसंख्या वाला देश तो था नहीं भारत कि मूल निवासियों को जंगलों में खदेड़कर नगरो में अंग्रेज़ों को बसाया जा सकता। बस यही एक तरीक़ा था; आम जनता का शोषण करो पर इलीट को बेइज़्ज़त मत होने दो। यूं भी इलीटिस्ट समाज में इलीट अपने को जनता से अलग समझता है। अंग्रेजों का अनुकरण करके जीने वाला उच्च वर्ग सामान्य आदमी से हर तरह दूर होता गया। आजादी चाही तो अपने लिए, देश के लिए नहीं। अंग्रेज़ों के रहते उन्हे एक सीढ़ी नीचे रहकर जीना पड़ रहा था और उनकी महत्वाकांक्षा थी सबसे ऊपर वाली सीढ़ी पर जीने की···"

"जी तो रहे है और ऐसे जमकर बैठे है कि ऊपर चढने की कोशिश करने वाले हर आदमी को लात मार कर नीचे धकेल देते हैं।"

"गांधीजी अगर पुल बन पाये होते···" अविजित ने कहा।

"बने तो, अंग्रेज़ और भारतीय शासको के बीच, इलीट और जनता के बीच नहीं बन पाये," काजल ने कहा, "जानते तो हो मैं इतिहास पढ़ाती हूं। तीन कालेजों से सिर्फ़ इसलिए इस्तीफ़ा देना पड़ा है कि मेरा पढ़ाया इतिहास पाठ्यक्रम की पुस्तकों से मेल नही खाता। अपने बच्चो को अब भी हम वही इतिहास पढ़ाते है जो अंग्रेज़ो ने हमारे लिए लिखा था।"

"हमने लिखा नही···"

"लिखा तो छपा नही। छपा तो पढ़ा नही गया, पढ़ाया कैसे जाता। मैंने ब्रिटिश शासन काल पर दो किताबे लिखीं, छपी भी पर मेरे सिवा शायद ही किसी ने पढी हों। इससे तो १९४७ के पहले लिखती तो अच्छा रहता। मुखालफत करने को ही लोग उन्हें पढ़ डालते पर अब···"

"एक किताब मैंने लिखी थी···" सिर नीचा करके अविजित ने कहा।

"सच?" काजल ने उत्साह के साथ कहा, "क्या नाम है? किस विषय पर है? कहां से छपी? एक ख़रीदार तो अपना पक्का समझो।"

"हो तब तो," अविजित ने कहा।

"क्यों, क्या हुआ?"

"जब लिखी, ज़ब्त हो गई और साल ही भर में मेरी हिम्मत टूट गई··· अब···"

"कब लिखी थी ?"

"१९४२ में।"

"ओह," कहकर काजल चुप हो रही।

"कहो न," अविजित ने कहा, "तुम तो एकदम कायर निकले।"

काजल चुप रही।

"शुक्रिया," अविजित ने कहा।

काजल ने उसकी तरफ़ देखा।

" 'नहीं' न कहने का," उसने कहा।

"अविजित," काजल ने पुकारा तो बीच ही में वह तल्खी से कह उठा, "पर लोग मुझे कायर नही कहते। आजकल कोई इन बातों को सुनना तक पसन्द नही करता!"

काजल ने कुछ नही कहा।

कुछ देर चुप रहकर अविजित बिल्कुल बदले स्वर में बोल उठा, "अपना घनिष्ठ अतीत क्या इतनी आसानी से भुलाया जा सकता है, मै···"

"भुलाया नही जा सकता, सही है पर उसे अपने पर हावी भी नही होने देना चाहिए," उसके स्वर के विषाद से द्रवित होकर काजल कह उठी। फिर तनिक-सा हस कर बोली, "मुझ पर तो आरोप ही यह है कि मैं झूठा इतिहास नही पढ़ाती। अतीत की कड़ुवाहट को चीनी मिलाकर गले से उतारने लायक़ नही बनाती। नही, अविजित अतीत को सहा जा सकता है, माफ़ किया जा सकता है पर भुलाया नही जा सकता। जिस क़ौम का इतिहास झूठा होता है, उसे हमेशा के लिए झूठ के बल पर जीने की आदत पड़ जाती है।"

अविजित समझ गया, सत्य के आगे उसकी क्षणिक सहानुभूति दब गई है। वह कुछ देर चुपचाप बैठा रहा, फिर लम्बी सांस खीच कर बोला, "चलूँ···"

दफ़्तर···श्यामा···घर···उद्योगमंत्री मुकर्जी···और कही दूर टिमटिमाता सोता···

"सुनो," काजल ने उसे खड़े होते देख कर कहा, "तुम्हारी किताब की कोई तो प्रति होगी।"

"शायद हो।"

"मुझे देना।"

"क्या करोगी ?"

"अपनी तीसरी किताब लिखूगी," काजल ने हंसकर कहा, "अतीत किसी का हो, है तो इतिहास का हिस्सा ही।"

"दूगा," अविजित ने कहा और जाने के लिए मुड़ गया, पर दरवाज़े पर पहुंचने से पहले पलट गया और बोल पड़ा, "तुम जैसा दोस्त मुझे फिर कभी नही मिला।"

काजल के मुंह पर लाली दौड़ गई। मधुर हंसी हंसकर उसने कहा, "देखा···बदसूरत होने में कितना फ़ायदा है।"

यह व्यंग्य नहीं है, आश्चर्य से अभिभूत अविजित ने सोचा, सिर्फ़ सच है। कितनी आसानी से बिला तल्ख़ी कह डाला इसने।

अगर हिम्मत करके, बीस-बाईस साल पहले ही वह काजल से कह पाता···काजल मै तुम्हें प्यार नही कर सकता, मै उन बेवकूफ़ आदमियो में से एक हू जिनके लिए औरत महज़ जिस्म है और जिस्म का ख़ूबसूरत होना लाज़िम है···

क्यो नही समझ पाया वह कि कोई औरत ऐसी भी हो सकती है जिसके मन में ख़ूबसूरत न होने पर कोई हीन भावना न हो, जो सच का सामना करने मे कतराती न हो, जिसे करुणा की ज़रूरत न हो।

करुणा! पौरुष के दम्भ से उत्पन्न करुणा!

कैसा पौरुष! कैसा दम्भ? शरीर में धधकती आग जो व्यक्तित्व की पूर्णाहुति लेकर जहरीला धुआ उगला करती है···उम्र-भर उसका कसैलापन सास के साथ फेफड़ो में घुलता रहता है। हर आदमी को सलीब पर लटकाया नही जाता। कुछ खुद सलीब गाड़ते है और ख़ुद जाकर उस पर टग जाते है···टंगे रहते है उम्र-भर।

···अगर तभी मै काजल से शादी कर लेता···कितने अभिशापो से बचा रहता ···श्यामा···अकर्मण्यता···संगीता···यह अपराध-भावना···

बचा रहता? वाक़ई? मेरे शरीर का अदम्य उत्ताप मुझे इस तपते मरुस्थल पर न ला पटकता?

क्या सचमुच औरत को मैने महज़ जिस्म समझा है। काजल के व्यक्तित्व का आदर नही किया, अपने समकक्ष दिमाग़ उसमें पाकर उसका सम्मान नही किया, दोस्त की हैसियत से उससे स्नेह नही किया? किया है भरपूर। बस···प्यार नही किया। नही, मैने औरत को महज़ जिस्म नही समझा···कभी नही···

आप भूलते बहुत है, संगीता···

संगीता! उफ़ इस जन्म में क्या अब कभी चैन नही मिलेगा?

सगीता अगर प्यार करके किसी से शादी कर लेती तो वह भी विद्रूप से बच जाती और मैं भी उसके अभिशाप से बरी हो जाता···शायद। पर अब···संगीता नही जानती वह मुझसे कितना भयानक बदला ले चुकी है। उसे अगर बतलाऊं···नही, उसे बतलाया नही जा सकता···किसी को नही बतलाया जा सकता···

रंजना अगर मुझे पहले मिली होती। पर नहीं···क्या होता तब? इतना प्यार आदमी तभी कर सकता है जब अपने से भरपूर नफ़रत कर चुका हो···कैसा श्राप

दिया तुमने संगीता कि वरदान बन खिल आया।

क्या कहा था काजल ने" अतीत को अपने पर हावी मत होने दो···अतीत को सहा जा सकता है, माफ़ किया जा सकता है···तुम्हारा बहुत शुक्रिया, काजल···सहूंगा मैं अपने अतीत को उसका सामना करके···

श्यामा से मैंने विवाह किया···

'उसे एक खूबसूरत खिलौना समझकर।' अनित्य होता तो कहता। क्यों होता अनित्य ? जब भी मैं सोचना शुरू करता हूं, अनित्य वहां क्यों मौजूद हो जाता है···

'किसी की खूबसूरती पर मुग्ध होना अपराध है क्या ?' उसने सफ़ाई दी।

'नही, दम्भ।'

'दम्भ ?'

'हां, दम्भ। दम्भी लालच। औरत कोई कालीन है या मूर्ति या फूलों का गुलदस्ता कि उसकी खूबसूरती देखकर आप उसे हासिल करने को बेचैन हो जाएं ?'

'पर श्यामा की तरफ तुम्ही ने मेरा ध्यान खींचा था, याद है ?'

'मैंने ? मैने कहा और आप मान गए ! बात यह है भाईसाहब, मैं जानता था आप सिर्फ़ ऐसी औरतों को प्यार कर सकते है जिन पर ऊंचाई से कृपादृष्टि डाल सकें। काजल का व्यक्तित्व आपके व्यक्तितत्व से बड़ा था, इसीलिए आप···"

'मानता हूं, अनित्य, स्वीकार करता हूं, काजल का व्यक्तितत्व मुझसे बड़ा है पर···'

'और संगीता का ?'

'संगीता ? वह···वह तो मेरी तरह ही···कमजोर है।'

'कम-अज़-कम अपने को धोखे में तो नही रखती।'

'धोखे में मैने भी उसे कभी नहीं रखा। पर मेरी ज़िम्मेवारियां···श्यामा··· मुझे उसके लिए सोचना था···'

'हां, खूबसूरत खिलौना जिस्मानी खेल खेलने से इन्कार कर दे तो सोचना बहुत पड़ता है।'

'मैंने श्यामा पर कभी कोई ज़्यादती नही की।'

'नहीं, आप कमज़ोर पर ज्यादती नही करते, बस उसकी कमजोरी को बढ़ाते हैं। श्यामा अनुग्रह मांगती गई, आप देते गए, वह मांगती गई···'

'अनित्य ! ज्यादती तुम कर रहे हो मुझ पर !' अविजित ने चीखकर कहा।

कहां है अनित्य ? अनित्य मेरे मुह पर यह सब कहेगा ? हां, कह सकता है, वह कुछ भी कह सकता है।

पर कितना कुछ है जो अनित्य नही जानता और अविजित जानता है···क्या सचमुच कुछ है अविजित का जो अनित्य नही जानता···जानता हो भी तो···उससे बड़ी त्रासदी यह है कि अविजित जानता है···अपने को खूब अच्छी तरह जानता है···

६

"अगले इतवार को संगीता की शादी है," श्यामा ने कहा।

उसके स्वर के उत्साह से अविजित चौक उठा।

"जाना चाहती हो?" समझ कर उसने कहा।

"अभी तो पूरा हफ़्ता है," श्यामा ने रुक-रुक कर कहा, "अगर तब तक···उठ सकूंगी मैं?"

"क्यों नहीं," अविजित ने अपने स्वर को जोशीला बना कर कहा, "चलो, अभी तुम्हें कुर्सी पर बिठलाए देते है···शाम को गाड़ी पर चक्कर लगवा देंगे···देखना परसों तक तुम खाने की मेज पर बैठकर खाना खाओगी···एक हफ़्ते में क्यों नही होगा, ज़रूर होगा।"

यही परिपाटी है।

हर बार, कुछ दिन रोगशैया पर गुज़ार लेने पर, श्यामा यूं ही अविजित के सहारे रेंग-रेंग कर बिस्तर छोड़ती है और कुछ हफ़्तों के लिए इस लायक हो जाती है कि सारा दिन आराम करने के बाद, शाम को थोड़ा-बहुत बाहर घूम आए, खाने की मेज़ पर बैठकर सबके साथ खाना खा ले और जमकर प्रोत्साहित किये जाने पर, एकाध नाटक या चलचित्र भी देख आए।

ऐसे दिनों में अविजित को खूब सतर्क रहना पड़ता है। जरा-सी ग़लती, छोटे-से-छोटा मानसिक संताप भी उसे वापिस बिस्तर पर धकेल देने के लिए काफी होता है; अनजाने बोला गया एक तल्ख जुमला, बच्चों की आपसी लड़ाई, नौकरों की चिख-चिख, कुछ भी।

पहले-दूसरे दिन जब उसके पांव बिस्तर और कुर्सी के बीच लड़खड़ा रहे होते हैं, इस क़दर सावधानी बरतनी पड़ती है कि सांस भरने और छोड़ने के बीच भी अविजित को सोच लेना पड़ता है।

अविजित ने आरामकुर्सी को पलंग से सटा कर रख दिया। दोनों हाथों का सहारा देकर श्यामा को बिस्तर पर से उठाया और क़रीब-क़रीब गोदी में लेकर कुर्सी पर बिठला दिया।

स्वर्णा ने पानी का गिलास आगे बढा दिया। अविजित ने उसके ओठों से लगा दिया। दो घूट भर कर श्यामा आंखें मूदे बैठी रही। अविजित की हिम्मत नही हुई कि कह सके, आंखें तो खोल लो।

खोखी आकर दरवाज़े पर डले परदे के पीछे खड़ी हो गई। शुभा दबे पांव कमरे के इर्द-गिर्द चक्कर काटती रही। बराबर के कमरे में प्रभा किताब हाथ में लिए दम साधे बैठी रही।

"पांच मिनट हो गए," कुछ देर बाद श्यामा ने पूछा।

"हां," अविजित ने घड़ी देखकर कहा।

"लेटूंगी।"

उसी सदय सतर्कता के साथ अविजित ने उसे बाहो में घेरा और बिस्तर पर लिटा दिया।

उसी वक्त 'अन्ना-अन्ना' पुकारता सुधांशु कमरे में घुस आया। सब लोग घबरा गए पर स्वर्णा ने आगे बढ़कर फ़ौरन उसे पकड़ लिया और बाहर भाग गई। परेशान से अविजित ने श्यामा की तरफ़ ताका पर वह बुत बनी पड़ी थी। शायद सुधाशु की आवाज उस तक नही पहुंची थी। सबने तसल्लीबख्श सुकून महसूस किया। मुहिम की पहली मजिल बिला अड़चन तय हो गई। श्यामा ने एक बार भी नही कहा कि उसे चक्कर आ रहा है। अविजित के दिमाग़ को कुछ कचोटता ज़रूर रहा—सुधाशु तुतलाता क्यो है ? पर श्यामा की ढेर सारी ज़रूरतो के बीच सवाल दो-चार बार उठकर खुद दब गया।

कुल मिलाकर उस दिन वह हल्का मन लेकर ही खाने के कमरे की तरफ़ चला। कल से श्यामा भी यहां बैठकर खा पाए शायद। अच्छा लगता है जब वह उन सब के साथ होती है, जैसे वे भी एक सामान्य नार्मल परिवार के सदस्य हों। श्यामा की उनके जीवन में क्या भूमिका है ? फिर भी'' उनमें से कोई कल्पना भी नहीं कर सकता कि एक दिन नीम-अंधेरे कमरे के उस कोने में बिस्तर पर पड़ी यह औरत नही रहेगी।

हर बार कोई छोटा-मोटा लक्ष्य सामने रखकर ही श्यामा बिस्तर छोड़ने के अभियान में जुटती है। इस बार है संगीता की शादी। काश, कुछ और होता। सगीता का ब्याह देखने जाने का अविजित को कोई चाव नही है। उसकी शादी को लेकर उसके मन में कोई रंजिश नही है। खुशी के लिए अपनी पसन्द से शादी करती तो''अविजित को मुक्त होने का एक रास्ता मिल जाता, एक तर्क। पर अब ? इतनी गहरी वितृष्णा मन में रखकर शादी कर रही है, किसे दण्ड देने को ? अपने को, अविजित को या उस

तीसरे प्राणी के ज़रिये पूरी दुनिया को—जिसका इसके सिवा कोई क़सूर नहीं है कि उससे नफ़रत की जा सकती है।

नही, अब आज यह सब नहीं सोचूंगा, अविजित ने अपने को फटकार दिया और चेहरे पर मुस्कराहट लाकर खाने के कमरे में दाखिल हुआ।

"सब भात खतम करना है, समझा," मेज़ पर स्वर्णा खोखी को डाट रही थी।

"भात का एक कौर छोड़ेगा तो मालूम एक साल अकाल पड़ेगा।"

"क्यों नाहक़ उसे डरा रही हो," अविजित ने हस कर कहा, "अकाल कम खाने से नही, ज़्यादा खाने से पड़ता है।"

अविजित की हंसी का जादू स्वर्णा पर नही चलता।

"जास्ती लेने को नही बोला हम," उसने कहा, "पर जो लेगा खतम करेगा। अन्न का अपमान करेगा तो अकाल पड़ेगा ज़रूर।"

"जितनी खुशगवार बातें खाना खाते वक़्त हमारे घर पर होती है, शायद ही कही होती हों," प्रभा ने कहा, "एक रोटी देगी आयाजी।"

रोटी उसे पकड़ा कर स्वर्णा ने उग्र स्वर में कहा, "खाली मज़ाक करता है। देखा है अकाल कभी ?"

"नही।"

"हम देखा है। बंगाल का अकाल—तैंतालीस में।"

"जाने दो," अविजित ने टोका, पर स्वर्णा ने ध्यान नहीं दिया।

"हिन्दु लोग गाय नही खाता न, पर हम देखा···अपना आंख से···कलकत्ता में···एकटा गाय पट कर के सड़क पर गिरा और मर गया। एक सैकिण्ड का भीतर पचास मानुष ऊपर आ कर जुट गया। हाथ से खीच-खीच कर खाल उधेड़ने लगा। एक आदमी चाकू निकाल कर वही उसको काट डाला। काटा तो खून गिरा। गिरने नहीं दिया वो लोग। चट-चट कर चाट गया। सारा मानुष टूट पड़ा उस पर। कच्चा मांस नोच-नोच कर खाने लगा। वो धक्का-मुक्की मचा कि क्या बोले। दो वेचारा मानुष सह नहीं पाया तो पट से सड़क पर गिर पड़ा, जाने मरा कि वेहोश हो गया। हम अपनी आंख से देखा, चार आदमी चुपके से निकला और उन दो मानुष को घसीट कर गली में ले गया। हम बोलता है तुम को···उनको भी वो लोग वैसे ही नोच-नोच कर खाया होगा—गाय का माफ़िक···"

"औऽ !" मुँह पर हाथ रख कर शुभा उठी और बाहर बेसिन पर दौड़ गई।

"एई, क्या हुआ ? किधर जाता है," स्वर्णा ने पुकारा, "खाना छोड़ कर किधर गया ?"

"रहने दो उसे," अविजित ने क्षुब्ध स्वर मे कहा, "खाने के वक्त ये सब बातें···"

"क्यों साहब," स्वर्णा ने कहा, "जब अकाल पड़ा तब तो कोई खाना नहीं छोड़ा। रासबिहारी अढ़तिया उन्ही दिनों चार मंज़िल का मकान नही बनवाया ?"

अविजित के पास कोई जवाब नही था।

"शुभा, ओ शुभा !" स्वर्णा ने फिर पुकारा।

"छोड़ न उसे," प्रभा ने कहा, "वह अब नही खाएगी।"

खोखी ने शुभा की थाली पास सरकाई और उसमें बचा पड़ा खाना, कौर बना कर, जल्दी-जल्दी निगलने लगी।

"अरे-अरे, क्या करती है," प्रभा ने हतप्रभ भावसे कहा, "उसका जूठा क्यों खा रही है ?"

"भात छोड़ने से अकाल पड़ता है," खोखी ने आतंकित भाव से कहा और निवाले निगलती रही।

प्रभा एकटक उसे देखती रही। विस्मय, वितृष्णा और प्रशस्ति का मिला-जुला भाव उसकी आंखों में तैरा और धीमे से उसने अपनी थाली भी उसके आगे सरका दी। कहा, "यह भी खा ले।"

"प्रभा !" अविजित चीख उठा, "मज़ाक मत उड़ाओ उसका !"

"आई एम सॉरी," भौंचक प्रभा ने कहा, "पर मैंने मज़ाक नही उड़ाया उसका।"

"और रोटी लेगा ?" स्वर्णा ने पूछा।

"नहीं-नहीं !" प्रभा और अविजित ने इकट्ठा कहा और थाली में बचा खाना निबटाने लगे।

अकाल के दिनों में चौमंज़िला मकान रासबिहारी अढ़तिया ने बनवाया था, मैंने नहीं, अविजित सोच रहा है, मैं तो उन दिनों जेल में था। स्वर्णा ने जो कहा, ज़रूर देखा होगा पर उसमें मेरा क्या क़सूर ? फिर रासबिहारी का गिल्ट मुझे क्यों खगोर रहा है ? मैं तो जेल में था और जेल से छूटने पर सीधा दिल्ली आ गया था।

ठीक है, मेरे जेल चले जाने पर श्यामा और बच्चों को कोई दिक्क़त नहीं हुई थी। कलकत्ते में मैं बिड़ला ग्रुप के साथ काम करता था, वे भले लोग हैं, मुझे जेल होने पर पूरे साल मेरी तनख्वाह श्यामा को पहुंचाते रहे थे। जेल में भी मेरे साथ १६३२ की तरह का दुर्व्यवहार नहीं हुआ। पर उसमें मैं क्या कर सकता हूं···अगर मैं बिड़ला कम्पनी में अच्छी पोज़ीशन पर था और बिड़ला ग्रुप का वॉर एफ़र्ट, ब्रिटिश सरकार के लिए मानी रखता था, तो···महज एक संयोग की बात है और फिर···बिड़ला जी को तो खुद गांधीजी ने मान दिया था। हर्ज भी क्या है ? अगर कोई उद्योगपति सत्याग्रह में हाथ बंटाना चाहे···आखिर पैसे के बिना सत्याग्रह चल नहीं सकता और जो शौक़ से दे उसके लेने में हर्ज़ क्या है ? वैसे भी यह सब सोचना मेरा काम नहीं था, कुछ भी सोचना

मेरा काम नहीं था। हमने तो गांधीजी को नेता ही नही भगवान माना था, सिर्फ़ मैंने नही, मेरे जैसे लाखों-करोड़ों लोगो ने, इसलिए सोचने का काम उनके ज़िम्मे था।

पर ऐसा हुआ क्यों ? क्यो हमने नेता नही, भगवान चाहा ?

क्यो ! एक प्रलयंकारी शब्द ! क्यो पूछ कर काम करो तो अपने पर निर्भर रहना पड़ेगा। क्यों पूछने का अधिकार त्याग दो एक बार, मन की सब दुविधाएं मिट जाएंगी।

अन्ध-भक्ति और निर्द्वन्द्व अनुकरण—उसने मांगा, हमने दिया। या हमने देना चाहा, वह ग्रहण करता गया।

"अवश्य ही जब मैं मरूंगा तो भी मेरी ज़बान पर अहिंसा ही होगी लेकिन जिन मायनों में मैं इससे बंधा हुआ हूं आप नही बंधे इसलिए आपको अधिकार है कि आप दूसरा कार्यक्रम बनाकर देश को आज़ाद करा लें," गांधीजी ने कहा था।

उनकी तरफ़ से पूरी छूट थी। पर देश को आज़ाद करवाने के लिए जनक्रान्ति की जरूरत थी और जनमानस को भगवान की, इसलिए इसके सिवा कोई विकल्प नही था कि 'क्यों' पूछना छोड़कर भगवान के आदेशों का मूक पालन किया जाए। पर··· कुछ लोगों में 'क्यों' आसानी से नही मरता···फिर भी···जाने दो···अविजित ने गांधी जी को माना, गांधीजी ने बिड़लाजी को माना और अगर बिड़लाजी के कारण अविजित को जेल में 'ए' क्लास मिल ही गई तो वह मना क्योंकर करता ? कौन जाने बिड़लाजी का 'वॉर एफ़र्ट' काम आया या ससुर जज सिंघल का ओहदा ? फिर अविजित का जुर्म ही क्या था ? एक किताब ही तो लिखी थी। छपते ही ज़ब्त हो गई। जिसने छापी उसे भी गिरफ़्तार कर लिया गया···बेचारा अवधनारायण ! 'बी' क्लास में जेल काटनी पड़ी, छापाखाना अलग ज़ब्त हो गया। जेल से छूटकर आया तो सुना था, खाने तक को मोहताज···

छोड़ो···इतनी पुरानी बात हो गई···अब उसका क्या ज़िक्र···

अविजित सिगरेट जलाकर सोफ़े पर बैठ गया···सामने पड़ी पत्रिका हाथ में उठा ली। बेकार ! वह जानता है कोई फ़ायदा नही होगा···वह कुछ भी कर ले···अब उसे चड्ढा याद आएगा···

लंगड़ा चड्ढा ! फतेहगढ़ जेल से छूटकर आया, हड्डियों का ढांचा चड्ढा !

'सी' क्लास का क़ैदी···बुखार आया···मशक्कत पूरी न हुई···मार पड़ी··· एक टांग टूट गई···अंधी कोठरी में बंद कर दिया गया···कम्बल छीन लिया गया··· बुखार निमोनिया में बदल गया···

"इससे वज़न कुछ घट गया, यही बीसेक पौंड," चड्ढा ने हंसकर कहा था, "वरना अभी भी तेरे जैसे दो-तीन को···" और इतना कहकर ही हांफ़ गया था।

"आराम करो," अविजित ने भरे गले से कहा था, "बहुत कमज़ोर हो गए हो।"

"अब यार इन्क़लाबी शौक़ फरमाएंगे तो कुछ-न-कुछ तो होगा ही," एक बार पूरा दम लगाकर चड्ढा ठठाकर हंस दिया था। पर देर तक निढाल पड़ा रहा था।

फिर बोला, "तू बतला, तू जेल नहीं गया?"

"गया था।"

"कब छूटा?"

"बहुत दिन हो गए। साल-भर ही रहा।"

"हां, अपने को कुछ ज्यादा ही घिस डाला सालों ने। दुनिया में क्या कुछ हो गुजरा और हम जेल में पड़े सड़ते रहे। अच्छा यह बता, हमने लड़ाई बन्द क्यों कर दी? ब्रिटेन अपनी लड़ाई जीत गया पर हम? गांधीजी ने कहा—करो या मरो—और जब जनता कर गई तो कह दिया इस आन्दोलन से हमारा कोई ताल्लुक़ नहीं है, क्यों?"

क्यों? चड्ढा के भीतर का 'क्यों' तब भी ज़िन्दा था। बार-बार वह 'क्यों' पूछता था और अविजित···

पहली बार 'क्यों' उसने पूछा था उस दिन···सत्ताइस फरवरी उन्नीस सौ इकतीस को। उसके बाद से बदलता ही चला गया था चड्ढा···बदलता या ऊंचा होता···

उस दिन···

"देख रहा है, अविजित," चड्ढा ने कहा था।

"हां।"

"बस देखता ही रहेगा, अविजित," चड्ढा ने कहा था, "यह नहीं पूछेगा वह वहां अकेला क्यों मर गया?"

अविजित के पास जवाब नहीं था। वह देखता ही रहा था—स्तब्ध, रोमांचित, लज्जित।

वह क्या, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के हिन्दू बोर्डिंग हाउस के सभी साथी देख रहे थे। देख रहे थे कि पुलिस के सिपाही चन्द्रशेखर आजाद के शव को ट्रक पर लाद रहे हैं···देख रहे थे और चुप थे···

सुबह नौ बजे के क़रीब, कोतवाली से सिटी रोड पर मस्कट सम्भाले पुलिस जवानों को आता देख, अविजित और चड्ढा बाहर अहाते में खिंच आए थे। उनके देखते-देखते जवानों ने एल्फ्रेड पार्क घेर लिया था और फिर···गोलियां चलने की धांय-धांय हॉस्टल को दहलाती हुई कितने लड़कों को बाहर निकाल लाई थी।

दनादन गोलियां चलती रहीं थीं। एक···दो·· तीन···हर धमाके के साथ अविजित का दिमाग़ आगे का नम्बर जोड़ लेता था।

जल्दी ही नम्बर बरगला गया था। न जाने कितनी गोलियां एक साथ गुर्रायी

थीं

कौन है अन्दर? कौन? अविजित का दिमाग़ तड़क रहा था।

भीड़ बढ़ रही थी।

लोग बौखला रहे थे।

बार-बार एक-दूसरे से पूछ रहे थे—कौन है वहां? कौन? कौन?

"...कोई क्रान्तिकारी है।'

"कौन?"

"पता नहीं।"

"कितने लोग हैं?"

"गोलियों की आवाज़ से लगता है चार-पांच तो होंगे ही।"

"कौन लोग है?"

"पता नही।"

"सुना है, आज़ाद है, चन्द्रशेखर आज़ाद।"

"आज़ाद इलाहाबाद में है?"

"सुना है, चांद के सम्पादक से मिलने आए है।"

"तुम्हें कैसे मालूम?"

"मालूम है। मैं इण्डियन प्रेस में काम करता हूं।"

"ओह...तब तो..."

"हां, वहीं हैं। वही!"

"और कौन है? कौन-कौन है?"

"आज़ाद हैं। पक्की बात है, आज़ाद ही है।"

"और...? और कौन है साथ में?"

"और कोई नहीं है। बस आज़ाद है।"

"नामुमकिन! यह कैसे हो सकता है? अकेला आदमी...इतनी गोलियां..."

भीड़ में सन्नाटा छा गया।

अकेला! एक आदमी, अकेला, गोलियों का सामना करता हुआ और इतने सारे लोग बाहर, गोलियों की पहुंच से दूर, सुरक्षित, निष्क्रिय!

अगर हम सब मिल कर पार्क पर धावा बोल दें, अविजित ने सोचा था, कम नहीं, यहां सौ लड़के तो होंगे।

पर...होगा क्या? एक जलियांवाला बाग़ और बन जाएगा।

एक के बजाय सौ शहीद!

क्यों नहीं? सत्याग्रह के मानी ही हैं शहादत, पर..

गान्धीजी ने आन्दोलन बन्द कर रखा है...लार्ड इर्विन से समझौते की बातचीत

चल रही है।

"देख रहा है अविजित," चड्ढा चीखा था, "वह वहां अकेला है।"

अविजित चुप रहा था।

"मैं जाता हूं," चड्ढा ने कहा था और आगे दौड़ पड़ा था।

"पागलपन मत कर," अविजित ने उसे कौली में भर कर रोक लिया था।

"तू उस तक नहीं पहुंच सकता, बीच ही में भुन जाएगा।"

"तो ऐसे ही देखता रहूं ?" चड्ढा ने कहा था और देखता रहा था···

"काश, मेरे पास एक पिस्तौल होती," उसने कहा था और खड़ा रहा था···

गोलियों का शोर धीमा पड़ता हुआ दम तोड़ गया था।

एक अंतिम गोली जोर से सुबकी थी···फिर मातमी चुप्पी छा गई थी···

उन्होंने देखा था, पुलिस के जवान अपना शिकार ट्रक पर लाद रहे हैं···

"आज़ाद का शव हमें दो ! आजाद का शव हमें दो !" चीखता चड्ढा सहसा अविजित का हाथ छुड़ा कर आगे दौड़ गया था।

पुलिस के सिपाहियो ने उसकी तरफ़ देखा तक नही था।

"आज़ाद का शव हमें दो !" चड्ढा मुतवातिर चीख रहा था और पुलिस के घेरे को तोड़ उन तक पहुंचने की कोशिश कर रहा था। बरबस अविजित और साथी लड़के उसके पीछे खिंचे चले आ रहे थे।

अंग्रेज़ पुलिस अफ़सर और हिन्दुस्तानी सिपाहियों के चेहरों पर नफ़रत और हिक़ारत ही नहीं, वहशियाना गर्व भी चिलक रहा था। सचमुच क्या यह लोग हिन्दुस्तानी है, अविजित ने सोचा था और समझा था कि उस वक़्त वे हिन्दुस्तानी या अंग्रेज नहीं, महज़ शिकारी थे जिन्होने तभी-तभी शेर का शिकार खेला था। गीदड़ों की इस भीड़ की उनके लिए क्या हस्ती हो सकती थी।

"आजाद का शव !" इस बार चड्ढा के साथ युवकों की भीड़ भी चीखी।

पुलिस के एक सिपाही ने बड़ी लापरवाही के साथ चड्ढा की तरफ़ ताका और अपनी राइफल का कुन्दा उसके सिर पर दे मारा।

खून से लथपथ चड्ढा अविजित की बांहों में आ गिरा और···आज़ाद के शव के बजाय घायल चड्ढा को उठाए वे लोग बोर्डिंग हाउस लौट आए !

"कोई गड़बड़ नहीं होनी चाहिए," बाद में अविजित ने लड़कों से कहा था, उस क्षणिक उबाल के शान्त हो जाने के बाद। "आजकल गाधीजी और लार्ड इर्विन के बीच समझौते की बातचीत चल रही है। ऐसा कोई वारदात नही होनी चाहिए जिससे उस पर बुरा असर पडे।"

"क्यों ? समझौता क्यों ?" चड्ढा ने पूछा था। और हमेशा की तरह अविजित के पास 'क्यों' का जवाब नहीं था।

जिसने सवाल पूछने का अधिकार किसी और के हवाले कर दिया हो, उसके पास जवाब होगा भी कैसे ?

घण्टे भर के अन्दर एल्फ्रेड पार्क में मेला लग गया था। लगता था पूरा इलाहाबाद शहर वहां उमड़ पड़ा है।

मैदान की खून रिसी मिट्टी को सिर लगा कर लोग शहादत के हिस्सेदार बन गए। पेड़ पर फूल मालाएं चढ़ गईं। शहीद के नाम पर चन्द आंसू बिखर गए।

किसी ने उनसे नहीं पूछा, तुम लोग तमाशबीन बने क्यों खड़े रहे। पर बहुत दिनों तक हिन्दू बोर्डिंग हाउस के लड़के एक-दूसरे से आंख नहीं मिला सके।

पांच मार्च १९३१ को गांधी-इर्विन समझौता हो गया और चड्ढा ने अखबार ला कर उसके सामने कॉमन-रूम में पटक दिया।

"यह विश्वासघात नहीं तो क्या है ?" उसने कहा।

अविजित ने आखें अखबार में गड़ा लीं।

"यह देख, यह !" चड्ढा ने उंगली से दिखलाया।

अविजित ने पढा—धारा नम्बर दो के अंतर्गत विधान सम्बन्धी प्रश्न पर सम्राट सरकार की अनुमति से यह तय हुआ है कि हिन्दुस्तान की वैध शासन की उसी योजनापर आगे विचार किया जाएगा जिसपर गोलमेज़ कान्फ्रेन्स में पहले विचार हो चुका है। वहां जो योजना बनी थी, संघ शासन उसका अनिवार्य अंग है, इसी प्रकार भारतीय उत्तर-दायित्व और भारत के हित की दृष्टि से रक्षा (सेना), वैदेशिक मामले, अल्पसंख्यक जातियों की स्थिति, भारत की आर्थिक साख और ज़िम्मेदारियों की अदायगी जैसे विषयों के प्रतिबन्ध या संरक्षण भी उसके आवश्यक भाग हैं —

"यह कैसे हो सकता है ?" अविजित के मुंह से निकला।

"एक साल पहले ही तो पूर्ण स्वाधीनता का लक्ष्य हमने धूम-धड़ाके के साथ अपनाया था और अब गोलमेज कान्फ्रेन्स के लिए लन्दन जाना स्वाधीनता का पर्याय हो गया," चड्ढा ने कहा।

"ऐसा नहीं हो सकता," अविजित ने कहा, "ज़रूर इसमें और धारा होगी··· कुछ तो लिखा होगा कहीं···पूरा पढने दो मुझे।"

"कहीं कुछ नहीं है," हरीश ने भीतर घुसते हुए कहा था, "मैंने पूरा पढ़ लिया है। गांधीजी ने नमक बनाने की इजाज़त के लिए देश को बेच दिया।"

"बकवास मत कर।" सरण ने तमक कर कहा।

वह हरीश के साथ उससे लड़ता-झगड़ता ही भीतर आया था।

"गांधीजी की बात तेरे भेजे में नहीं आती तो बेकार टिर-टिर क्यों किए

जा रहा है। यह देख, साफ़ लिखा तो है यहां—गांधीजी ने अख़बार वालों से बातचीत करते हुए कहा है कि वे स्वतंत्रता के प्रश्न पर अटल हैं। 'भारत के हित में' शब्दों का अर्थ उन्होंने यही लगाया है।" उसने सफ़ाई देते हुए कहा।

"गान्धीजी के अर्थ लगाने से क्या होता है। बाक़ी लोग अन्धे-बहरे है क्या? अगर कल को गान्धीजी कहने लगे कि भारत की स्वतंत्रता का अर्थ है अंग्रेजी शासन का और तीस बरस टिके रहना तो तुम लोग उसे भी मानकर बैठ जाओगे," हरीश ने बिदक कर कहा।

"क्या इसी लिए हमने साइमन कमीशन का विरोध किया था? इसीलिए पुलिस के डंडे खाये थे? इसीलिए एक साल से हमारे लोग बहादुरी दिखला रहे थे?" पास बैठा निखिल बेहद उत्तेजित हो कर बोल उठा।

"और मालूम है," हरीश ने कहा, "भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव का ज़िक्र तक करना गान्धीजी ने ज़रूरी नही समझा। इतनी बड़ी-बड़ी सिद्धान्त की बातें और वक़्त आने पर अपना संगठन सब कुछ हो गया। कांग्रेस के सत्याग्रही जेलों से छोड़ दिये जाएँ, बस सविनय-आज्ञा-भंग-आन्दोलन वापिस ले लिया जाएगा। उन लोगों से कोई सरोकार नही है जो स्वतंत्रता के लिए अपनी जान की बाजी लगा चुके हैं।"

"अरे, बंगाल में सैकड़ों आदमी नजरबन्द है, सैकड़ों। मुक़दमा चला नही, सजा हुई नहीं पर जेल में बन्द है। उनका क्या होगा? कौन सोचेगा उनके लिए?" चटर्जी बोला।

"मेरे मामा एक खबर सुना रहे थे," निखिल ने इधर-उधर देख कर स्वर धीमा करके कहा।

"क्या?" सब चौकन्ने हो गए।

"कह रहे थे, कुछ दिन पहले चन्द्रशेखर आजाद जवाहरलाल जी से मिले थे।"

"क्यों?"

"यही सवाल उठाने। उन्होंने यही पूछा था उनसे, समझौता होने पर उन क्रांतिकारियों का क्या होगा जो गांधीजी के आन्दोलन से अलग रह कर काम कर रहे थे। क्या वे लोग वैसे ही पुलिस की निगाहों से छिपते फिरते रहेंगे। उन्हें क्या कभी चैन से बैठने नही दिया जाएगा?"

"फिर?"

जवाहरलाल जी ने कहा, "वे उनके लिए कुछ नही कर सकते।"

लड़कों के बीच सकता छा गया। छह दिन पहले का दृश्य आंखों के सामने उभर आया। अविजित के बदन की खाल सिकुड़ उठी, जैसे कोई भूत उल्टे पांव कमरे में घूम गया हो। जो आदमी अकेला, एक पिस्तौल के सहारे बत्तीस मिनट तक चालीस पुलिस सिपाहियों से लड़ता रह कर और गोलियों से बदन छलनी हो जाने पर भी, तब तक नही मरा जब तक अपने हाथ की गोली खुद न खा ली, कितनी भयंकर स्थिति में किसी के पास यह पूछने गया होगा, सभी समझ रहे थे।

एल्फ्रेड पार्क के बीच खड़ा वह दीर्घकाय पेड़ जिसके पीछे से आज़ाद लड़े थे अब नहीं है। उसकी पूजा-अर्चना होती देख अंग्रेज़ कलेक्टर ने उसे जड़ से उखड़वा दिया है। फिर भी पूजा जारी है। लोग उखड़े पेड़ की पोली धरती पर ही मालाएं चढ़ा जाते हैं। अब कुछ दिन बाद भगतसिंह और उनके साथियों को भी फासी हो जाएगी। यही सब तब भी होगा। लोग उनका नाम लेकर रोए-पीटेंगे, फूल मालाएं चढ़ाएंगे और...सत्याग्रही छूट जाएंगे...गाधीजी लंदन जाएंगे...हम लोग हाथ-पर-हाथ धरे इन्तज़ार करेंगे कि वे एक और समझौता ब्रिटिश सरकार से हमारे लिए करें...बस ! बलिदान का ऋण क्या ऐसे ही चुकाया जाता है ?

"वे कर भी क्या सकते थे ?" अविजित ने सुना, सरण कह रहा है।

"क्यों, कम-अज़-कम सरदार भगतसिह, राजगुरु और सुखदेव की फासी रद्द करने को समझौते की आवश्यक शर्त बना सकते थे," हरीश ने कहा।

"इर्विन कभी नही मानता।"

"तो आन्दोलन चालू रखते। छब्बीस जनवरी की प्रतिज्ञा कुछ सोच कर की थी न ? इसलिए तो नही कि गाधीजी जब चाहें डुगडुगी बजा कर तमाशा समेट लें।"

"मामा कह रहे थे," निखिल ने कहा, "गांधीजी ने अलग से सरदार भगतसिह और उनके साथियों की रिहाई की बात की थी पर वाइसराय ने इन्कार कर दिया।"

"अलग से !" चड्ढा जो देर से चुप था फट पड़ा था, "अलग से बात करने के मानी ? बिना दबाव के सरकार भला कोई बात क्यों मानने लगी। मैं तो कहता हूं वे चाहते ही है कि आतकवादियों को फांसी लग जाए।"

"कोरी बकवास है," सरण ने कहा, "सब जानते है गांधीजी हिसा के ख़िलाफ़ है इसलिए आतंकवादियों के लिए कुछ करना उनके सिद्धान्त के ख़िलाफ़ है। गोपीमोहन साहा की भी उन्होंने इसीलिए निन्दा की थी। १९२४ मे ही अखिल भारतीय काग्रेस कमिटी की बैठक मे उन्होने यह बात साफ़ कर दी थी।"

"निन्दा तो उन्होने वाइसराय की ट्रेन के नीचे बम विस्फोट करने की भी कम नही की थी। हमारा कहना है कि इस तरह की बाते ब्रिटिश सरकार को एक तरह का बढ़ावा देती है।"

"हां, यह तो है," अविजित ने कहा, "पर उनके सिद्धान्त की बात जो है, उसे वे कैसे छोड़ सकते है। गाधीजी किसी को अहिंसा पर चलने पर मजबूर तो नही करते। उन्होंने कहा तो था, जो अहिसा को नही मानता उसे काग्रेस से बाहर रह कर लड़ाई छेड़नी होगी।"

"और बाहर रह कर लड़ाई करने का मतलब..." हरीश ने कहना शुरू किया कि अखबार में आखें गड़ाए बैठा करीमबख़्श अचानक बोल उठा, "एक बात है। चन्द्रशेखर आज़ाद के इलाहाबाद आने की ख़बर पुलिस को कैसे हुई ?"

"अरे पुलिस तो कबसे उनके पीछे थी," अविजित ने कहा।

"वही तो। छः साल से फरार थे, पुलिस उन्हे पकड़ नही पाई। अब अचानक..."

"उनके दल के दो-तीन आदमी मुखबिर जो हो गए थे। वह जयगोपाल···और फनीन्द्र घोष और क्या नाम था···पढ़ा नहीं था अख़बार में। उन्हीं की मदद से···"

"अमां, उसे तो तीन साल होने को आए। उनकी मदद से पकड़े गए होते तो अब तक कब के···"

"तुम कहना क्या चाहते हो ?"

"सोच कर अजीब-सा लगता है, जवाहरलाल जी से मिले और इतनी जल्दी पकड़ लिए गए।"

"क्या मतलब !" अविजित तन कर खड़ा हो गया," तुम्हारा इशारा किस तरफ़ है ?"

"मैं तो सिर्फ़ यह कह रहा हूं कि सोच कर अजीब-सा लगता है···"

"क्यों लगता है अजीब-सा ! यह सोचने की हिम्मत कैसे हुई तुम्हारी ? फिर ऐसी बात ज़बान पर मत लाना वरना···"

"वरना क्या कर लोगे तुम ?"

"क्या करूंगा ?" अविजित ने दोनो बाज़ू फैलाए और करीमबख्श को बांहों में थाम कर ऊपर उठा लिया।

उसी तरह हवा में उसे टागे-टांगे कहा, "कर तो बहुत कुछ सकता हूं।" फिर धीरे-धीरे वापिस धरती पर उतार कर बोला, "पर करूंगा नही।"

"इसे कहते है अहिसा," दबी ज़बान में हरीश ने कहा तो सब लड़के ठठा कर हंस पड़े।

गुस्से से थर-थर कांपता क़रीमबख्श कमरे से बाहर निकल गया। अविजित को लगा वह कुछ ग़लती कर गया। एक मुसलमान लड़के की इतने हिन्दू लड़को के सामने बेइज्ज़ती नही करनी चाहिए थी। पर कुछ करना भी जरूरी था वरना शक़ का वह बीज···अब हंसी के दौर में बहुत-सी कड़ुवाहट छंट गई है। बस चड्ढा···

"ख़ामख़्वाह नाराज़ होने का कोई फ़ायदा नही है," उसने कहा, "बाजुओ के ज़ोर से तू समझौता नही बदल सकता।"

"समझौता जब हो ही चुका है तब हम क्या, कांग्रेस भी उसे नही बदल सकती, अविजित ने कहा, "गांधीजी को नेता चुना है तो उनकी बात रखनी ही पड़ेगी।"

"नेता बदले भी जा सकते है," हरीश ने उग्र स्वर में कहा।

"तो बदल लो," सरण ने चुनौती दी," हिम्मत हो तो मुख़ालफ़त करो। तलाश कर लो नया नेता।"

"हो सकता है, जवाहरलाल इसकी मुख़ालफ़त करें," निखिल ने कहा।

"कभी नही," चटर्जी बोला, "जवाहरलाल गांधीजी के ख़िलाफ़ कभी नहीं जाएंगे।

"फिर उपाय क्या है ?" निखिल ने स्वर बदल कर कहा, "और नेता है कौन गांधीजी की टक्कर का हिन्दुस्तान में ?"

"गान्धीजी के बिना कुछ नही हो सकेगा," अविजित ने समझदारी से कहा,

"दो-चार वारदातें कर देने से आज़ादी नहीं मिलेगी। क्रान्ति चाहे सशस्त्र हो चाहे अहिंसात्मक, सफल तभी हो सकती है जब पूरे हिन्दुस्तान में फैल सके। उसके लिए ऐसे नेता की ज़रूरत है जिसकी एक बात पर लोग मर मिटने को तैयार हों।"

"तेरा मतलब, हमें नेता नही, भगवान चाहिए," हरीश ने कहा।

"यही समझो। चूंकि गान्धीजी में वह शक्ति है जो लाखों-करोड़ों इन्सानों को अपने साथ बहा कर ले जा सकती है, इसलिए हमारे पास इसके सिवा कोई चारा नही है कि हम वही करें जो वे कहते हैं।"

सब लोग चुप हो रहे। सहमत हो कर नही, जवाबों की खोज में।

कुछ देर ठहर कर चड्ढा ने कहा, "अच्छा, अविजित, सच-सच बतला, तू क्या वाकई यह मानता है कि अहिसा का रास्ता अपनाने से ब्रिटिश सरकार का दिल बदल जाएगा और वे लोग हिन्दुस्तान को आज़ाद कर देंगे?"

हां—ना, अविजित के मुंह से कुछ नही निकला। 'हा' कहना अपने प्रति झूठ होता और 'ना' कहना गान्धीजी के प्रति।

"अगर गान्धीजी ऐसा सोचते है तो हो भी सकता है," कुछ देर चुप रहकर उसने कहा।

"यानी तूने अपने लिए सोचना बन्द कर दिया है।"

"लड़ाई में आदेश-पालन खुद सोचने से ज़्यादा महत्व रखता है। एक बार नेता चुन लेने पर उसके क़दम से क़दम मिलाकर चलने पर ही कुछ हासिल हो सकता है," अविजित ने कहा।

कुछ देर चुप रहकर क़रीब-क़रीब सभी लड़कों ने अविजित की बात का समर्थन किया। पर चड्ढा बोल उठा, "ऐसे नेता का क्या करो जो चार क़दम पूरब की तरफ़ बढ़ाये और जब तक आप उसके पीछे चलें-चले, वह कलाबाजी खाकर अगला क़दम पश्चिम की तरफ बढ़ा दे?"

"बाजीगरी करो उसके साथ, और क्या", हरीश ने कहा और सब लड़के हंस दिये।

सरण चिढकर बोला, "हंसना आसान है। गांधीजी में कोई तो बात होगी जो नेहरू और पटेल जैसे लोग उनके पीछे चलते हैं।"

"जादू जानते हैं, जादू," हरीश ने कहा।

"जादू कहो या आन्तरिक शक्ति। अविजित ठीक कहता है, नेता वही हो सकता है जो लाखों-करोड़ों को अपने साथ बहाकर ले जा सके।"

सरण का समर्थन अविजित को रास नहीं आया। सरण उन खुशकिस्मत लोगों में से है जो सोचने की ज़हमत ही नही उठाते, इसलिए किसी को अपने सोच पर अंकुश लगाने में क्या तक़लीफ़ होती है, इसका अन्दाज़ा उन्हें नहीं हो सकता।

सब कह रहे थे कि अविजित की बात ठीक है और अविजित को ही अपनी बात सबसे ज्यादा ग़लत लग रही थी।

आज चड्ढा को याद करके जो बात उसे तंग कर रही है, वही उस दिन भी परेशान कर रही थी पर···

गांधीजी का अनुयायी होने से ही क्या अविजित में अहिंसा के प्रति सच्चा विश्वास पैदा हो गया था? क्या गाधीजी की इस बात में जरा भी दम था कि भारत की जनता में हिसा की भावना नही है। खुद कांग्रेस के सदस्य क्या सचमुच अहिंसा के हिमायती थे?

उस दिन भी अविजित सोच रहा था—पिछले दस वर्षों से कांग्रेस अहिंसा के सिद्धान्त का प्रचार कर रही है पर जब स्वयं गांधीजी ने कांग्रेस अधिवेशन में वाइसराय की स्पेशल पर बम फेंकने की निन्दा का प्रस्ताव रखा तो उनके तमाम आतंक के बावजूद वह केवल इकतीस अधिक मतों से पारित हो सका।

आतंक! बिल्कुल ठीक शब्द था। यह गाधीजी का आतंक ही था कि हमारे नेता चुपचाप उनकी बात मानते चले जाते थे।

हमारे यहां व्यक्ति पहले आता है, फिर सगठन, और सबसे बाद में सिद्धान्त। बुद्ध के जमाने से यही पद्धति चली आ रही है। बुद्ध शरणं गच्छामि, संघं शरण गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि का मन्त्र यही सिखलाता है; पहले व्यक्ति, फिर सगठन और सबसे बाद में सिद्धांत।

बहुत ही खतरनाक पद्धति है। व्यक्ति-पूजा का ज़हर आम आदमी को नपुसक बना डालता है।

दूसरों के इशारों पर चलने के लिए आदमी पहले अपने से समझौता करता है, फिर औरों से और धीरे-धीरे···

समझौता उसका स्वभाव बन जाता है।

गांधीजी कहते है—समझौता मेरे स्वभाव का अंश है।

भगतसिंह कहते हैं—समझौता अपने में बुरा नही है बशर्ते कि समझौता हमारा ध्येय न हो, सिर्फ़ खुद को अगली लड़ाई के लिए मज़बूत बनाने के लिए लिया गया अवकाश हो···

कांग्रेस का ध्येय क्या है, समझौता, शासन-सुधार या स्वाधीनता? हमारे लिए हमारा लक्ष्य अधिक महत्वपूर्ण है या उस तक पहुंचने का तरीका?

आन्तरिक विश्वास के बिना आदमी अगर किसी मार्ग को अपनाये···

फिर वही प्रश्न—अहिंसा में अविजित का विश्वास था कभी···उन दिनों भी जब वह गांधीजी के नाम की माला जपता था?

वह पुलिसमैन, जिसके हाथ की लाठी उसके कन्धे और पीठ पर बरसी थी! नफ़रत

और हिक़ारत से सना उसका चेहरा! आज भी याद आ जाता है तो मन एक गहरी प्रतिहिंसा की भावना से भर जाता है।

विदेशी कपड़े की दूकानों की पिकेटिंग करने उनका जुलूस शान्ति के साथ आगे बढ़ रहा था जब पुलिस के एक दस्ते ने उन्हे तितर-बितर करने को ललकारा। चड्ढा और अविजित सबसे आगे थे। खूब उत्तेजित होकर चड्ढा 'महात्मा गांधी की जय' चिल्लाने लगा था। चड्ढा जो काम करता था, दीवानगी की हद पर। चाहे जय बोलनी हो चाहे मुर्दाबाद का नारा लगाना हो।

और तब···घुड़सवार अंग्रेज़ सार्जेण्ट घोड़ा दौड़ाता हुआ आगे बढ़ आया था। एक क्षण को अविजित ने महसूस किया था कि वह उन्हे रौंदता हुआ आगे बढ़ गया। पर ठीक उनके सिर पर आकर घोड़ा रुक गया था। खूब तौलकर उस अंग्रेज़ ने हाथ की लाठी ठीक चड्ढा के सिर पर चलाई थी। अनायास, उसे बचाने के ख़याल से या बस यूं ही अकारण, अविजित ने हाथ से उसे पीछे धकेल दिया था और खुद एक क़दम आगे बढ़ आया था। लाठी चड्ढा पर पड़ने के बजाय अविजित के कन्धे पर बरसी थी और फिर पूरे ज़ोर से पीठ पर।

उसका दिमाग़ एकदम खाली हो गया था। बदन सिर से पैर तक इस तरह थरथराया था कि वह गिरने-गिरने को हो गया था। पर वह खड़ा रहा था, एक तीखी नफ़रत का अहसास उसे सहारा दिये रहा था।

साफ़ उसने देखा था···लाठी समेत खींचकर उसने उस गोरे अफ़सर को ज़मीन पर पटक दिया है और खुद घोड़े पर सवार हो गया है। चाबुक मारकर घोड़े को आगे दौड़ाया है और उस सख्त लाल चेहरे को रौंदता हुआ आगे बढ़ गया है। मुड़कर देखा है और जुगुप्सा के साथ एक वहशी संतोष का अनुभव किया है—हां, कभी वह खून से सना मांस का लोथड़ दम्भ से गढ़ा गोरा लाल चेहरा था, उसके प्रतिद्वन्द्वी का!

···नही, वह अपनी जगह अड़ा खड़ा रहा था। हाथ उठाकर वार नही किया था, आवाज़ बुलन्द करके प्रतिवाद नही किया था·· वह इम्तिहान मे पास हो गया था। लाठियां बरसती रही थी, बदन थरथराता रहा था, सिर मे भट्टी धधकती रही थी पर अंग्रेज़ सार्जेंट घोड़े पर सवार रहा था और अविजित नीचे ज़मीन पर खड़ा मार खाता रहा था।

पर यह जीत अहिंसा की नहीं, अनुशासन की थी। दो साल से वे अपने को ऐसी वारदात के लिए तैयार कर रहे थे। दो बार पहले भी लाठी-चार्ज के शिकार हो चुके थे पर यह पहली मर्तबा था कि अविजित ने मारने वाले को इतने क़रीब से देखा था। वरना एक हुजूम लड़को का होता था, एक टुकड़ी पुलिसवालो की। वे सिर्फ़ लाठियों का बरसना महसूस करते थे, मारनेवालो को देख नही पाते थे।

पर उस दिन···उस अंग्रेज़ सार्जेंट का चेहरा उसके ज़ेहन पर ऐसे खुद गया है

जैसे वह उसका अज़ीज़म नातेदार हो। अगर अविजित भी लौटाकर दो-चार लाठियां उस पर बरसा सकता तो शायद उसे माफ करके दोस्त बना लेने में उसे दिक्क़त न होती। और शायद उस सार्जेण्ट की आंखों में नफ़रत और हिक़ारत भी कम हो जाती। जो क्रान्तिकारी ईंट का जवाब पत्थर से देते थे, उनके लिए अंग्रेजों के मन में भय और आक्रोश चाहे जितना रहता था, हिक़ारत नहीं होती थी। शायद मन-ही-मन वे उनकी इज्ज़त करते थे। अहिंसा नफ़रत को कम नही करती, बढावा देती है, निकास न पाने पर दिल के कोने में जमती चली जाती है और फिर एक दिन जब विस्फोट होता है तो बहुत कुछ और, चाहत के क़ाबिल, जल कर राख हो जाता है।

तभी न ठीक उन्ही दिनों जब गांधीजी अहिसा के प्रयोग सिखला रहे थे, देश में जहां-तहां हिन्दू-मुस्लिम दंगे होते रहते थे, जिनमें हिन्दुस्तानियों के दिलो में छिपी हिंसा अपने जघन्य से जघन्य रूप में प्रकट होती थी। एक तरफ़ करांची मे कांग्रेस अधिवेशन में गान्धी-इर्विन समझौते को पास किया जा रहा था, दूसरी तरफ़ कानपुर में भयानक हिन्दू-मुस्लिम दंगा हो रहा था, जिसमे गणेशशकर विद्यार्थी जैसे नेता को क़त्ल किया गया था।

और आख़ीर मे उन्नीस सौ सैंतालीस की वह नाक़ाबिले बयान मारकाट··· दिलों मे जमी हिंसा का नंगा नाच·· किन्ही अग्रेज़ सार्जेण्टों की ठोकरो से शुरू हुआ सिलसिला···

आज भी अगर कही वह अंग्रेज़ सार्जेंट अविजित को मिल जाए···!

"पिताजी !" कमरे में आतंक से सना एक शब्द गूँजा।

चौककर अविजित ने सिर ऊपर उठाया।

कौन ? कौन है यह ?

शुभा ? हां, शुभा। उसकी बेटी।

पर···वह अग्रेज सार्जेंट ? चड्ढा ? लड़कों का हुजूम ! नफ़रत से सनी लाठियां ! बीते हुए वक़्त की कचोटती अकर्मण्यता !

"पिताजी !" शुभा कह रही है, "क्या हो गया आपको ?"

बीता हुआ वक़्त ! बीत जाने दो। नहीं क्यों बीत रहा ··

वह अपने घर पर है। लड़ाइया ख़त्म हो चुकीं। हासिल कुछ नही हुआ, काजल कहती है। कुछ तो हुआ है हासिल···हां कुछ···मानना पड़ेगा···नही क्यों मान पा रहा···

"आपका चेहरा···क्या हुआ पिताजी ?"

"क्या···कुछ तो नहीं···" अविजित सम्भल रहा है।

"आपका चेहरा ऐसे लग रहा था जैसे आप किसी को जान से मार रहे है," शुभा ने कहा।

उसकी आंखों में भय लहरा रहा है, अविजित ने और सम्भल आने पर देखा।

उसने कोशिश की और हंस दिया।

"तू नाटक बहुत देखती है," आवाज में सहज परिहास पैदा करके उसने कहा। वैसे अदाकार मैं भी बुरा नहीं···

शुभा भी हंसी।

"मेरा मतलब," उसने कहा, "लगा जैसे कोई बहुत बुरा आदमी आपके सामने हो।"

बेटी बात बना गई। अविजित हंस ही पड़ा।

"पिताजी," शुभा ने सहसा कहा, "स्वर्णा जो बतलाती है, १९४३ में ऐसे ही हुआ था?"

अविजित समझ गया कि भय से पीड़ित शुभा यही पूछने कमरे में घुसी होगी, उसे देखकर कुछ देर के लिए और ही किसी भय में···

"हां," अपने को सम्भालकर उसने कहा।

शुभा कुछ देर चुप रही, फिर बोली, "१९४३ में आप कलकत्ते में ही थे?"

"नही। मैं जेल में था।"

शुभा के चेहरे पर रिलीफ़ उभर आया, फिर हल्का-सा गर्व का भाव।

क्या हुआ कि अविजित कड़ुवे स्वर में कह उठा, "मैं सिर्फ एक साल के लिए जेल में था। उसका कोई महत्व नहीं है।"

"मम्मी कह रही थी, १९३२ में भी आप जेल गए थे, इसीलिए आई. सी. एस. नही बन पाए," शुभा ने जैसे अपने से कहा।

"मामूली बात है," अविजित ने टोका।

"मेरी सहेलियां कहती है, तेरे पिताजी जेल गए थे तो उन्हें आज मिनिस्टर वगैरह कुछ होना चाहिए," शुभा ने कहा तो अविजित एकदम फट पड़ा।

"नही, शुभा, नही! ऐसा मत सोचो तुम लोग। कभी मत सोचो! आज़ादी के लिए हम सब अपने-अपने तरीके से लड़े थे; कुछ को मुआवज़ा मिल गया, कुछ को नही पर मुआवज़े के लिए हम नही लड़े। एक ग़लती कभी मत करना। उन बातों का विश्वास मत कर लेना जिनका सबसे अधिक प्रचार हो रहा हो। देश को आज़ादी दिलवाने में सिर्फ़ उन लोगों का हाथ नही है जो आज सरकार चला रहे है। सैंकड़ों क्रान्तिकारी ऐसे है जो हम लोगो की दो-दो साल की सज़ा के मुक़ाबले फांसी के तख्तों पर झूल गए थे, अण्डमान के नरक मे ता-उम्र सड़ते रहे थे। उनमें से न जाने कितने अभी भी ज़िन्दा है और किसी पद की माग नही कर रहे। फिर मुझे क्या अधिकार है··"

कोई अधिकार नही है! इस तरह भाषण देने का भी अधिकार नहीं है, उसने साफ़ सुना, काजल कह रही है।

"अपनी हिस्ट्री की लैक्चरार से पूछना," क्षण-भर रुककर उसने थके स्वर में

जोड़ा, "वह ठीक से बतला सकेंगी।"

"कौन ? मिस बनर्जी, प्रभा की टीचर? वह तो हमें अगले साल पढ़ाएंगी…"

अविजित ने और सुना नही। उठ कर खडा हो गया।

आज इतवार है। काजल से मिला जा सकता है। इतना गुबार मन मे रखकर सिर्फ़ काजल से मिला जा सकता है।

७

"आओ अविजित," काजल ने कहा, "अच्छे वक़्त आए। बतलाओ मै रहूं या जाऊं ?"

"कहा ?" अविजित ने अचरज से दरवाजे के पास ठिठककर कहा।

"कॉलेज में ? इस्तीफ़ा दू या नही ?"

"हुआ क्या ?"

"झगड़ा! खूब ज़ोरदार! प्रिंसिपल का कहना है कि मै कोर्स के बाहर की चीजें पढाकर समय बरबाद करती हूं।"

"उसे कैसे मालूम ? वह तुम्हारी क्लास में बैठती है क्या ?"

"नही। पर इन्फॉरमर्स सिर्फ़ राजनैतिक दलों में ही नही और जगह भी पाए जाते है। राष्ट्रीय चरित्र है यह तो हमारा !"

इस क़दर उत्तेजित काजल के लिए अविजित तैयार नही था। अपने मन के गुबार को निकालने आया पर यहां तो…

"बैठ जाऊं ?" उसने कहा।

"क्या ?" काजल ने चौककर कहा।

"तुमने बैठने को नही कहा। पूछ रहा हूं, बैठ जाऊं ?"

"हां-हा," काजल फिर भी सभ्य औपचारिकताओ मे नही लौटी।

अविजित बैठ गया और माहौल को हल्का करने की कोशिश में हंसकर बोला, "तो कोर्स के मतलब की चीज़े पढ़ाया करो न।"

काजल नही हंसी।

उग्र स्वर में बोली, "कोर्स में लिखा है, पढ़ाना है—भारत में राष्ट्रीयता का उदय और विस्तार। तुम्हारा क्या खयाल है मुझे सिर्फ़ कांग्रेस का इतिहास पढ़ाना

चाहिए, वह भी ब्रिटिश नज़रिये से ?"

"मैने तो यह नही कहा···" अब अविजित अचकचा गया।

"प्रिंसिपल साहिबा तो कहती हैं।"

"तुमने पढ़ाया क्या था ?" स्वर को मधुर बनाकर अविजित ने पूछा।

"भगतसिंह का प्रगतिवादी दृष्टिकोण।"

"ओह।"

"क्या हुआ ? जंचा नही ?" काजल ने तल्खी से पूछा।

अविजित क्षण-भर चुप रहा, फिर बोला, "नही, वह बात नही है। मैं तो सोच रहा था सामग्री कहां से जुटाई तुमने।"

काजल ने उठ कर सामने की अलमारी खोलकर एक मोटी-सी फ़ाइल निकाली और बोली, "यह देखो। उनके जो भी लेख वगैरह उन दिनों छपे थे, इसमें जमा कर रखे है। पत्रों की खोज कर रही हूं। एक दिन···ज़रूर···किताब लिखूगी उन पर।"

अविजित ने देखा, काजल का मुह उत्साह से दमक रहा है। उसे वह बहुत अच्छी लगी।

हाथ बढाकर उसने फ़ाइल उससे ले ली और पन्ने पलटने लगा।

"प्रिंसिपल का कहना है, भगतसिंह आतंकवादी थे, उन्होंने असेंबली में बम फेंका जिसके लिए उन्हें फांसी हो गई; इतना बतला देना काफ़ी है। तीन-तीन लैक्चरार क्लास इस टॉपिक पर बरबाद करने का प्रयोजन ? क्या प्रयोजन बतलाऊं उन्हें···"

"लड़कियां तो दिलचस्पी लेती होंगी···" अविजित ने कहना शुरू किया तो काजल और उत्तेजित हो गई।

"कोई नहीं जानना चाहता। इतिहास पढते है पर स्वतन्त्रता आन्दोलन के बारे में जानने में बिल्कुल रुचि नहीं है। आज़ादी मिली, मिल गई। जो आज़ादी के लिए लड़े, राज कर रहे है। हिसाब बराबर। किस्सा खत्म ! जानते हो लड़कियां क्या कहती हैं ? कहती हैं, इस टॉपिक पर इम्तिहान में सवाल आने से रहा, बेकार माथापच्ची क्यों करें ?"

"प्रभा भी तो तुम्हारी क्लास में है," अविजित ने बुदबुदा कर कहा।

"हां," सहसा काजल हंस दी।

"ओ अविजित !" उसने कहा, "तुम्हारी लड़की तो बिल्कुल मुझ पर गई है। जो मैंने बोला, इतना तीता बनाकर लिख डाला कि पढ़कर मै ही तिलमिला गई।"

"अच्छा," खुश होकर अविजित ने कहा, "तब तो प्रभा जैसी कुछ और लड़कियां···"

"हां-हां, अविजित," काजल उत्साहित होकर बोली, "इसीलिए तो पढ़ाती हूं। कभी-न-कभी तो युवा पीढ़ी में जिज्ञासा पैदा होगी···होगी न···"

अविजित फ़ाइल के पन्ने पलट रहा था कि एक जगह नजर अटक गई। लगा ये शब्द पहले भी कहीं सुने थे या शायद पढ़े हों···

"···क्रान्ति से हमारा अभिप्राय समाज की वर्तमान प्रणाली और वर्तमान संगठन को पूरी तरह उखाड़ फेंकना है। इस उद्देश्य के लिए हम पहले सरकार की ताक़त को अपने हाथ में लेना चाहते हैं···

"जिन लोगों के सामने इस महान क्रान्ति का लक्ष्य है उनके लिए नये शासन-सुधारों की कसौटी क्या होनी चाहिए ? हमारे लिए निम्नलिखित तीन बातों पर ध्यान रखना किसी भी शासन-विधान की परख के लिए जरूरी है—(१) शासन की जिम्मेवारी कहां तक भारतवासियों को सौंपी जाती है।

(२) शासन-विधान को चलाने के लिए किस प्रकार की सरकार बनाई जाती है और उसमें हिस्सा लेने का आम जनता को कहां तक मौक़ा मिलता है।

(३) भविष्य में उससे क्या आशाएं की जा सकती हैं ? उस पर कहा तक प्रतिबन्ध लगाए जाते है ? सर्वसाधारण को वोट देने का हक दिया जाता है या नहीं ?

"हमारे दल का लक्ष्य एक सोशलिस्ट सामाजिक संगठन की स्थापना है। कांग्रेस और इस दल के लक्ष्य में यही भेद है कि जब राजनैनिक क्रांति से शासन-शक्ति अंग्रेज़ो के हाथ से निकलकर हिंदुस्तानियो के हाथों में आ जाएगी ··तब हमारा लक्ष्य शासन-शक्ति को उन हाथों में सुपुर्द करना है जिनका लक्ष्य समाजवाद हो। इसके लिए मज़दूरों और किसानों को संगठित करना आवश्यक होगा क्योंकि उन लोगों के लिए लार्ड रीडिंग या इर्विन की जगह तेजबहादुर या पुरुषोत्तम दास, ठाकुरदास के आ जाने से कोई भारी फ़र्क़ न पड सकेगा।

"पूर्ण स्वाधीनता से भी इस दल का यही अभिप्राय है। जब लाहौर काग्रेस ने पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पास किया तो हम लोग पूरे दिल से इसे चाहते थे परन्तु कांग्रेस के उसी अधिवेशन में महात्मा जी ने कहा कि 'समझौते का दरवाज़ा अभी भी खुला है।' इसका अर्थ यह था कि वह पहले से जानते थे कि उनकी लड़ाई का अन्त इसी प्रकार के किसी समझौते में होगा और वे पूरे दिल से स्वाधीनता की घोषणा न कर रहे थे। हम लोग इसी बेदिली से घृणा करते हैं···"

"तुम्हें याद है···" काजल ने कहा।

अविजित ने सिर उठा कर नहीं देखा। वह पूरी तकह़ फ़ाइल के पन्नों में खोया हुआ था। दो फरवरी १९३१ को कालकोठरी से दिया गया क़ौम के नाम वह संदेश ! कितना कुछ···

काजल चुप हो गई। टक लगा कर उसे अपनी आत्मा को पढ़ते देखती रही।

अविजित ने पढ़ा···

"···इस उद्देश्य के लिए नौजवानों को कार्यकर्त्ता बन कर मैदान में निकलना चाहिए, नेता बनने वाले तो पहले ही बहुत हैं···

"हमारे इस दल का एक सैनिक विभाग भी संगठित होना चाहिए। इस सम्बन्ध

में मैं अपनी स्थिति बिल्कुल साफ़ कर देना चाहता हूं। मैं जो कुछ कहना चाहता हूं उसमें ग़लतफ़हमी की सम्भावना है। परन्तु आप लोग मेरे शब्दों और वाक्यों का कोई गूढ अभिप्राय न गढ़ें।

"यह बात प्रसिद्ध है कि मैं आतंकवादी रहा हूं परन्तु मैं आतंकवादी नही हूं। मैं एक क्रान्तिकारी हूं जिसके कुछ निश्चित विचार और निश्चित आदर्श हैं और जिसके सामने एक लम्बा प्रोग्राम है···मेरा यह दृढ विश्वास है कि हम बम से कोई लाभ प्राप्त नही कर सकते। केवल बम फेकना न केवल व्यर्थ है परन्तु बहुत बार हानिकारक भी है। उसकी आवश्यकता किन्ही खास अवस्थाओं में ही पड़ा करती है। हमारा मुख्य लक्ष्य मज़दूरों और किसानो का संगठन होना चाहिए। सैनिक विभाग युद्ध सामग्री को खास मौक़े के लिए केवल संग्रह करता रहे···"

आज बाईस-तेईस साल बाद, आज़ादी मिलने पर भी ये शब्द उतने ही प्रासंगिक है, अविजित सोच रहा है···अगर भगतसिह कुछ दिन और ज़िन्दा रहे होते और युवा वर्ग का नेतृत्व कर पाते तो शायद १९३२ से १९४२ तक के वे दस साल समझौतों की नज़र न होते और देश के युवक अपने को बुरी तरह दुविधाग्रस्त न पाते। तब शायद आज़ादी कुछ ठोस अर्थ लिये आती···

कितने छोटे-से एक सांकेतिक कारनामे के लिए किस आला हस्ती का बलिदान हो गया। न हुआ होता तो···

"तुम्हें याद है···" अविजित ने कहा।

"हां," बीच ही में काजल ने कहा।

उसकी आंखे गीली हो गईं।

वह दिन···चौबीस मार्च उन्नीस सौ इकतीस!

काजल की आंखों से टप-टप गिरते आंसू अविजित साफ़ अपनी आंखो के सामने देख रहा है···

सुबह-सुबह विषण्ण मुख लिए काजल उसके कमरे में घुस आई थी।

"कल शाम सरदार भगतसिह, राजगुरु और सुखदेव को फांसी हो गई," रुंधे कण्ठ से उसने कहा।

फांसी होगी, वे जानते थे पर फांसी हो गई, सुन कर···

शायद कहीं मन में आशा थी कि सरकार जनमत के आगे झुक जाएगी। कितनी बेवक़ूफ़ी की बात थी। महीना-भर पहले ही तो अपार भीड़ के देखते-देखते आज़ाद को गोलियों से भून डाला गया था और शव तक उनके हाथ नही आया था। क्या कर लिया था जनमत ने? बस, पेड़ पर फूल मालाएं चढ़ा कर रो लिये थे।

बहुत देर तक काजल और अविजित चुपचाप बैठे रहे थे, कुछ कहने-सुनने को मन नही हुआ था। पता नही क्यों, काजल के सामने अविजित छोटा महसूस कर उठा

था, शायद इसलिए कि इतने दिन उसके मन में आशा रही थी कि गान्धी-इर्विन समझौते में चाहे उनके बारे में कुछ नही कहा गया था फिर भी गान्धीजी कोई-न-कोई ऐसा चमत्कार ज़रूर कर दिखाएंगे जिससे आखिरकार फांसी रद्द हो जाएगी···पर कुछ नही हुआ था, क्योंकि कुछ होना नही था।

एक-एक कर के हरीश, निखिल, चड्ढा और चटर्जी उसके कमरे में आ पहुंचे थे। सबके मुँह उतरे हुए थे। कहने को कुछ नहीं था। सारा जोश जैसे एक झटके में निचुड़ गया था।

"सुना है," आखिर चड्ढा ने कहा, 'उनके शव रिश्तेदारों को नहीं दिए गए। मिट्टी का तेल डाल कर जला दिए गए।"

उसके स्वर में कोई उत्तेजना नही थी। चड्ढा के लिए यह अनहोनी बात थी। अविजित समझ रहा था, वह सत्य कितना भयानक है जिससे साक्षात्कार कर के चड्ढा जैसा आदमी भी स्तब्ध हो गया है।

"शाम को फाँसी देने का नियम नहीं है," हरीश ने कहा, "उन्हे वक़्त से पहले फाँसी दी गई जिससे रिश्तेदारों और जनता को खबर न हो।"

"खबर होने से ही क्या हो जाता ?" निखिल ने कहा।

"सब कुछ खत्म हो गया," चड्ढा बुदबुदा कर कहता गया, "पहले रामप्रसाद बिस्मिल···अशफ़ाकउल्ला खां, फिर आज़ाद···अब भगतसिंह···सुखदेव···सब खत्म··· अब बस कांग्रेस बची है।"

"और समझौते, "हरीश ने कहा, "ताक़तवर और कमज़ोर के बीच समझौते। अपनी कमजोरी की इन्तिहा तो देखो कि सारा देश जिनकी जयनाद बोल रहा था, उन्हीं का अंतिम संस्कार तक करने की इजाज़त न मिली। याद है यतीन्द्रनाथ का दाह संस्कार किस शान से हुआ था ··क्योंकि तब भगतसिंह और उनके साथी ज़िन्दा थे। उन्होंने जेल के भीतर अनशन करके वह कर दिखलाया जो हम जेल के बाहर रह कर न कर सके।"

"सब कुछ खत्म हो गया," चड्ढा के मुंह से फिर निकला।

"नहीं,' सहसा काजल ने कहा, "सब खत्म नही हुआ।"

साड़ी की पटलियों के बीच खोंसा एक परचा उसने निकाला और पढना शुरू कर दिया :

"···इस समय हमारा आन्दोलन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थितियों में से गुज़र रहा है। एक साल के कठोर संग्राम के बाद गोलमेज कांफ्रेन्स ने हमारे सामने शासन विधान में परिवर्तन के सम्बन्ध में कुछ निश्चित बातें पेश की है और कांग्रेस के नेताओं को निमन्त्रण दिया है कि वे आकर शासन-विधान तैयार करने के काम में मदद दें···यह बात निश्चित है कि वर्तमान आन्दोलन का अन्त किसी-न-किसी प्रकार के समझौते के रूप में होना लाज़मी है।

"वस्तुतः समझौता कोई हेय और निन्दा योग्य वस्तु नहीं है जैसा कि साधारणतः हम लोग समझते हैं। बल्कि समझौता राजनैतिक संग्रामों का एक आवश्यक अंग है। यह ज़रूरी है कि कोई भी क़ौम जो किसी अत्याचारी शासन के विरुद्ध खडी होती है आरम्भ में असफल हो और अपनी लम्बी जद्दोजेहद के मध्यकाल में इस प्रकार के समझौतों के ज़रीये कुछ राजनैतिक सुधार हासिल करती जाए, परन्तु वह अपनी लड़ाई की आखिरी मंजिल तक पहुँचते-पहुँचते अपनी ताकतों को इतना संगठित और दृढ कर लेती है कि उसका दुश्मन पर आखिरी हमला ऐसा ज़ोरदार होता है कि शासक लोगों की ताक़तें उनके उस वार के सामने चकनाचूर हो कर गिर पड़ती हैं। ऐसा भी हो सकता है कि उसकी चाल थोडे समय के लिए धीमी हो जाए तथा उनके नेता पीछे पड जाएं किन्तु जनता की बढ़ती हुइ ताकत समझौतों को ठुकरा कर उस आन्दोलन को जय-युक्त करा ही देती है, नेता पीछे रह जाते हैं, आन्दोलन आगे बढ जाता है। यही विश्व-इतिहास का सबक़ है।

"···जिस बात को मैं बताना चाहता हूं वह यह है कि समझौता भी एक ऐसा हथियार है जिसे राजनैतिक जद्दोजेहद के बीच में पद-पद पर इस्तेमाल करना आवश्यक हो जाता है, जिससे एक कठिन लड़ाई से थकी हुई कौम को थोडी देर के लिए आराम मिल सके और वह आगे के युद्ध के लिए अधिक ताक़त के साथ तैयार हो सके परन्तु इन सारे समझौतों के बावजूद जिस चीज़ को हमें भूलना न चाहिए वह हमारा आदर्श है, जो हमेशा हमारे सामने रहना चाहिए। जिस लक्ष्य के लिए हम लड़ रहे है उसके सम्बन्ध में हमारे विचार बिलकुल स्पष्ट और दृढ होने चाहिए। यदि आप सोलह आने के लिए लड रहे हैं और एक आना मिल जाता है तो वह एक आना जेब में डाल कर बाकी पन्द्रह आने के लिए फिर जंग छेड़ दीजिए। हिन्दुस्तान के माडरेटों की जिस बात से हमें नफरत है वह यही है कि उनका आदर्श कुछ नही है। वे एक आने के लिए ही लड़ते है और उन्हे मिलता कुछ भी नही।

"भारत की वर्तमान लड़ाई ज्यादातर मध्य श्रेणी के लोगों के बलबूते पर लड़ी जा रही है, जिनका लक्ष्य बहुत सीमित है। यदि देश की लड़ाई लड़नी हो तो मज़दूर, किसानों और सामान्य जनता को आगे लाना होगा, उन्हें लड़ाई के लिए संगठित करना होगा।

"···अगर आप दुनियादार हैं, बाल-बच्चों और गृहस्थी में फंसे हैं तो हमारे मार्ग पर मत आइए। आप हमारे उद्देश्य से सहानुभूति रखते हैं तो और तरीक़ो से हमें सहायता दीजिए। सख्त नियंत्रण में रह सकने वाले कार्यकर्त्ता ही इस आन्दोलन को आगे ले जा सकते हैं। ज़रूरी नहीं कि दल इस उद्देश्य के लिए छिप कर ही काम करे। हमें युवकों के लिए स्वाध्याय-मंडल खोलने चाहिए। पेम्फ़लेटों और लीफ़लेटों, छोटी पुस्तकों, छोटे-छोटे पुस्तकालयों और लेक्चरों, बातचीत से हमें अपने विचारों का सर्वत्र प्रचार करना चाहिए···

[illegible] एक सैनिक विभाग भी संगठित होना चाहिए। कभी-कभी

उसकी भी ज़रूरत पड़ जाती है।

"···यदि हमारे नौजवान इसी प्रकार प्रयत्न करते जाएंगे तब जाकर एक साल में स्वराज्य तो नही किंतु भारी कुर्बानी और त्याग की कठिन परीक्षा में से गुजरने के बाद वे अवश्य विजयी होंगे। क्रान्ति चिरजीवी हो!"

अविजित की आंखें एक साथ उस दिन का दृश्य भी देख रही थीं और फाइल के पन्नों पर लिखे भगतसिंह के शब्द भी पढ़ रही थीं। याद आ गया था, पहले कब ये शब्द सुने थे···काजल के मुंह से, और फिर पढ़े थे, कई बार।

काजल के हाथ से परचा लेकर उसने दो फरवरी १६३१ को फांसी की कोठरी से लिखा गया भगतसिंह का वह संदेश कई बार पढ़ डाला था। 'पंजाब केसरी' में छपे लेख की कटिंग एक हाथ से दूसरे हाथ में जाती रही थी और सब अपने-अपने भीतर झांक कर मौन बने रहे थे।

शायद हीन भावना की एक बहुत बड़ी खाई थी जो उन्हें भगतसिंह से अलग करती थी···शायद वे सब उसी मध्य वर्ग के बाशिंदे थे जो सख्त नियंत्रण और कुर्बानी का रास्ता छोड़ कर आसान-से-आसान तरीक़े ढूंढ़ते है···और सबसे आसान है समझौता। परचा चड्ढा के पास पहुंचा तो वह कएदम उठ कर खड़ा हो गया।फिर···धीरे-धीरे वापिस बैठ गया।

"क्या फ़ायदा," वह बुदबुदाया, "अब जाऊंगा भी कहां···सब खत्म होगया···"

हां सख्त नियंत्रण में रह कर काम करना मामूली आदमी के लिए तभी सम्भव होता है जब कोई नेता उसका पथ-प्रदर्शन करे। कोई लेनिन···गारिबाल्डी···मैज़िनी ···भगतसिंह·· नेतृत्व मिले तो मामूली से मामूली आदमी भी···दस साल बाद चड्ढा ने साबित कर तो दिया था, कोई आदमी इतना मामूली नही होता कि बलिदान कर ही न पाये···सचमुच करना चाहे तो···

चुपचाप बैठे-बैठे जब आखिर एक-दूसरे से आंख मिलाना मुश्किल होने लगा तो हरीश ने कहा, "हम भी एक युवक-मंडल बनाकर किसानों के बीच काम कर सकते हैं।"

"हां," फ़ौरन निखिल ने अनुमोदन किया, "गान्धी-इर्विन समझौते ने उन्हें मंझदार में छोड़ दिया है। कांग्रेस के कहने पर बीसियों हजार किसानो ने लगान देने से इन्कार कर दिया था पर समझौते में उनकी बाबत कोई क़दम नही उठाया गया है। पता नही अब कांग्रेस क्या करेगी?"

"करेगी क्या," चटर्जी ने कहा, "कह देगी हमारा तो समझौता हो गया; तुम लगान दे दो।"

"अगर हम उनसे कहें, लगान मत दो और किसानों का एक आन्दोलन चलाए,"

हरीश ने कहा।

"तो वह किसानों का आन्दोलन होगा। मारे वे जाएंगे, कुर्की उनकी होगी, ज़मीन से बेदखल वे होंगे, बेंतें उन पर बरसेंगी। हमें ले जाकर सरकार जेलों में सुरक्षित बन्द रखेगी और कोई उसकी परवाह नहीं करेगा। किसान बर्बाद ज़रूर हो जाएंगे पर फ़ायदा कुछ नही होगा।" अविजित ने कहा।

"तो ?"

"जेल जाने में तभी फ़ायदा है जब हमारे साथ कोई ऐसा नेता हो जिसकी बात का असर सरकार पर पड़ता हो वरना सीधे-सीधे सैनिक क्रान्ति होनी चाहिए।"

"तो ?" ललकार कर चड्ढा ने कहा।

"इस वक़्त गान्धीजी ही एकमात्र ऐसे नेता हैं। हम लोग युवक मंडल अवश्य बनाएं पर समझ-बूझकर कदम उठाएं। गान्धी-इर्विन समझौते के अन्तर्गत देखें क्या होता है।"

अविजित की बात पूरी भी नहीं हुई थी कि चड्ढा उछल कर उसके सामने आ खड़ा हुआ। उसका पूरा बदन थरथरा रहा था, चेहरा किसी गहरी मानसिक यंत्रणा से झिझुड़ कर विकृत हो उठा था। अविजित को अचानक उस अंग्रेज सार्जेंट का खयाल हो आया जिसने दो साल पहले उस पर लाठी बरसाई थी। लाठी की पहली चोट ने अविजित का यही हाल कर दिया था। पर चड्ढा···

"क्या हुआ ?" अविजित के मुह से निकला।

"दलीलें···दलीलें···" घुटी-घुटी आवाज़ में चड्ढा ने कहा

"अविजित की बात गलत नहीं है," हरीश ने कहा।

"नही," चड्ढा ने गहरी भर्त्सना के साथ कहा था, "अविजित से अच्छा वकील तुम्हें नही मिलेगा।" और कमरे से बाहर निकल गया था।

उसके पीछे-पीछे काजल भी बाहर चली गई थी···

क्या हुआ था समझौतों के अन्तर्गत ? बस यह कि अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन के बन्दी जेलो से छोड़ दिये गए थे। साथ ही क्रान्तिकारी बन्दियों पर सरकार का अत्याचार बढता ही गया था।

"इस अत्याचार और दमन के लिए जितना जिम्मेवार ब्रिटिश राज है उतने ही गान्धीजी।" काजल ने गहरे दुख के साथ कहा।

अविजित के पास प्रतिवाद में दलील नहीं थी उस बार।

"जेलों में हो रहे अत्याचार के खिलाफ़ न केवल उन्होंने खुद कोई आवाज नहीं उठाई है बल्कि हिंसा-अहिंसा का भूत खड़ा करके देश भर में ऐसा वातावरण पैदा कर दिया है कि भारतीय जनमत इस दमन के प्रति उदासीन हो गया है। जब-जब राजनैतिक क़ैदियों को छुड़ाने का प्रश्न आता है, वे हिंसात्मक और अहिंसात्मक क़ैदियों में

फ़र्ककरते हैं। इतिहास महात्मा गान्धी को इन दुहरे मूल्यों के लिए कभी माफ़ नहीं करेगा।" काजल ने कहा था।

पर "कौन लिखता है इतिहास ? वही जिसके पास सत्ता होती है और जिनके हाथो में सत्ता होती है, उनके मूल्य दुहरे हुआ ही करते है।

"ऐसा कैसा जादू होता है एक आदमी में कि बाकी के लोग सोचना ही बन्द कर दें ?" अनित्य ने कहा था।

समझौते के बाद लखनऊ की सड़क पर···फूल मालाओ से लदा अनित्य···!

अविजित अपने विद्यार्थी मंडल के सभापति की हैसियत से लखनऊ गया था। यह पता करने कि किसानो को लगान की छूट दिलवाने के लिए प्रान्तीय कांग्रेस आगे क्या करने वाली है। सोचा था अनित्य से भी मिलता आएगा।

मिलना हुआ भी था पर हॉस्टल के कमरे में नहीं, बीच सड़क पर।

गले में फूल मालाएं पहने, जुलूस में चलता अनित्य! अविजित भौचक खड़ा रह गया था।

उसे देख कर अनित्य ने बड़ी श्रद्धा के साथ हाथ जोड़े थे।

अविजित झपट कर उसके पास पहुंच गया था।

"कहां से आ रहे हो ?" उसने पूछा था।

"जेल से छूट कर। आपको पता नहीं, गान्धी-इर्विन समझौता हो गया है और सत्याग्रही रिहा किए जा रहे हैं। खुद जवाहरलाल नेहरू लखनऊ तशरीफ़ लाए हुए हैं। हमें फूल मालाएं ही नहीं मिलीं, उनका दीदार भी हासिल हुआ।"

"पर तुम किसलिए गए थे जेल।"

"गान्धीजी की जय बोलने और किस लिए ? गान्धीजी ने कहा, अंग्रेज़ों को यहां से भगाओ, जेल जाओ; हम चले गए। गान्धीजी ने कहा, अंग्रेज़ों को अभी टिके रहने दो, आन्दोलन बन्द कर दो; हम बाहर आ गए। लोग खुश हुए, जुलूस निकले, सभाएं हुईं, फूल मालाएं पहनाई गई···कांग्रेस अब अवैध नहीं रही···"

"चुप रहो," अविजित ने कहा, "हज़ारों लोग हैं जो अब भी जेलों में बन्द हैं।"

"जी हां," अनित्य गम्भीर हो गया। "वे लोग अपने ज़मीर के क़ैदी है, गान्धीजी के नहीं। मौत और काले पानी के सिवा उन्हें मिल भी क्या सकता है ? सरकार और उनमें बीच-बचाव करने वाला कौन है ?"

"और तुम्हारा ज़मीर ?"

"वह तो बचपन में ही मर गया था।"

"तो अब गान्धीवादी कैसे बन गए ?"

"मैं और गान्धीवादी ! तौबाह !"

"फिर जेल क्या करने गए थे ?"

"सज़ा से बचने," अनित्य ने धीमी आवाज़ में कहा।

"क्या मतलब ?"

"यहां नहीं। जरा इस सब से निबट लूं। कमरे पर पहुंचकर सब बतलाता हूं।"

अनित्य की कहानी बिल्कुल अनित्य की तरह थी—

"हुआ यह कि मै ऐसा काम कर बैठा जिसकी सजा भयानक होती। हज़रतगंज की एक संकरी गली से गुज़र रहा था। देखा, एक गोरा सिपाही एक औरत को तंग कर रहा है। गुस्सा आना नहीं चाहिए था पर आ गया। आदमी का ज़मीर भी क्या कमबख़्त चीज है। बरसों घोंटते रहो, मर कर नही देता। तो उस गोरे के ही हाथ से बेंत छीन कर मैंने उसकी अच्छी तरह ठुकाई कर डाली। था तो मुझसे कही तगड़ा पर पिये हुए था इसलिए मुकाबला न कर सका, पिट गया। कुछ ही देर में वहीं ज़मीन पर लुढका पड़ा था, मार की वजह से नहीं, शराब के असर से। मज़ाक़ देखिये, मैं न भी मारता तो भी थोड़ी देर बाद होश वह जरूर खो देता। पर मेरे माथे पर बहादुरी जो लिखी थी। ख़ैर···औरत तो भाग गई पर मै बुरी तरह डर गया। पकड़ा गया तो कौन जाने फांसी ही हो। तंग-सी गली थी इसलिए इक्का-दुक्का लोग ही वहां थे। और वे भी ऐसी अनहोनी घटना देख, ठगे-से रह गए थे। पर कितनी देर? वही बना रहा तो कोई-न-कोई होश में आएगा और मुझे पकड़ कर पुलिस के हवाले कर देगा, यह सोच कर मैं जिधर पांव उठा उधर ही दौड़ पड़ा।

"किस्मत बुलन्द थी। जिधर मैं दौड़ा, उधर सामने से नारे लगाता सत्याग्रहियों का जुलूस आ रहा था···चौक पर नमक बना कर आ रहे थे, खूब जोश में थे। बस मै उनमें जा मिला और जोर-ज़ोर से 'गान्धीजी की जय' चिल्लाने लगा। पुलिस का सामना तो देर-सबेर होना ही था, सो हुआ और सबके साथ मै भी लखनऊ ज़िला जेल क़ी बैरक नम्बर छह में बन्द कर दिया गया।"

"बहुत तकलीफ़ में रहे ?" कुछ देर चुप रह कर अविजित ने पूछा।

अनित्य हंस पड़ा।

"मुझे तकलीफ़ क्या होनी थी। मै तो कोयले की बोरी पर सोने और रूखी रोटी खाने का आदी हूं।"

"वह बचपन की बात है···" अविजित ने टोका।

"हां, हमारे पिताजी ने मां के मरने के तेरहवें दिन दूसरी शादी पक्की कर ली तो मुझे पालने आगरा धाय के पास भेजना ज़रूरी हो गया। आख़िर एक और छोटे बच्चे को पालने की ज़हमत वे अपनी बीवी पर कैसे डाल सकते थे। इसीलिए छह साल तक मुझे घर नही बुलाया जा सका। आपको याद होगा, जब मै घर आया तो रसोई के पास के स्टोर में कोयले की बोरी पर जा कर सो गया। दाल-सब्ज़ी खाने की आदत थी नहीं, खाई तो दस्त लग गए। तब नई बीवी ने कहा, 'यह तो एकदम जंगली है, इसकी

सोहबत में छोटे लड़के भी बिगड़ जाएंगे' और इसलिए···"

"कमउम्र थी इसी से हो गया," अविजित ने उसकी बात काट कर कहा।

"अब वे बदल गई है। मुझे तो मां से कोई शिकायत नही है।"

"क्यों नहीं है? होनी चाहिए। मैं तो भूला नही हूं कि दस-ग्यारह बरस की उम्र में ही आप घर-भर में झाड़ू लगाते थे, बर्तन मांजते थे और दोनों छोटे लड़कों को लादे-लादे स्कूल की पढ़ाई किया करते थे। मुझे घर से बाहर न भेज दिया गया होता तो···"

"तो क्या···बुरा वक़्त था गुजर गया···अब उसका क्या जिक्र?"

"जो गुज़र जाता है उसे आप फ़ौरन भूल जाते है?

"कोशिश तो ज़रूर करता हूं।"

"मैं नही करता। जो गुज़र चुका है मेरे साथ जीता रहता है।"

अविजित चुप रहा।

"होता आप के साथ भी यही है," अनित्य ने कहा, "बस आप लोग उसे नकारते रहते है और इसीलिए दो स्तरों पर जीने को मजबूर हो जाते है।"

ठीक कह रहा था अनित्य···इसी से बात बदलनी पड़ी थी।

"कितने दिन रहे जेल में?" उसने पूछा।

"चार महीने। भला हो गान्धीजी का, जो समझौता कर लिया वरना न मालूम कितने दिन और रहना पड़ता।"

"तुमने मुझे नही लिखा?"

"इसमें लिखने को क्या था?"

"मैं आकर मुलाक़ात कर जाता। चिट्ठी-पत्री भी देता···जेल के अकेलेपन से कुछ तो निजात मिलती।"

"अकेलापन था कहां? एक बैरक में पचास क़ैदी ठुसे पड़े थे। सोते-सोते भी एक का पैर दूसरे को छूता रहता, दो फुट की जगह तो हुआ करती थी बीच में। मै तो तन्हाई को तरस गया। सबके सामने नहाओ, लाईन में बैठ कर खाना निगलो और चौबीसों घण्टे गान्धीजी का बखान सुनो···एक दोस्त मिलने आया तो यही कहा उससे, और कुछ नही तो थोड़ी-सी रुई भिजवा देना। कानों में ठूस लूँगा तो कुछ राहत मिलेगी। ज़रा सोचिए तो सही, अगर उन्चास आदमी हर जुमले की शुरुआत 'गान्धी जी कहते हैं···' से करेंगे तो पचासवें की क्या हालत होगी?"

अविजित हंस पड़ा।

"बस यही तकलीफ़ थी जेल में?"

"मेरी ख़ुशकिस्मती कि अपना जेलर गोहरबाई का ख़ास···दोस्त···निकला। मेरी चिट्ठी मिलने पर वे जो मुलाक़ात करने आई तो उसके बाद कोई तकलीफ़ मुझे नही रही। खाना बाहर से मंगाने की इजाज़त मिल गई, साबुन-तेल की सुविधा हो गई —पैसा दोस्त लोग जमा करा गए थे—और सबसे अच्छा हुआ यह कि बैरक के बाहर अहाते में सोने की इजाज़त मिल गई।"

"तुम्हारे साथियो में से किसी और ने भी अपने लिए खास सहूलियतें मांगी थी ?"

"नही ।"

"एक आदमी सिर्फ़ अपने लिए खास सहूलियतें मांगे इसे तुम ग़लत नहीं समझते ?"

जानबूझकर आज अविजित बार-बार अनित्य पर चोट कर रहा है, क्यो, वह खुद नहीं समझ पा रहा।

"समझता हूँ," अनित्य ने कहा, "पर जितना ग़लत यह जेल के अन्दर है उतना ही जेल के बाहर। एक ग़रीब आदमी के मुक़ाबले हम कितनी सहूलियतें पाये हुए है, कभी सोचा है किसी ने ?"

"गान्धीजी सोचते है। उनका रहन-सहन देश के सबसे ग़रीब आदमी की तरह है।"

"भाई साहब," अनित्य ने कहा, "ग़रीबी झेलना और गरीबी से सहानुभूति रखना दो अलग चीजें है। जानबूझकर तीसरे दर्जे में सफर करना और लंगोट पहनना एक बात है और न चाहते हुए भी ऐसा करने पर मजबूर होना दूसरी बात है। फिर यह बतलाइए कितने ग़रीब किसान हैं जो दूध, फल और बादाम खा पाते है।"

"क्या मतलब ?"

"छोड़िये। जेल में रहकर एक ही बात मेरी समझ में आई, जो बाहर है वही अन्दर। वही ऊँच-नीच, वही तिकड़मबाजी, वही रसूख, वही रिश्वतखोरी, वही पार्टी-बन्दी। आप ऊँचे वर्ग के है, घर पर खानसामा रखकर खाना बनवाते है तो जेल में भी खाना पकाने के लिए आपको निचले वर्ग का क़ैदी मिल जाएगा। आपके पास पैसा है, वार्डनों को सिगरेट-बीड़ी पिला सकते है तो वह भी आपसे दोस्ताना ताल्लुक़ात रखेगा। वरना चक्की पीसिए, उबले चने चबाइए, मिट्टी मिली रोटी और कंकड़ मिली दाल पर गुज़ारा कीजिए, बात-बात हर बेंत खाइए···"

"तुम अपराधियो की बात कर रहे हो। राजनैतिक बन्दी···"

"राजनैतिक बन्दी ! लाला लाजपतराय को शिकायत थी कि मद्रासी छोकरे का बनाया खाना रुचता नहीं, पंजाबी आदमी चाहिए और अण्डमान के बन्दियों को शिकायत है कि बैल की जगह उन्हें कोल्हू में जोत कर तेल निकलवाया जाता है। दोनों ही राजनैतिक बन्दी हैं न ?"

"हां," अविजित ने कहा, "पर···"

पर···वह जानता है कोई दलील अण्डमान के नरक की यातनाओं को नकार नहीं सकती।

उसके दिमाग़ में वह सब घूम गया था जो अण्डमान की जेलों के बारे में सुनने में आता रहा है।

अठारह-बीस साल के कम-उम्र लड़कों को कोल्हू में जोता जाता है। तीस पौंड तेल निकालना आवश्यक है और उतना निकाला ही नहीं जा सकता। काम पूरा न होने

पर रोज़ शाम को मार पड़ती है, खाना नही मिलता और कोल्हू में जुता रहना पड़ता है। काम करने पर प्यास लगती है पर पानी मांगने पर पीठ पर डंडा बरसता है। बेहोश होने पर भी काम से छुटकारा नहीं है।

जेल प्रशासन का उद्देश्य ही है उन्हें तिल-तिल करके मारना या आत्मघात पर बाध्य करना। नहाते-धोते समय बन्दी आपस में इशारे भी कर लें तो खड़ी हथखड़ी की सज़ा मिल जाती है। सिर से ऊँचे कुंडे से दोनों हाथ हथकड़ी से फिट कर के बन्दी को खड़ा कर दिया जाता है। जागना-सोना उसी हालत में···सात दिन तक !

मिट्टी का तेल और कीड़े मिला खाना मिलता है और उसे खाने के लिए भी इतना कम समय कि पूरा खा नही पाते। और न खाने पर भी दंड मिलता है।

उल्हासकरदत्त के बारे में सुना है। उसे हाथ-पैर बाध कर कोल्हू घुमाने वाली लकड़ी से बांध दिया गया था। बाकी बन्दी कोल्हू तेज़ी से घुमाते और बँधा हुआ उल्हास-कर साथ घिसटता रहता। सिर जमीन से टकराता, शरीर लहूलुहान हो जाता। फिर उसे ईंट ढोने और ऊँची चढाई पर चढ़ कर पानी लाने-पहुंचाने का काम दिया गया। शक्ति ने जवाब दे दिया सो जंजीर से बांध कर लटका दिया गया और उसी हालत में वह पागल हो गया। और भी कितने ही बन्दी वहां पागल हो गए या उन्होंने आत्महत्या कर ली।

इन लोगों के बारे में कितने लोग जानते है ? जानते हुए कितने हैं जो इस सबसे उद्वेलित होते है ?

"आतंकवादियो को सरकार राजनैतिक बन्दी नहीं मानती, क़ातिल और डकैत मानती है," अविजित ने कहा।

"गान्धीजी भी यही मानते हैं," अनित्य ने कहा।

"नही।"

"नही कैसे ? अपनी हालत में सुधार लाने के लिए वे लोग स्वयं अनशन कर रहे हैं। यतीन्द्रनाथ की पिछले साल मौत हुई। गान्धीजी ने तो उनके लिए उपवास नहीं रखा।"

१९३२ में अविजित खुद जेल गया तो बात अच्छी तरह समझ में आ गई। जेल की यातनाएं सह कर क्रान्तिकारियो ने जो अनशन किया था उसका नतीजा यह निकला था कि क़ैदियों की खुल्लमखुल्ला तीन श्रेणियां बन गई थी—ए, बी और सी। बाहर के समाज का वर्ग-विभेद भीतर जेल में भी लागू हो गया था। लागू तो पहले से था, अब स्वीकार कर लिया गया। कैसी विडम्बना थी कि जिन लोगो ने अनशन किया था वही 'सी' क्लास में जा पड़े।

पडित नेहरू ने उन दिनो कहा था,"···सर्वसाधारण तो लड़ेंगे और क़ुर्बानी करेंगे और जब क़ामयाबी का वक़्त आएगा तब ऐन मौक़े पर दूसरे लोग बड़ी खूबी से

आकर जीत का लाभ हड़प लेंगे। इसबात का भारी खतरा था क्योंकि खुद कांग्रेस के इसके बारे में निश्चित विचार नही थे कि हम लोगों को किस तरह की सरकार स्थापित करना चाहिए। कुछ काग्रेसी तो···यही चाहते थे कि मौजूदा सरकार मे ब्रिटिश या विदेशी अंश को निकालकर उसकी जगह स्वदेशी छाप दे दी जाए।"

एक लम्बी लड़ाई का अन्त आखिर इसी तरह हुआ। अनित्य···काजल··· भगतसिह···जवाहरलाल नेहरू···सब जानते थे फिर भी···हुआ वही जिसका सबको डर था। जानता तो अविजित भी था···जानता है···बस महसूस तब करता है जब कोई काजल या चड्ढा उसकी याद दिला दे।

८

"जो स्वतन्त्रता लड़कर ली जाए उसका मूल्य और होता है," काजल ने कहा।

"तब हम शासक को ही नही, उसके द्वारा आरोपित मानदण्डों और सामाजिक व्यवस्था को भी उखाड़ फेंकते है।"

"अहिंसात्मक लडाई भी तो लड़ाई है," अविजित ने कहा।

न चाहते हुए भी अविजित के लिए दलील देना ज़रूरी क्यो हो जाता है?

"हां," काजल ने कहा, "पर उसका अन्त समझौते में होता है। शासकों से समझौता करने का अर्थ ही है स्वाभिमान का ह्रास और नपुसकता का उदय। ऐसे लोग हमेशा परिवर्तन से डरते हैं। हमी को देखो न। हमने न अपने शासकों की शासन-प्रणाली बदली न शिक्षा-प्रणाली।"

अविजित ने काजल पर से नजरें हटाकर फ़ाइल पर जमा ली पर वहां भी तो···

"···हिंसा का अर्थ है," उसने पढा, "अन्याय के लिए किया गया बल प्रयोग। पर क्रान्तिकारियों का यह उद्देश्य नहीं है, दूसरी ओर अहिंसा का आम अर्थ है आत्मिक शक्ति और सिद्धान्त। अपने-आपको कष्ट देकर आशा की जाती है कि इस प्रकार अन्त में विरोधी का हृदय परिवर्तन सम्भव होगा। सत्याग्रह का अर्थ है सत्य के लिए आग्रह। उसकी स्वीकृति के लिए केवल आत्मिक शक्ति के प्रयोग का आग्रह क्यों? इसके साथ-साथ शारीरिक बल प्रयोग भी क्यों न किया जाए? क्रान्तिकारी स्वतन्त्रता प्राप्ति के

लिए शारीरिक एवं नैतिक शक्ति दोनों के प्रयोग में विश्वास करता है परन्तु नैतिक शक्ति का प्रयोग करने वाले, शारीरिक बल को निषिद्ध मानते हैं। इसलिए अब सवाल यह नहीं है कि आप हिंसा चाहते हैं या अहिंसा बल्कि प्रश्न यह है कि आप अपनी उद्देश्य की पूर्ति के लिए शारीरिक बल सहित नैतिक बल का प्रयोग करना चाहते है या केवल आत्मिक शक्ति का।

"आतंकवाद सम्पूर्ण क्रान्ति नहीं और क्रान्ति भी आतंकवाद के बिना पूर्ण नहीं। यह तो क्रान्ति का एक आवश्यक और अवश्यम्भावी अंग है। इस सिद्धान्त का समर्थन इतिहास की किसी भी क्रान्ति का विश्लेषण कर जाना जा सकता है। आतंकवाद आततायी के मन में भय पैदा करके पीड़ित जनता में प्रतिशोध की भावना जाग्रत कर उसे शक्ति प्रदान करता है। अस्थिर भावना वाले लोगों को इससे हिम्मत बंधती है तथा उनमें आत्म-विश्वास पैदा होता है। इसमें दुनिया के सामने क्रान्ति के उद्देश्य का वास्तविक रूप प्रकट हो जाता है क्योंकि ये किसी राष्ट्र की स्वतन्त्रता की उत्कट महत्वाकाक्षा के विश्वास दिलाने वाले प्रमाण हैं।

"···क्रान्तिकारी जानते है कि कांग्रेस ने जन-जाग्रति का महत्वपूर्ण कार्य किया है। उसने आम जनता में स्वतन्त्रता की भावना जाग्रत की है। क्रान्तिकारी तो उस दिन की प्रतीक्षा कर रहे है जब कांग्रेस आन्दोलन से अहिसा की यह सनक समाप्त हो जाएगी और वह क्रान्तिकारियो के कन्धे से कन्धा मिलाकर पूर्ण स्वतन्त्रता के सामूहिक लक्ष्य की ओर बढ़ेगी।

"···वास्तव में गांधीजी जिस रूप में सत्याग्रह का प्रचार करते है वह इस प्रकार का आन्दोलन है जिसका स्वाभाविक परिणाम समझौते में होता है जैसा कि प्रत्यक्ष देखा गया है···"

दरअसल अहिंसा की सनक ख़त्म नहीं हुई थी, बढ़ती ही चली गई थी। अन्त में स्वतन्त्रता मिली भी तो समझौते के रूप में। दूसरे विश्वयुद्ध में भारत को आर्थिक रूप से पूरी तरह निचोड़ लेने के बाद ही अंग्रेज़ शासकों ने उसे छोड़ा था, वह भी इसलिए कि निगल पाना असम्भव हो रहा था।

"वह समय ही ऐसा था कि गान्धीजी के सिवाय दूसरा आदमी जन-जाग्रति ला ही नहीं सकता था," फिर भी अविजित ने कहा, "यह भगतसिंह ने भी माना है। और जन-जाग्रति के बिना आज़ादी···"

"भूल गए, गांधीजी ने करांची कांग्रेस में काले झण्डों से स्वागत होने पर क्या कहा था—इतनी जन-जाग्रति मैं दस वर्ष में नहीं ला पाया जितनी भगतसिह को फांसी लगने से पैदा हो गई।"

"हां···वह तो है···" अविजित ने कहा, "तुम्हे भगतसिंह पर बहुत मोह है··· हमेशा से रहा है, है न?"

"तुम जो मुकर्जी बाबू की तरह बोल रहे हो," काजल ने कहा।

"मुकर्जी बाबू कौन?"

"मेरे पति।"

"..."

"कांग्रेसी है। १९४२ में माफ़ी मांगकर जेल से छूट गए थे। आदमी तिकड़म-बाज है...आज़ादी मिलने पर कसकर लीडरों की चापलूसी की। मन्त्री बन गए। कहने लगे, तुम्हें भगतसिंह पर इतना मोह क्यों है? कांग्रेसी की पत्नी को यह शोभा नहीं देता। मैंने कहा, मोह मुझे भगतसिंह पर नहीं, इतिहास पर है।"

अविजित उसके जवाब को झेलता कुछ देर चुप रहा, फिर बोला, "मुकर्जी बाबू से तुम्हारी शादी कैसे हुई?"

"क्यों?" काजल ने कहा, "तुम्हारी तरह क्या सभी शादी से इन्कार कर देते है।"

अविजित का मुंह सूख गया।

काजल सहसा हंस दी। बोली, "मुकर्जी बाबू सिर में तेल मालिश बढ़िया करते है।

अविजित ने मुंह उठाकर उसकी तरफ़ देखा और उसकी हंसी से वशीभूत होकर खुद भी हंस दिया।

बोला, "इसीलिए शादी कर ली?"

"और जो बुराई उनमें हो," काजल ने कहा, "सिर-दर्द के लिए अच्छे आदमी हैं।"

"मालिश मैं भी बढ़िया करता हूं," अविजित ने कहा।

"मेरे सिर में अब दर्द नहीं होता," काजल ने फ़ौरन कहा, "मुकर्जी बाबू ने हमेशा के लिए ठीक कर दिया।"

"फिर छोड़ क्यों दिया उन्हें?" तिलमिला कर अविजित कह गया पर कह कर बुरी तरह लज्जित हो उठा।

"माफ़ करना काजल", उसने कहा, "यह सब पूछने का..."

"अधिकार तुम्हें नहीं है, यह सच है," काजल ने कहा, "फिर भी बतलाने में मुझे एतराज़ नहीं है।"

कुछ देर चुप रह कर काजल एकदम गम्भीर हो उठी।

"छोड़ने से इतना डरना नहीं चाहिए, अविजित," उसने कहा, "गलत मूल्य को सिर्फ़ इसलिए छाती से चिपकाए रखना क्योंकि एक दिन उचित समझ कर उसे ग्रहण किया था, अपने को छलना भर है और कुछ नहीं।"

बात उससे कही गई है, अविजित समझ गया पर जवाब देने को कुछ नहीं मिला।

कुछ ठहर कर काजल ने कहा, "उनकी सिर मालिश की कला से ही शायद प्रभावित हो कर बाबा मुकर्जी बाबू को इतना बड़ा सर्टिफ़िकेट दे गए कि बिना सोचे-विचारे ही मैंने उनसे ब्याह कर लिया।"

"तुम्हारे बाबा..."

"१९४२ में पटना कैम्प जेल में उनकी मृत्यु हो गई थी'''तुम्हें याद है, १९३४ में हम लोग इलाहाबाद छोड़ कर पटना चले गए थे ?"

"हां," अविजित को कैसे याद नही होगा।

"१९४२ अगस्त में मां-बाबा दोनों गिरफ्तार हो गए। मैं १९४५ तक फ़रार रही, इतना पता अवश्य लगा कि बाबा पटना जेल में है पर मिलना या पत्र देना एकदम नहीं हो सका। मां एक साल बाद छूट कर घर आ गई पर बाबा'''और नहीं आए ! तीन वर्ष बाद जब मैं घर लौटी तो ''मुकर्जी बाबू ने बाबा के पत्रों का पुलिंदा हाथों में थमा दिया'''"

"मुकर्जी बाबू तुम्हारे पिता के मित्र थे ?"

"नही'''पटना जेल मे उनके साथ थे। दो-तीन महीने में जब भी पत्र लिखने की इजाज़त मिलती; बाबा मेरे नाम पत्र लिख कर मुकर्जी बाबू को पोस्ट कर देते। दो बरस में दस-बारह पत्र जमा हो गए ?"

"जेल से जेल ही में ?"

"छह महीने बाद छूट गए थे न मुकर्जी बाबू जेल से। पर बाबा को उन्होंने नहीं छोड़ा'''मुलाक़ात के दिन मिलने बराबर जाते रहे। मां घर आई तो उनकी भी देखभाल की। पत्र-वाहक, संदेश-वाहक, पोषण-कर्त्ता सब'''बस एक मुकर्जी बाबू ही तो थे !"

कहकर काजल जरा हंसी, फिर बोली, "बाबा की सम्पत्ति तो सरकार ने ज़ब्त कर ली थी।"

अविजित की समझ में नहीं आया, क्या प्रतिक्रिया जाहिर करे।

"बाबा के पत्रों में मेरे लिए प्यार भरा था या मुकर्जी बाबू का गुणगान," कुछ रुककर काजल ने कहा, "जेल में उन्होंने बाबा की कितनी सेवा-सुश्रूषा की, खूब ब्यौरेवार लिखा था बाबा ने। उतना ब्यौरेवार तो खुद मुकर्जी बाबू ने भी मुझे नहीं सुनाया।" काजल के ओठों पर एक तिक्त मुस्कराहट फैल गई।

पर कुछ ठहर कर जब वह दुबारा बोली तो उसका स्वर द्रवित था।

"बाबा को रक्तचाप की बीमारी थी," उसने कहा, "सिर में भीषण पीड़ा रहती थी'''उस पर पटना कैम्प जेल ? क्या थी तुम तो जानते ही होगे।"

"हां, वहां सभी राजनैतिक बन्दी 'सी' क्लास में थे," अविजित ने कहा।

'सी' क्लास भी कैसा ! बहुत कुछ सुन रखा है अविजित ने पटना कैम्प जेल के बारे में।

बीस जनों के लायक वार्ड में सौ-सौ क़ैदी बन्द ! हवा आने-जाने के लिए एक खिड़की तक नही ! ऊपर टीन की छत। बासी हवा की घुटन में देह-झुलसाती चिलचिलाती गरमी ! नहाने-धोने को पानी नही, तेल-साबुन की बात ही क्या। खाने को चार छटांक चावल में घुटे कीड़े और कंकड़। ऊपर से बात-बात पर लाठी-चार्ज ! त्योहारों के दिनों का एक निश्चित कार्यक्रम !

"हां," काजल ने कहा, "सी क्लास कह देना काफ़ी है, और वर्णन नही

चाहिए।"

"अच्छा," सहसा उसने कहा, "अब तो अपनी सरकार है। जेलों से ए, बी, सी श्रणियां हटा क्यों नहीं देती ?"

"सब कुछ तो वही है," अविजित ने कसमसा कर कहा।

"हां," काजल ने तीते स्वर में कहा, "मुकर्जी बाबू न रहे होते तो पटना जेल में बाबा का पता नहीं क्या हाल होता। वही तो एक थे जो जेल में भी दवा-दारू का जुगाड़ कर देते थे। कितना सामान तो उनके मुलाक़ाती दे जाते थे। मुलाक़ातें कराना जेलर के हाथ में था और जेलर मुकर्जी बाबू की मुट्ठी में। और भले इतने कि बाबा की तबीयत खराब होती तो खुद उनके सिर में तेल-मालिश करने बैठ जाते। बाबा बेचारे गद्‌गद् होकर दिल का सब हाल उनसे कह डालते। बस दो बातें—एक मैं दूसरी ज़ब्त हुई सम्पत्ति। मुकर्जी बाबू का धैर्य तो देखो, एक दिन भी बाबा की बातों से ऊब महसूस नहीं की। ऐसा आदमी घाटे में रह सकता है भला ?"

"मतलब ?"

"मेरे लौटने भर की देर थी कि मुकर्जी बाबू ने जतन कर के ज़ब्त हुई सम्पत्ति छुड़ा ली—मेरे नाम से।"

"और तुम्हारे बाबा···"

"बाबा !" काजल जैसे अपने पिता को आंखों के सामने देख रही थी।

"बाबा तब तक नहीं मर पाये जब तक मुकर्जी बाबू से मिल न लिए। सिर पर लाठी खाकर पन्द्रह दिन अस्पताल में पड़े रहे पर प्राण छोड़े तब जब मुकर्जी बाबू को आशीर्वाद दे चुके।"

"जेल में लाठी चार्ज हुआ था !" अविजित ने समझ कर कहा।

"मुकर्जी बाबू ने ठीक तो कहा था—चावल की मिक़दार छह से घटा कर चार छटांक कर दी गई तो बूढे बाबा क्यों विरोध करने गए, वे तो उतना भी नहीं खा पाते थे···क्यों अविजित ?"

उसके स्वर की तीती घरघराहट से अविजित सकपका गया। वह समझ नहीं रहा था, मुकर्जी बाबू के बारे में ठीक क्या सोचे। आदमी तो भला ही मालूम पड़ रहा था।

"दूसरों के लिए···" उसने कहा।

"कोई क्यों मरे, यही न।"

अविजित चुप रहा।

"और मुझे देखो," काजल कहती गई, "ब्याह के समय बच्ची तो थी नहीं तीस बरस की होने को आई थी पर एक बार यह भी पूछ कर नहीं देखा कि अकेले मुकर्जी बाबू ही क्यों छह महीने में जेल से छोड़ दिए गए थे।"

चुप बैठा अविजित देर तक काजल के तमतमाये चेहरे को देखता रहा, फिर वातावरण को हल्का करने की गरज से बोला, "सज़ा तो पूरी करनी ही पड़ी। तुमने

उन्हेंछोड़ दिया न।"

"तो? मेरे पति न सही, मान्य पुरुष तो अब भी है। उद्योगमंत्री मुकर्जी कोई छोटी चीज तो हैं नहीं।"

"उद्योगमंत्री मुकर्जी!" अविजित के मुह से निकला, "वही क्या तुम्हारे पति है?"

"थे।"

"थे ही सही।"

"हां। तुम उन्हें जानते हो?"

"नहीं, जानता तो नही···यानी निजी तौर पर नहीं जानता···मुझे उनसे काम है।"

"हो जाएगा।"

"यानी?"

"बस रक़म तगड़ी लगेगी। दिक्कत क्या है? तुम लोग 'ए' क्लास के आदमी हो। कम्पनी के पास रुपयों की कमी तो होगी नही।"

ए क्लास के आदमी!

अविजित का सारा शरीर जल उठा।

"रुपयों की कमी तो तुम्हारे पास भी नहीं होगी," उसने कहा, "तुम्हारी सम्पत्ति···"

"वह तो मैंने दहेज़ में दे दी।"

उठने को उद्यत अविजित लज्जित-सा बैठा रह गया।

"घर छोडते वक़्त मुकर्जी बाबू से कहा था, रुपया-पैसा सब आप रखें, बस बेटे को मैं ले जाऊंगी। ले आई थी पर···जानते हो अविजित, देश का क़ानून बेटे को बाप के हवाले करता है और मौक़ापरस्त आदमी अच्छा बाप नही बन सकता, कोई कोर्ट यह दलील मानने को तैयार नही है।"

"तुम्हारा बेटा वहीं है?" अविजित ने कोमल स्वर में पूछा।

"हां। पहले कुछ नही कहा···बाद में···कोर्ट आर्डर दिखला कर मेरे पास से ले गए···" एक क्षण को काजल विह्वल हो उठी, फिर बोली, "मेरी लड़ाई जारी है। एक दिन···ज़रूर···"

नहीं जीत पाओगी, अविजित ने नहीं कहा। सोचा जरूर, मौकापरस्त आदमी देश पर राज कर सकता है तो बाप क्यों नहीं बन सकता।

पंडित नेहरू ने कहा था—कामयाबी तभी हासिल होनी चाहिए जब आदमी उसके क़ाबिल हो वरना कुर्बानी कोई देगा और ऐन मौके पर हुकूमत मौकापरस्त लोगों के हाथों में चली जाएगा।

उसके ससुर जज सिंघल ने कहा था—हुकूमत चाहे अंग्रेज के नाम पर चले चाहे कांग्रेस के या किसी और पार्टी के, हुक्मरान वही रहेंगे·· हुकूमत अफ़सर करते हैं, नारे नही और अफ़सर का दूसरा नाम है हुकूमत का तजुर्बा···मेरी जगह जज उस किसान

को नही बनाया जा सकता जिसे १६४२ में मुझे देश के क़ानून के नाम पर सज़ा सुनानी पड़ी थी।

सुनानी पड़ी! समय की मांग थी! लड़े, क्योंकि लड़ना पड़ा···समझौता किया क्योंकि करना पडा···सज़ा दी क्योकि देनी पड़ी। रिश्वत···देते है क्योंकि देनी पड़ती है···समय की माग है! अकेली काजल किस-किस से लड़ेगी ?

मैं भी कितना पागल हूं, घर के रास्ते में अविजित ने सोचा, शान्ति की खोज में काजल के पास गया था। काजल और शान्ति···

"वेजा बात है। आदमी आखिर अपने क़द से कितना ऊंचा उठेगा?"

अनित्य! अनित्य तुम मेरे पीछे-पीछे हर जगह क्यो आ जाते हो?

"मैं आपके पीछे-पीछे नही आता। आप ही हरदम मुझे साथ लेकर चलते है।"

"पर तुम्हारी बात ग़लत है।"

"क्यों?"

"व्यतीत में जी कर कोई आदमी शान्ति नही पा सकता।"

"और अगर किसी का वर्तमान व्यतीत में से निकलता हो?"

"काजल इतिहास पढाती है, इतिहास पर उसका मोह स्वाभाविक है···व्यतीत में उसका जीना भी स्वाभाविक है पर मैं···"

"पर आप?"

"मैं वह सब भूल चुका हूँ।"

अनित्य हँस दिया।

"नही भूला तो भूल जाना चाहिए। १६४२ में जो कुछ मुझसे हुआ मैने किया। जो नही हुआ उसके लिए क्या मैं जिम्मेवार हूँ?"

"जिम्मेवार वह है जो ज़िम्मेवारी माने।"

"मैं क्यों? मैं ही क्यों?"

अजीब थी अगस्त १६२४ की लड़ाई! जनक्रान्ति और किसे कहेंगे! मध्यम वर्ग के युवा विद्यार्थी और साधनहीन किसान एकजुट होकर अंग्रेज़ी सत्ता के विरुद्ध टूट पड़े। दस हजार के ऊपर लोग मारे गए; लाख से ऊपर जेलो में बन्द हो गए। पर···नतीजा कुछ नही निकला।

बहादुरी संगठन बिना हार गई।

संगठन इसलिए नही हुआ कि नेता 'जेलों' में बन्द थे या इसलिए कि वे जानते नही थे वाक़ई वे चाहते क्या है?

और नेता·· क्या वाकई वे लोग दुविधा में थे या दुविधा में रहना राजनीति की दृष्टि से लाभदायक था?

"ग़लत यह हुआ कि आप लोगों में राष्ट्रीय जाग्रति आने से पहले ही अन्तर्राष्ट्रीय

जाग्रति आ गई।"

किसने कहा था ?···मिस्टर मार्शल नें।

मिस्टर मार्शल न मिले होते तो शायद अविजित वह किताब भी न लिखता जिसके कारण···

१९४२ का अन्त हो चला था···

शाम के घिरते झुटपुटे में, बीते दिनों की याद दिलाता, चड्ढा एक दिन अचानक उसके घर आ पहुंचा। नुकीली दाढी और क्रिश्चियन पादरी के लबादे में अविजित उसे पहचान नही पाया था···ख़ुद उसी को अपना नाम बतलाना पड़ा था। एक बार जान लेने पर, तो ख़ैर···

"लगता है," चड्ढा ने कहा था, "मैं अब जल्दी गिरफ़्तार हो जाऊंगा।"

"मैं कुछ कर सकता हूं तेरे लिए ?" अविजित ने पूछा था।

"इसीलिए तो आया हूं। तुझ पर कोई शक नही करेगा···"

"क्यों नहीं करेगा ?" अविजित को उसका संकेत बींध गया था, "मेरा रिकार्ड काफ़ी खराब है," उसने कहा था।

"इसीलिए तो तेरे पास आया हूं," चड्ढा ने मुस्करा कर कहा था, "मुझे ऐसे आदमी की जरूरत है जिस पर न मुझे शक़ हो और न सरकार को।"

"करना क्या है ?"

"यह रुपया और कागज़ रख ले, बस। बाक़ी का तू कुछ न जाने तो ही अच्छा है। अगर मैं पकड़ा नही गया तो खतरा कम होने पर आकर ले जाऊंगा। वरना हमारा कोई आदमी आएगा। पासवर्ड होगा—पीला साफ़ा।" चड्ढा ने उसे काम की बात समझा दी थी।

अपने बारे में खोल कर कुछ बतलाया नही था पर अविजित समझ गया था कि वह किसी भूमिगत दल के लिए काम कर रहा है। यह भी कि कुछ दिनों से वह महसूस करता रहा है कि पुलिसवालों को उसका सुराग मिल गया है, इसलिए दल को छोड़कर दूर निकल आया है···बिहार की सरहद पार करके कलकत्ता। दल के सदस्यों को बचाए रखने के लिए ज़रूरी है कि वह उनकी गतिविधियों के स्थानों से दूर रह कर गिरफ़्तार हो। अविजित पर शक़ नहीं होगा, वह लड़ने वालो की कतार में नही है। दस साल पहले विद्यार्थी जीवन में भले ही अनाचार हो गया हो पर आज, प्रसिद्ध उद्योगपति के मैनेजर और जज सिंघल के दामाद होने की हैसियत से वह शक़ के घेरे से बाहर है।

अविजित ने रुपया और कागजात ले जाकर दफ़्तर की मेज में बन्द कर दिये थे। अपने सेक्रटरी भण्डारी से कह दिया था कि वह बंडल निजी और गोपनीय है। और कुछ कहने की ज़रूरत नही थी। भण्डारी भरोसे का आदमी था···इसीलिए तो कलकत्ता छोड़ कर दिल्ली आने पर ढूंढ कर उसे साथ लेता आया है···उसकी वफ़ादारी सिर्फ़ अविजित से ताल्लुक़ रखती थी। उसके लिए वह सब कुछ करने को तैयार था—

पतिव्रता पत्नी की तरह। सच, कितना सुखद, कितना सहज है व्यक्तिगत, स्वामिभक्ति का अस्तित्व और निर्वाह। दुविधाहीन ! व्यक्तिगत मोह के सहारे ठोस धरती पर खड़ा !

पांच दिन के अन्दर अंग्रेज पुलिस इन्स्पेक्टर मार्शल उसके दफ्तर में आ धमका।

"पुलिस इन्स्पेक्टर मार्शल," अपना परिचय देकर उसने कहा, "तलाशी लेनी है।"

इतनी जल्दी !

"क्या लेनी है ?" अविजित ने अवकाश प्राप्त करने के लिए पूछा।

"तलाशी।"

"तलाशी ? हमारे दफ्तर की ? किसलिए ?"

"हमारी सूचना है कि आपका 'सियाराम क्रांतिकारी दल' से सम्बन्ध है," मार्शल ने अंग्रेज़ी में कहा।

अविजित ने नोट किया, मार्शल ने 'रेवोल्यूशनरी' शब्द का प्रयोग किया है, 'टेररिस्ट' या 'क्रिमिनल' का नहीं। क्रांतिकारी शब्द का इस्तेमाल भी निहायत शालीनता से किया गया है, हिक़ारत या व्यंग्य का पुट तक नहीं है। एक क्षीण-सी आशा उसके मन में उभर आई। शायद…

"हमारा ?…बिड़ला ग्रुप का ?" विक्षुब्ध स्वर में उसने ऐसे पूछा जैसे बुरी तरह अपमानित कर दिया गया हो।

मार्शल के ओंठ हल्के-से कांपे। शायद वह मुस्कराया था।

"नहीं, मिस्टर बंसल, आपका। बिड़ला ग्रुप से अलग आप एक व्यक्ति भी है।" उसने कहा।

"माफ कीजिए, इन्स्पेक्टर मार्शल," राजभक्त जोश के साथ अविजित ने कहा, "आपको बतलाने की ज़रूरत मुझे नहीं होनी चाहिए कि युद्ध के दौरान व्यक्ति, व्यक्ति नहीं, कर्त्तव्य निभाने वाला पुर्ज़ा भर होता है। मैं बिडला ग्रुप का मैनेजर हूं, बस, और कुछ नहीं। हमारी फ़ौजों को इस वक्त कपड़े की ज़रूरत है। मेरा काम है, कपड़े का अधिकतम उत्पादन करना। बस ! और कुछ नहीं। मै देखता नहीं हू, सुनता नहीं हूं, बस काम करना हूं। आप जानते हैं, इन्स्पेक्टर मार्शल, 'वार एफ़र्ट' में हमारा कितना बडा योगदान है ?" अविजित का स्वर बराबर ऊपर उठता चला जा रहा था।

उसने देखा भण्डारी आकर कमरे के दरवाजे पर खड़ा हो गया है। यही मौक़ा है, उसने तय किया।

गुस्से से उसका बदन थरथरा उठा। आंखों में सुर्ख डोरे खिंच गए। आवाज को भरसक तोड़ कर ऊपर उठाते हुए उसने कहा, "आप हमारी तलाशी लेना चाहते हैं, हमें जलील करना चाहते हैं। यही इनाम है बरसों की हमारी वफादारी का, सालों लम्बी खिदमत का ? इन्स्पेक्टर मार्शल, आपको मालूम होना चाहिए, हमी है वे लोग जिनके बलबूते पर ब्रिटेन आज फ़ख्र से कह सकता है--फ़ासिज्म से जीत हमारी होगी। आप

समझते है, यह सिर्फ़ आपकी लड़ाई है, हमारी नहीं ? क्यों हम आपके मोर्चो पर जान दे रहे है, क्यों तंगहाली में रह कर आपकी फ़ौजों के लिए माल जुटा रहे है, इसलिए कि आप जब चाहें हमें ज़लील कर ले···?" अविजित की आवाज़ रुंध गई, आंखों में विक्षिप्त चमक आ गई।

"मिस्टर बंसल···" मार्शल ने बाधा दी।

"मिस्टर बंसल ! कौन मिस्टर बंसल ? आपके लिए मैं एक अपराधी हूं। एक देशद्रोही ! तलाशी लेने आए हैं न आप ? लीजिए, तलाशी लीजिए···लीजिए···" अविजित ने मेज़ की दराज़ खींच कर बाहर निकाल ली।

भीतर पड़े कागजों को उछाल-उछाल कर कमरे में चारों तरफ़ फेंकने लगा। फिर, मार्शल और भण्डारी के देखते-देखते उसने खटाक से खाली दराज़ बन्द कर दी और तान कर एक लात मेज़ पर जमाई। तेजी से लुढ़कती हुई मेज दरवाज़े पर खड़े भण्डारी के पास जा रुकी।

"लीजिए तलाशी," अविजित ने कहा, "शौक़ से लीजिए···पर इतना याद रखिएगा, एक दोस्त आज आपने खो दिया···"

"सर···सर···प्लीज़ अपने पर क़ाबू रखिए," कहता भण्डारी मेज़ सीधी कर रहा था।

"···एक वफ़ादार हिन्दुस्तानी। साम्राज्य का ईमानदार मददगार। यह मेरी ही नही, तमाम भारतीय उद्योग की बेइज़्ज़ती है, खुद सरकार की बेइज़्ज़ती है···" अविजित चीखे चला जा रहा था।

"पानी···चपरासी···पानी···नहीं, मैं लाता हूं···" भण्डारी ने चिल्ला कर कहा और बाहर दौड़ गया।

अविजित समझ गया उसने कागज़ात दराज़ में से निकाल लिये हैं।

"आई रिज़ाइन···मैं इस्तीफ़ा दे रहा हूं," अविजित चीखा और मेज़ पर रखी चाभियां उठाकर मार्शल के पैरों के पास फेंक दी।

"यू आर द मास्टर। जो जी में आए कीजिए···मैं जाता हूं···" लड़खड़ाते-से क़दम उसने आगे बढ़ाए और कुर्सी में ढह गया।

"तलाशी ले लो," मार्शल ने साथी हिन्दुस्तानी सब-इन्स्पेक्टर से कहा।

तभी पानी का गिलास हाथ में लिए चपरासी भीतर घुसा।

मार्शल ने उसके हाथ से गिलास ले लिया और अविजित के पास चला आया। गिलास उसके हाथ में थमाता हुआ नीचे झुका और क़रीब-क़रीब उसके कान में फुस-फुसाता हुआ बोला, "वेल डन, मिस्टर बंसल।"

अविजित कुछ कहे, इससे पहले ही वह कमरे से बाहर हो गया। भण्डारी वापस आया तो अविजित खूब खुश था।

"हिप्पोक्रेट को हिप्पोक्रेट ही हरा सकता है," उसने कहा था।

कागज भण्डारी ने जला डाले थे। बीस हजार रुपये दूर के अपने रिश्तेदार के

नाम बैंक में जमा कर दिये थे। रुपया या कागजात लेने कोई नहीं आया था। अविजित को काफ़ी अचरज हुआ था कि आगे तहकीकात क्यों नहीं हुई। कोई आया नहीं, इसका मतलब था कि चड्ढा के दल के सभी सदस्य गिरफ़्तार हो चुके थे।

तीन साल बाद १९४५ में जब चड्ढा मिला था तो उसने इस बात की पुष्टि की थी।

...कुछ दिनों तक वह सोचता रहा था आगे कार्रवाई क्यों नहीं हुई...भण्डा-फोड़ होने पर बात अविजित तक कैसे नहीं पहुंची...पर ज्यादा दिन नहीं...जल्दी ही राज़ खुल गया था...

जीत अविजित की नहीं, मिस्टर मार्शल की हुई थी।

दस दिन बाद, सादी पोशाक में मार्शल को अपने दफ़्तर में आया देख अविजित चौंक उठा था।

"फिर तलाशी लेनी है?" उसने पूछा।

"मैं यूनिफ़ॉर्म में नहीं हूं," मार्शल ने कहा।

"तो क्या हुआ, पुलिस में तो हैं।"

"वह भी नहीं हूं। इस्तीफ़ा दे चुका।"

"क्या कह रहे है, इन्स्पेक्टर मार्शल!"

"मिस्टर मार्शल।"

"पर क्यों?"

"मिस्टर बंसल, मेरा यक़ीन कीजिए, मैं कोई राज़ जानने नहीं आया। आपको अपने घर बुलाने आया हूं।"

"मुझे? क्यों?"

"मुझे बात करने के लिए आदमी चाहिए।"

"पर मैं क्यों?"

"आप हिन्दुस्तानी है।"

"तो...?"

"प्लीज़ मिस्टर बंसल," मार्शल ने कहा और जेब से निकाल कर एक तार उसे पकड़ा दिया।

अविजित ने पढ़ा—"...ईराक के मोर्चे पर बहादुरी से लड़ते हुए आपका बेटा शहीद हुआ..."

तीन दिन पहले की खबर है। तार आज ही पहुंचा है।

मार्शल के बेटे की मौत की खबर से उसका, अविजित का क्या ताल्लुक?

"मैं...आप ..." उसने कहा, "चलिए।"

सादा ढंग से सजी बैठक में एक ही नौजवान का चित्र कई जगह टंगा था। भोला

सा चेहरा। खूबसूरत। मार्शल से एकदम फ़र्क।

"मेरा बेटा···" मार्शल ने कहा।

"वही···"

"हां, एक ही बेटा था मेरा।"

"आपकी पत्नी···"

"नहीं है।"

दोनों चुपचाप नौजवान का चित्र देखते रहे।

"मिस्टर बंसल," सहसा मार्शल ने कहा, "आप मुझे बतला सकते हैं, मेरा बेटा ईराक के मोर्चे पर क्यों मरा?"

"मैं समझा नहीं," सकपका कर अविजित ने कहा।

"आप उसकी मौत को जायज़ मानते हैं?"

"लडाई के मैदान में, मिस्टर मार्शल, जायज-नाजायज का सवाल कहां उठता है?" अविजित ने व्यथित बाप से हमदर्दी जतलाने वाले स्वर में कहा।

"किसकी लडाई है यह?" मार्शल ने तडपकर कहा, "आपकी तो नही।"

"जी?" अविजित भौंचक था।

"क्यों इतने हज़ार हिन्दुस्तानी ब्रिटिश फ़ौज में भरती होकर जान गंवा रहे हैं? यह उनकी लडाई तो नही है।"

"फ़ासिज़्म के खिलाफ़ लड़ाई सब की लड़ाई है।" अविजित ने कहा पर उसे अपना वाक्य एकदम खोखला लगा।

"हिप्पोक्रेट्स! हिप्पोक्रेट्स! आप लोग इतने ढोंगी क्यों है?" मार्शल ने तल्खी के साथ कहा।

अविजित ने बेहद अपमानित महसूस किया। अपने को संयत रखने के लिए उसे याद करना पड़ा कि इस आदमी को अभी-अभी अपने बेटे की मौत की ख़बर मिली है।

"मैं आपका मतलब नहीं समझा," उसने कहा।

"जो आदमी अपने देश की आज़ादी के लिए लड़ने को तैयार न हो और दुनिया की स्वाधीनता के नाम पर लड़ता फिरे, उसे और क्या कहेंगे?"

अविजित को जवाब नहीं सूझा।

"ग़लत यह हुआ कि आप लोगों में राष्ट्रीय जाग्रति आने से पहले ही अंतर्राष्ट्रीय जाग्रति आ गई," मार्शल ने धीमे से कहा।

उसकी बात अविजित को भीतर तक चीरती चली गई। चुप रह कर वह उसे, झेलता रहा।

जब उनके बीच की चुप्पी भारी हो चली तो उसने कहा, "यह आप कह रहे हैं, मिस्टर मार्शल?"

मार्शल ने एक लम्बी सांस खींच कर सिर कुर्सी से टिका दिया। देर तक अपने में डूबा रहा, फिर बोला, "मेरा बेटा भी हिन्दुस्तानी था।"

भौंचक अविजित उसकी तरफ़ ताकता रह गया।

"१९१९ की बात है," मार्शल ने कहा, "हावड़ा में हिन्दू-मुस्लिम दंगा हुआ था···वहीं एक घर के अन्दर से टोकरी में जतन से छिपा कर रखा, यह छोटा-सा बच्चा मुझे मिला···बस्ती मुसलमानों की थी, बच्चा भी मुसलमानो का रहा होगा पर सुन्नत हुई नहीं थी, पक्का कुछ नही कहा जा सकता था···हिन्दू-मुस्लिम परिवारों में से कोई भी उसे पालने को तैयार नहीं था। मैंने सोचा मैं ही पाल लू। सोचा क्या बस मोह हो गया। साथ रख लिया। देश से दूर यहां अकेला पडा था। शादी की नही। बच्चा पलने लगा। पता नही कब मेरा बेटा बन गया। हम लोगों के यहां बहुत सुविधा है, मिस्टर बंसल। कोई भी इंसान क्रिश्चियन बन सकता है!"

"जब आपने गोद ले लिया तो वह हिन्दुस्तानी नही अंग्रेज़ ही हुआ," अविजित ने कहा।

"नही-नही, मिस्टर बंसल, गलत है यह, बिल्कुल ग़लत! वह इस देश में पैदा हुआ। हिन्दुस्तानी रहेगा वह। उसे···इस देश के लिए लड़ना चाहिए था।"

"आपने उसे बतलाया था कि वह हिन्दुस्तानी है?"

मार्शल चुप रहा, फिर गहरी निःश्वास छोड़ कर बोला, "इंसान की कमजोरी की कोई हद नही है, मिस्टर बंसल। सारी उम्र मैंने उसे नही बतलाया कि वह मेरा असली बेटा नही है पर···एक दिन जब वह मुझे बिना बताये फ़ौज में भरती हो गया तो मै बेहद डर गया। कायर की तरह उससे कह बैठा—तू तो हिन्दुस्तानी है, अंग्रेजों की लड़ाई लड़ने क्यों जा रहा है? ठीक नही हुआ। नहीं, यह तरीक़ा नही है किसी को रोकने का। उसने कहा—मै अकेला तो नही, कितने हज़ार हिन्दुस्तानी हैं जो यह लड़ाई लड़ रहे है। वह चला गया···मै···"

इस बार की चुप्पी अविजित नही तोड़ पाया।

"अगर वह क्रान्तिकारी होता और फांसी पर लटका दिया जाता तो कम-अज़-कम मैं उसकी शहादत पर खुश हो सकता था," मार्शल ने धीमे से कहा।

"आप···पर आप तो···"

"पुलिस में था। हां, था। पर जो मदद पुलिस में रहकर मैं क्रान्तिकारियो की कर सकता था, बाहर रह कर नही।"

अविजित के चेहरे पर गहरा अविश्वास तैर गया।

"मिस्टर बंसल," मार्शल ने कहा, "उस दिन मैंने आपके सेक्रेटरी को कागज़ निकालते देख लिया था।"

चेहरे को एकदम भावशून्य बनाए अविजित चुप बैठा रहा। कहीं यह जानकारी हासिल करने की साजिश तो नही।

"आप 'हां-ना' कुछ मत कहिए," मार्शल बोला, "मैं आपसे इकरार करवाना नहीं चाहता। वैसे आपको बतला रहा हूं कि अब मैं पुलिस में नहीं हूं और न हिन्दुस्तान में ही रहूंगा। मैं जा रहा हूं वापिस अपने देश···मेरी उम्र सिर्फ़ पचास है···वहाँ जाकर

फ़ौज में भरती हो जाऊंगा···दुआ कीजिए, मिस्टर बंसल, मैं अपने देश के लिए लड़ते-लड़ते मारा जाऊं।"

अविजित ने चुपचाप अपना हाथ आगे बढा दिया। मार्शल ने सरगर्मी से हाथ मिलाया और कहा, "आपके लिए क्या दुआ करूं, मिस्टर बंसल ?"

चाह कर भी अविजित देश की आज़ादी की बात मुह पर न ला पाया।

"लड़ाई जारी रखिएगा," मार्शल ने ही कहा, "ज़िन्दा रहा तो आज़ाद हिन्दुस्तान को देखने एक बार लौट कर ज़रूर आऊंगा···होगा न आज़ाद ?"

"हां," अविजित ने कहा पर लगा जज सिंघल के दामाद और बिड़ला ग्रुप के फ़रमाबरदार मैनेजर को यह कहने का कोई अधिकार नहीं है।

"खुदा हाफ़िज, मिस्टर बंसल," मार्शल ने कहा था और···वह चला आया था।

मार्शल हिन्दुस्तान छोड़कर चला गया था···

हारे हुए हताश सिपाही की तरह अविजित ने किताब लिख डाली थी और उसके चलते एक साल की जेल भी काट आया था। आजाद हिन्दुस्तान को देखने मार्शल लौट कर नही आया···अच्छा ही हुआ···

अविजित ने देखा, गाड़ी घर के दरवाज़े पर पहुंच गई···और अपने-आप रुक गई। मशीन है न। पर कनपटी की उसकी नस ! पिंजरे में बंद पक्षी-सी फड़फड़ाए चली जा रही है। सिर भट्टी-सा सुलग रहा है जैसे रेगिस्तान में मीलों लम्बा सफ़र तय करके लौटा हो···हा, लम्बा तो था ही सफ़र···मीलों नही, बरसों लम्बा। सफ़र मीलो मे हो तो बदन टूटता है, दिमाग नहीं फटता···पर वक़्त के रेगिस्तान पर यह अन्तहीन सफ़र·· एक दिशा से दूसरी दिशा में, हमेशा तपते सूरज के नीचे···एक चक्कर पूरा हुआ नही कि दूसरा शुरू। रेतीले भंवर में आदमी एक बार फंस जाए तो धसता चला जाता है, उबर कर बाहर आना नामुमकिन ही है···नामुमकिन ? नहीं-नही, इतनी निराशा नही···एक बार···कमर कस कर, पूरा ज़ोर लगा कर बाहर निकलना ही है···अभी···फौरन···

"प्रभा ! शुभा !" गाड़ी रुकते ही उसने ज़ोर से आवाज़ लगाई।

दोनों लड़कियां बाहर दौड़ आई।

"चलो मेरे साथ," उसने कहा, "टेनिस खेलने !"

"अभी ?" दोनों ने एक साथ पूछा।

उसके इस आकस्मिक जोश ने उन्हें हतप्रभ कर दिया था।

"फ़ौरन !" उसने उसी जोशीली आवाज़ में कहा, "पूरी शाम बाक़ी है, दो-चार सेट हो जाएंगे।"

"पिताजी, मैं हमेशा प्रभा से हार जाती हूँ," रास्ते में शुभा ने कहा।

"अब नही हारोगी। मैं सिखाऊंगा तुम्हें टेनिस खेलना। पता है मैं इलाहाबाद

यूनिवर्सिटी का टेनिस चेम्पियन था···ग्राज देखते हैं कौन हमें हराता है !"

इधर-उधर भटकते संतप्त मन को क़ाबू में रखने का एक ही उपाय है, शरीर को थका डालो, थकाए रखो, एक पल का भी विश्राम मत करने दो। काम हो या खेल, बस जुते रहो···हर पल···हर क्षण।

९

दफ़्तर जाने से पहले बैठक मे सोफ़े पर बैठा अविजित ग्राखिरी सिगरेट पी रहा था कि स्वर्णा ग्राकर दरवाज़े पर खड़ी हो गई।

"साहब," उसने धीमे स्वर में कहा।

ग्रविजित डर गया।

स्वर्णा धीरे बोलती है तो डर लगता है। ग्रादमी बहस-मुबाहसे के घेरे से बाहर हो तो लगेगा ही।

"क्या है ?" अविजित ने कहा।

"ग्रगला माह मे हम जाएगा।"

"कहां ?"

"कलकत्ता। उसका चिट्ठी ग्राया है। वह कलकत्ता मे डेरी खोल लिया है।"

"पहले देख तो लो, चलती है या नहीं।"

"चलेगा साहब," स्वर्णा ने कहा, "चलना ही होगा।"

स्वर्णा चली गई तो कैसे होगा ? क्या कहकर इसे रोकना होगा, समझ में नहीं ग्रा रहा था।

"तुम्हें यहां कोई तक़लीफ़ है ?" उसने पूछा।

वह जानता है, यह बिल्कुल बेतुका सवाल है, फिर भी पूछ रहा है। पूछ सकता क्योंकि वह कुर्सी पर बैठा है ग्रौर स्वर्णा उसके सामने खड़ी है।

"नहीं, साहब," उसने कहा, "तकलीफ़ क्या होगा।"

"ग्रगर तुम चाहो·· किसी चीज की कमी हो तो···" कोशिश करके भी ग्रविजित तनख्वाह बढ़ाने की बात ज़बान पर न ला सका।

"बच्चा लोग तो है···फिर कमी क्या होगा," स्वर्णा ने कहा, "बच्चा लोग को

छोड़ेगा तो छाती फट जाएगा हमारा। आप जानता तो है हम किधर भी और नौकरी नहीं कर सकता···सुधांशु···खोखी···ये ही तो···किसी बच्चा को रोते सुनेगा तो हमारा दिल भी रोयेगा···अरे कही ये सुधांशु तो नहीं है···"

"फिर···"

"वह लिखा है, गाय-भैंस ले लिया।"

"तुम नहीं गई तो वह लौट आएगा," अविजित ने कहा।

"लौटेगा तो···" स्वर्णा की आवाज़ डूब गई। जैसे कोई सपना देख रही हो, ऐसे देर तक चुपचाप खड़ी रही, फिर जो आवाज़ उभरी उसमें उमंग और सच्चाई की खनक थी।

"दो ठो गाय है, तीन ठो भैंस···एकटा साथी लिया तो है पर वो क्या करेगा। दोनों तो खूट आदमी है···औरत रहेगा तब न···प्यार-पुचकार कर थन हाथ मे लेगा तभी न···अच्छा, उज्ज्वल दूध का मोटा धार देख कर मन कैसा तो नाच उठता है, नही···?"

"अब कहां उस झंझट में पड़ोगी। नई जगह···नया काम···मवेशी पालना कोई हंसी-खेल नही है।" अविजित ने कहा।

यह ब्लैकमेल है, और कुछ नही। किसी की भावनाओं का यूँ फायदा उठाना··· मनोबल ऐसे ही गिराया जाता है···पर वह क्या करे···आदमी का स्वार्थ···

उसने देखा, प्रभा आकर स्वर्णा के पीछे खड़ी हो गई है।

"झंझट !" स्वर्णा ने कहा, "झंझट तो ज़रूर होगा, साहब। बारह बरस हो गए हम लोग अपना गाव छोड़ दिया। ज़मीन···ढोर-डंगर···सब बिसरा दिया···हां, कितना तो झझट था ! अच्छा साहब, आप लोग तो कहता है, देश आज़ाद हो गया। अंग्रेज़ लोग सब इधर से चला गया पर हमारा ज़मीन तो वापिस नहीं मिला। अंग्रेज़ लोग उसको भी तो छोड़ा होगा न ? मिलेगा नही, हम जानता है। हमीं लोग तो छोड़-कर भाग आया···होगा कोई दूसरा जो उधर खेती करता होगा। करने दो। ज़मीन नहीं मिलेगा। पर मवेशी जो मिला है तो पोसेगा ज़रूर ! दो ठो गाय है···तीन ठो भैंस···" स्वर्णा का स्वर आकाश में उन्मुक्त उड़ते पक्षी-सा बह चला।

अविजित के अन्तस्तल को उसने छू लिया। वह शर्मिंदा हो आया।

सहसा अपनी बाहें स्वर्णा के गले में डालकर प्रभा बोल उठी, "जरूर पोसना ज़रूर !"

स्वर्णा ने चौक कर उसकी तरफ़ देखा।

"क्या करता है !" संकुचित होकर उसने कहा।

"अपना काम शुरू किया है तो कलकत्ते ज़रूर जाना।" प्रभा उसके गले में झूल गई, फिर अविजित की तरफ़ ताक कर दृढ़ स्वर में बोली, "तू नही गई तो तेरी जगह मैं चली जाऊंगी।"

दंग रह कर अविजित ने उसे देखा।

ठीक कहा था काजल ने···लड़की तो बिल्कुल उस पर गई है। सच, जैसे प्रभा नहीं, काजल सामने खड़ी हो।

"प्रभा···?" वह फुसफुसाया।

प्रभा की आखें झुकी नही।

"आज़ादी में झंझट तो होगा ही," उसने कहा, "इसीलिए क्या···"

"नही," अविजित बीच ही में बोल पड़ा, "हमारा रोकना जायज़ नहीं है। ठीक है, तुम लोग जो तय करो, मुझे बतला देना।"

कह कर वह कमरे से बाहर आ गया।

सच, गाड़ी चलाते हुए उसने सोचा, मैं सब कुछ अपने ऊपर क्यो ले लेता हूं। इन लोगों को तय करने दो। दफ़्तर का काम निवटा कर आज शाम मैं रंजना के पास जाऊंगा···आज, जरूर···ज़रूर!

दफ़्तर में सारा दिन काफी गहमागहमी रही।

सिंघानिया जी का फ़ोन आया।

मुकर्जी बाबू से मुलाकात के बाद काफ़ी भन्नाये हुए थे।

"अजीब आदमी है। हाथ ही नही रखने देता। मैंने कितनी तरह से भेद लेना चाहा पर वहां कोई असर नही," उन्होने कहा।

"पर मेरी सूचना तो है कि उनके यहां रक़म चलती है," अविजित ने कहा।

सिंघानिया जी एकदम गरम हो गए।

"ग़लत सूचना है बंसल! मेरी आंखें कभी धोखा नही खाती। मुझे तो लगता है इस बार तुमने कोई बहुत ही कमज़ोर सोर्स पकड़ लिया है।"

तो क्या काजल का इल्ज़ाम ग़लत था? आपसी विद्वेष होने पर ग़लत इल्ज़ाम लगाना क्या मुश्किल है? पर काजल···आंखें तो उसकी भी आसानी से धोखा नहीं खातीं पर है वह इतनी आदर्शवादी कि छोटा-सा ग़लत क़दम भी उसका विश्वास खोने के लिए काफ़ी है। हो सकता है मुकर्जी बाबू का कसूर सिर्फ़ यह रहा हो कि मौक़े का फ़ायदा उठा कर जेल से जल्दी छूट गए और उसी सूझ-बूझ के सहारे मंत्री बन गए।

"मुझे लगता है," सिंघानिया जी कहते जा रहे थे, "या तो वाक़ई उस आदमी के खयालात ऊंचे क़िस्म के है या खेल वह गहरा खेलता है।"

"जी!"

"मेरा तो खयाल है लाइसेंस किसी कांग्रेसी को मिलेगा। क्या विडम्बना है। इलेक्शन के वक़्त पार्टी को पैसा दे हम लोग और मलाई लूट कर ले जाए कोई फटेहाल खद्दरधारी।"

"जी।"

"अरे भई बंसल," सहसा उनकी आवाज़ में सरगर्मी आ गई, "तुम भी तो

'फ़ीडम फ़ाइटर' हो। जेल काट आए थे न उन दिनों ? बस, फिर क्या है, तुम मिलो न उनसे। देखो, यह काम होना ज़रूर चाहिए। मैं कहता हूं, भाई, ज़रूरत पड़ने पर गांधी टोपी लगा लेने में कोई हर्ज़ नही है···क्यों, ठीक है न ?"

"जी," कह कर अविजित ने फ़ोन रख दिया पर उसके बदन में आग लग गई।

समझते क्या हैं मिस्टर सिंघानिया ! एक लाइसेंस लेने की खातिर अविजित बहुरूपिये का स्वांग रचेगा ? बढ़िया सिला सूट उतार कर खद्दर का धोती-कुर्ता पहन, गांधी टोपी सिर पर लगा कर मुकर्जी बाबू के पास जाएगा और अपनी जेल यात्रा का बखान करेगा !

हिम्मत कैसे हुई उनकी उससे यह कहने की !

और हिम्मत क्यों नही हुई अविजित की कि उसी वक़्त उनके मुह पर तीते शब्द उछाल कर इन्कार कर दे ?

इसमें हिम्मत की क्या बात है। उस समय शालीनता बरत गया वरना··· इसका यह मतलब नहीं है कि वह सचमुच अपने को ज़लील होने देगा। इस्तीफ़े का क्या है, किसी वक़्त भी दिया जा सकता है।

"भण्डारी !" उसने आवाज़ लगाई, "जितनी पेंडिग फ़ाइलें हैं, सब निकाल डालो, आज ही। इस हफ्ते के अन्दर पिछला सारा काम निबट जाना चाहिए, समझे।"

अविजित काम में डूब गया। दुपहर को खाना खाने घर नही गया, वहीं सामने के रेस्तरां से कुछ मंगाकर खा लिया।

तीसरे पहर सरण आ धमका। वही इलाहाबाद यूनिवर्सिटी और जेल का साथी, सरण। आजकल मेरठ में है और छठे-छमासे दिल्ली चला आता है।

खादी का कुर्ता-पाजामा, सिर पर गांधी टोपी, चेहरे पर अपार संतोष !

आज उसे देखकर अविजित खीज से भर उठा।

"यार, तू ढंग के कपड़े क्यों नही पहनता ?" उसके मुह से निकला।

"क्या मतलब ?"

"अंग्रेज़ गए, स्वराज्य आ चुका, फिर गांधी टोपी लगाने में क्या तुक है भला ?"

"क्यों,स भी लगाते है।"

"सभी नेता लगाते हैं। तू तो नेता नहीं है।"

"नेता गांधीजी थे, हम टोपी लगाते हैं," सरण ने मासूमियत से कहा।

अविजित बेसाख्ता हंस पड़ा।

"इसमें हंसने की क्या बात है," सरण ने बुरा मानते हुए कहा, "एक वक़्त था जब तू भी खादी पहनता था और टोपी लगाता था, याद नही ?"

"हां, तब ये विरोध के प्रतीक थे। अब नहीं हैं। आजकल, जब हम खुद मिलों में कपड़ा बना रहे हैं, पिकेटिंग करके विदेशी माल जला नहीं रहे तो इस सबका मक़सद ?"

"हम तो भइया, गांधीजी को मानते है। गांधीजी ने कहा था, स्वदेशी के बिना

स्वतंत्रता किसी काम की नहीं है। खादी बुनना छोड़ दोगे तो स्वराज्य भी नहीं रहेगा।"

"और जो ये इतनी बड़ी-बड़ी मिलें खोली जा रही है, उनका बुना कपड़ा कौन पहनेगा ?"

"तुम पहनो।"

"यानी मेरे पहनने में हर्ज नहीं है," अविजित फिर हंस दिया।

सरण नाराज़ हो गया।

"तुम लोग सदा मुझ पर हंसते रहे पर बात मेरी ही ठीक निकली, हर बार। तू ही बतला, जिसने देश की सेवा की होगी, वह चाहेगा नहीं कि लोग जानें वह देश-सेवक है। सूट पहनने पर कौन विश्वास करेगा ?"

"अगर कोई देश-सेवा किये वगैर गांधी टोपी लगा कर खादी पहन ले, तो ?"

"क्यों पहनेगा भला ? हां, यह हो सकता है कि किसी कारण पहले दिनों में देश का काम न कर पाया हो और आगे करने का इरादा रखता हो···बस वही तो चाहिये।"

सरण से बहस बेकार होती है, अविजित जानता है। पर उसकी बातो मे उसे मजा आ रहा था।

"ऐसा कर," उसने कहा, "इस बार तू इलेक्शन में खड़ा हो जा।"

"इलेक्शन में खड़ा होना होता तो बावन में ही न हो जाता। अपने पन्तजी ने कितना कहा, विधान सभा में आ जाओ, मंत्री पद सम्भालो पर हमने मना कर दिया। अपने सीधे-सादे आदमी ठहरे, सरकार चलाना बस की बात नही है।"

"तब तो तेरा टोपी पहनना बेकार ही रहा !"

"अपना काम तो सेवा करना है, भइया," सरण कहता गया, "आज़ादी मिलने पर जो सीमेंट एजेंसी सरकार ने हमें दी थी, वह भी हमने छोटे भाई को दे डाली। पेट्रोल पम्प का लाइसेंस मिला तो लड़का कहने लगा, मै चला लूगा। मैंने कहा, ठीक है भइया, चला लो, अपने बस का यह रोग है नही। हा, सरकार ने गाधी संस्थान चलाने के लिये नियुक्त कर दिया तो रास आ गया अपने को। छह बरस हो गये, आनन्द ही आनन्द है।

"सीमेंट की एजेंसी, पेट्रोल पम्प का लाइसेंस···और कुछ नही दिया सरकार ने ?" अविजित ने छेड़ा।

"हा," विना हिचक सरण बोला, "स्टील का कोटा मिला था। पत्नी ने कहा, बच्चे बड़े हो गए, वक़्त काटे नही कटता, कहो तो स्टील के बर्तनो की छोटी-सी फ़ैक्टरी लगा लू। मैने कहा, लगा लो देवी, हम तो स्त्री-पुरुष को समकक्ष मानते है।"

अविजित निरुत्तर हो गया।

आगे केवल यही पूछ सका, "चाय पिओगे ?"

"पी लूंगा," सरण ने तटस्थ भाव से कहा, "एक आध कप ले लेता हूं कभी-

कभाक।"

इत्मीनान से चाय पीकर सरण ने झोला सम्भाला और दरवाजे की तरफ़ बढ गया। अविजित ने फ़रटीलाइज़र फ़ैक्ट्री वाली फ़ाइल आगे खींच ली।

दरवाज़े पर पहुंच कर सहसा सरण पलटा और बोला, "अपने साथ एक चड्ढा हुआ करता था, याद है ?"

"हा-हां," अविजित ने तत्परता से कहा।

"बेचारा चल बसा।"

"क्या !" अविजित उठ कर खड़ा हो गया, "कब ?"

"आज सुबह। किरया करके ही तो चला था दिल्ली के लिए।"

"आज ! सुबह ! पहले क्यों, नही, बतलाया ?" अविजित ने उग्र स्वर में कहा।

"क्यों, पहले बतलाने से तू क्या करता ?"

"इतनी देर यहां बैठा हंसी-ठट्ठा करता रहा, उसके मरने की बात याद नही आई तुझे !" अविजित का स्वर फट गया।

"हंसी ठट्ठा मैंने तो नहीं किया।"

हां, हंसा सिर्फ़ अविजित था।

वह वापिस कुर्सी में गिर पड़ा।

"क्या हुआ था चड्ढा को ?" सूखे गले से पूछा।

"बेचारा बड़ी तंगहाली में मरा। मैंने कितना कहा, चलो सरकारी अस्पताल में भरती करवा दूं पर वह माना ही नही···"

"हुआ क्या था ?" अविजित ने बाधा दी।

"एक गुर्दा तो तभी खराब हो गया था जब १९४२ में जेल गया था···इलाज हुआ नहीं। बस, जब दूसरा गुर्दा भी जवाब दे गया···"

"वह मेरठ में ही था ?"

"हां।"

"तूने कभी उसके बारे में बतलाया नहीं।"

"तूने पूछा कब ?"

"मुझे पता नही था वह मेरठ में है।"

"पता मुझे भी नही था। लगाने से चल गया। बाद में चाहे गलत रास्ते पर पड़ गया हो, एक समय में था तो अपना ही साथी।"

"ग़लत रास्ते पर वह कब पड़ा ?"

"१९४२ में छिप कर काम नहीं कर रहा था ?"

"तो ?"

"गान्धीजी ने छिप कर काम करने को ग़लत बतलाया था। उन्होंने सभी भूमिगत विद्रोहियो को सलाह दी थी कि वे सरकार के आगे समर्पण कर दें।"

"गान्धीजी जानते भी थे उनके साथ जेलों में क्या सुलूक होता है ? उनके खुद

के साथ कभी कोई जुल्म हुआ नहीं, इसी से···"

"नहीं हुआ क्योंकि अहिंसा से उत्पन्न उनकी नैतिक शक्ति के आगे ब्रिटिश सरकार भी नतमस्तक थी।"

"तुम जानते हो चड्ढा के साथ फतेहगढ़ जेल में क्या हुआ था ?"

"जानता क्यों नहीं ? मैं तो खुद तुझे बतला रहा था···"

"फिर भी तुमने उसे बिला इलाज मर जाने दिया।"

"मैंने ? मैंने तो भइया, उसे बचाने की बहुत कोशिश की। कितनी बार कहा, सरकार के नाम अर्ज़ी दे दो; आखिर बत्तीस में दो साल सविनय आज्ञा-भंग-आंदोलन के अंतर्गत जेल काटी है, इलाज का बन्दोबस्त जरूर हो जाएगा। मैं खुद सिफ़ारिश कर दूंगा, पर वह माना ही नहीं। अब मैं···"

"शटअप !" तड़प कर अविजित ने कहा, "और चले जाओ यहां से !"

"ठीक," सरण ने कहा, "मुझ पर क्यों बिगड़ रहे हो। मुझसे जो हुआ मैंने कर दिया। तुम कहो न, तुमने क्या किया उसके लिए ?"

अविजित फिर निरुत्तर था।

सरण कमरे से बाहर चला गया।

चड्ढा बिला इलाज मर गया और उसका बीस हज़ार रुपया अब तक अविजित के पास पड़ा है।

जब-जब चड्ढा मिला, रुपया उसे देना चाहा पर उसने लिया ही नहीं।

पहली बार मिला था १९४५ में, जेल से छूटने पर। अविजित ने रुपया देना चाहा तो बोला, "परुया मेरा नही, दल का था और दल अब तितर-बितर हो चुका।"

"तो क्या करें रुपये का ?" अविजित ने पूछा था।

"रख अभी। देखें आगे क्या होता है।"

दुबारा चड्ढा मिला था पचास में, आज़ादी मिलने के तीन बरस बाद।

"तेरा रुपया···" अविजित ने फिर कहा था।

"मेरा नही, दल का।"

"हां, पर अब तो दल के लोग भूमिगत नहीं है। रुपया आपस में बाट लो।"

"किस हिसाब से ? रुपया हम लोगों ने अपने लिए नही, दल के काम के लिए जमा किया था।"

"फिर यू ही पड़ा रहेगा रुपया ? कुछ तो करना होगा।"

"क्यों ?"

"क्या मतलब ? रुपया ऐसे ही बेकार पड़ा रहेगा ?"

"आदमी बेकार पड़ा रह सकता है, रुपया नही ?"

"पर···मुझे तो उबार इस ज़िम्मेवारी से। क्या करूँ उसका, बतला ?"

"किसी संस्था को दान कर दे।"

"किसे ?"

"मै क्या जानू ।"

दो क्षण चुप रह कर चड्ढा तल्खी से कह उठा था, "कांग्रेस के इलेक्शन फ़न्ड में दे देना।"

उसके बाद चड्ढा से मिलना नही हुआ था।

रुपया अभी भी अविजित के पास है। सूद मिला कर तीस हज़ार हो गया होगा। दान उसने नही किया, सोचता रहा, शायद कभी जरूरत हो और चड्ढा मागने आए···यही बात थी और कुछ नही।

कुर्सी में बैठे रहना नामुमकिन हो गया···हज़ारों कांटे उग आए उसमें···शरीर के रोमछिद्रों में गड़ने लगे।

वह उठा और फ़र्श को रौंदने लगा।

दस क़दम आगे···दस क़दम पीछे···फिर आगे···उठ कर भागेगा कहां··· कांटे कुर्सी में नहीं, उसके शरीर मे उग रहे है।

कितने दिन रुपया बेकार पड़ा रहा, बैंक में। फिर···अविजित मकान बनवा रहा था···रुपये की ज़रूरत थी···वह रुपया उसने मकान में लगवा लिया था, सिर्फ़ उधार के तौर पर···साल-दो साल के अन्दर सारा रुपया लौट आया था, बैंक में। चड्ढा लेने आता तो फ़ौरन सूद-समेत वह उसे लौटा देता या जिस संस्था को वह कहता, दान कर देता। उसने ठीक से कभी कुछ कहा ही नहीं, इसमें मेरा क्या क़सूर है। मैं जानता नहीं था, वह मेरठ में है···बिल्कुल नहीं जानता था वह तंगी में है, बीमार है, उसे इलाज की जरूरत है; वरना यह कैसे हो सकता था मैं उसके पास गया न होता, उसका इलाज न कराता···मेरा सबसे प्यारा दोस्त···

अपने को समझाते-समझाते अविजित का स्वर क्षीण पड़ता गया···

'जब पिछली बार चड्ढा मिला था तो पूछा था, कहां रहता है ?' कोई बोल उठा।

'पूछा था, बिल्कुल पूछा था। तब वह इलाहाबाद में किसी पत्रिका का सम्पादन कर रहा था। यही जानने को तो पूछा था मैंने कि उसके पास आमदनी का ज़रिया क्या है ?'

'पत्रिका को लिखते तो पता न चल जाता वह कहां गया।'

'हां। पर···मैने दो-तीन ख़त उसे लिखे थे, जवाब नही मिला। मैने सोचा वह ताल्लुकात रखना नही चाहता···मेरा मतलब किसी से जबरदस्ती तो दोस्ती नहीं रखी जा सकती···'

'पत्रिका में किसी दूसरे सम्पादक का नाम छपा देखा तो क्या सोचा, चड्ढा

मर गया।'

'नही-नही। मैंने पत्रिका देखी ही नही। सच, मुझे पता ही नही चला कब चड्ढा इलाहाबाद और नौकरी छोड कर चला गया और···'

'और पता करने की ज़रूरत महसूस नही की?"

'मैं इतना व्यस्त रहा···घर···श्यामा···दफ़्तर···कारोबार···'

'पैसा, भाई साहब, पैसा! पैसा कमाने का सिर्फ एक तरीका है कि आदमी सिर्फ़ पैसा कमाए।"

'मैंने नायजाज़ ढंग से पैसा नहीं कमाया, अनित्य। परिवार का पालन-पोषण करने के लिए···"

'हर तरीका जायज़ है।'

'यह मैंने नहीं कहा।'

'नहीं, मैंने कहा है। पूजीवादी समाज की सबसे बड़ी खूबी यही है—नाजा-यज़ सिर्फ आदमी होता है, पैसा नहीं।'

"अनित्य!"

'सिर्फ़ बात है। आप परेशान क्यों हो रहे हैं?'

चड्ढा का रुपया जो मेरे पास पड़ा हुआ है। बीस हज़ार··· नहीं' सूद मिला कर तीस···

क्या करूं उसका? काजल से पूछू? हां, काजल को चड्ढा की मौत की खबर भी देनी चाहिए।

काजल ने भी तो कभी चड्ढा का जिक्र नहीं किया···खबर न भी दू तो···मैं काजल से मिलना नही चाहता···

'क्यों? ज़मीर पर भारी पड़ता है?'

'शटअप!'

मैंने सोचा था, आज रंजना के पास जाऊंगा···हां, जाऊंगा, जरूर जाऊंगा। काजल को फ़ोन पर भी खबर की जा सकती है। या पत्र दे कर। कल। चड्ढा मेरा दोस्त था, काजल का नहीं। हमदर्दी की जरूरत मुझे है, उसे नही। हमदर्दी पाने का हक हर आदमी को है। मुझे क्यों नही?

तो जाता हूं···हां, जा रहा हूं···अभी···फ़ौरन···

'भण्डारी, मैं जा रहा हूं,' अविजित ने आवाज़ लगाई और जवाब का इन्त-जार किए बिना कमरे से बाहर निकल गया।

क़रीब-क़रीब दौड़ कर वह पार्किग लॉट में पहुंचा और झटके से गाड़ी स्टार्ट कर दी।

'रंजना के घर—दाएं,' वह बुदबुदाया और एक्स्लरेटर पर पांव रख दिया। जल्दी···जल्दी···पांव का दबाव बढा···गाड़ी सड़क पर दौड़ चली···फिर···खुद-ब खुद उसकी रफ़्तार धीमी होती चली गई···

उसका मन रंजना के घर की तरफ़ दौड़ता रहा और गाड़ी काजल के कालेज की तरफ़ सरकती रही···

काजल के कमरे के दरवाजे पर ताला पड़ा था।

पूछताछ करने पर पता चला, दो दिन से छुट्टी पर हैं, शायद मेरठ गई हैं।

मेरठ? चड्ढा के पास।

तो काजल ने भी मुझे नहीं बतलाया। वह तो जानती है, चड्ढा मेरा कितना प्यारा दोस्त है···था···फिर भी बतलाना ज़रूरी नहीं समझा!

अविजित ने गाड़ी लौटा ली।

बार-बार मैं काजल के पास क्यों जाता हूं? उसने हमेशा मुझे छोटा करने की कोशिश की है। फिर मैं···कुछ लोगों को कीलों पर सोने का शौक़ होता है। होगा··· मुझे नहीं है···

अविजित ने देखा, उसके सामने बस-स्टॉप है। एक बस आकर रुकी है और अनेक स्त्री-पुरुष बाहर फेंक कर फिर चल पड़ी है। अविजित की गाड़ी के बराबर से धूल उड़ाती निकल गई। एक औरत···अविजित ने गाड़ी की रफ़्तार धीमी कर दी। वह औरत···काले किनारे की सफ़ेद सूती बंगाली धोती पहने···अभी-अभी जो बस में से उतरी है···कहीं काजल तो नही है? स्थिर गति से आगे बढ़ रही है। हां, काजल ही है।

होने दो, मै नही रुकूगा। जाने दो उसे। मै अपने रास्ते जा रहा हूं···उसके लिए क्यों रुकूं?

गाड़ी की रफ़्तार कम हुई और वह रेंगती हुई काजल के बराबर में आ रुकी।

काजल ने सिर उठाया।

"अरे, अविजित!" उसने कहा और सहज भाव से गाड़ी का अगला दरवाज़ा खोल कर अन्दर बैठ गई।

अविजित ने गाड़ी कालेज की तरफ़ मोड़ ली।

"कालेज गए थे?" काजल ने पूछा।

"चड्ढा की बीमारी की खबर मुझे देना तुम लोगों ने ज़रूरी नही समझा?" अविजित ने तीखेपन से पूछा।

"वह···नही रहे," काजल ने चुपके से कहा।

"जानता हूं। आज सरण आ कर बतला गया। पर पहले मुझसे क्यों नही कहा?"

"मुझे खुद ही खबर इतनी देर से मिली·· दो महीने तो कुल हुए हैं दिल्ली आए···मैं जानती भी नही थी कि चड्ढा मेरठ में है। परसों अचानक एक पुराने साथी आ पहुंचे, कहने लगे—चड्ढा है न···बचने की कोई उम्मीद नही है। तभी मै चल पड़ी।"

"मुझे साथ ले लेनीं तो···"

"उस वक़्त मुझे तुम्हारा खयाल ही नहीं आया।"

अविजित को ठेस लगी। बोला, "कौन आया था ? इलाहाबाद का कोई साथी।"

"नहीं," काजल ने कहा, "है एक। तुम नहीं जानोगे।"

अविजित चुप रह गया।

"आधा रास्ता तय करने कर तुम्हारा खयाल आया भी तो यही कि चड्ढा से तुम्हारी इतनी दोस्ती थी," काजल ने ठहर कर कहा, "तुम जरूरत मेरठ में होगे। वहां नहीं देखा तो···'

"समझ जाना चाहिए था कि मुझे इत्तिला नहीं है। तब क्या तुम्हें मुझे खबर नही भिजवानी चाहिए थी ?"

"तुम्हें नहीं देखा तो इतना समझा ज़रूर कि तुम नही हो पर और तुम्हारे बारे में सोचा नही," काजल ने अजीब-सी आवाज़ में कहा।

अविजित उसकी तरफ़ देखता रह गया।

"ओ मां ! कितनी भयानक मृत्यु थी !" काजल का स्वर थरथरा गया।

कालेज का फाटक आ गया।

गाड़ी रुक गई।

काजल ने दरवाजा खोल कर उतरने का उपक्रम नही किया। अवाक् बैठी सामने ताकती रही।

अविजित भी मौन बैठा रहा।

"तुम लोगों को उसने पहचाना ?" काफ़ी देरकी चुप्पी के बाद अविजित ने पूछा।

"नही।"

"इलाज बिल्कुल नहीं हुआ···?"

"नहीं।"

"मुझे पता नही था वह मेरठ में है।"

"···"

"सरण कह रहा था···आज ही कहा···दुपहर बाद···वह बहुत तंगहाली में मरा···"

"तंगहाली में मरना क्या मुश्किल है ? दिक़्क़त जीने में होती है," काजल ने भिचे कंठ से कहा।

अविजित सह नही पाया। रो न पाने की लाचारी में क्रोध से फट पडा, "यह क्या मेरा क़सूर है ? तुम मुझसे इस तरह की जहरीली बातें क्यों करती हो ? चड्ढा को तंगी में मैंने रखा ! मैं चाहता था वह मर जाए ! क्यों, यही कहना चाहती हो न तुम ?"

भौंचक काजल कुछ देर उसकी तरफ़ ताकती रही फिर धीरे से बोली, "भीतर

ज़हर होता है तो बाहर के जहर को भी अन्दर खींच लेता है। मेरे कहने-न-कहने से…"

"काजल," अविजित का स्वर दयनीय हो उठा, "मैं बहुत परेशान हूँ। तुम्हारे पास मदद के लिए आया हूं, ज़हर निगलने के लिए नहीं।"

"क्या हुआ ?"

अविजित देर तक चुप बना रहा, फिर बोला," चड्ढा ने दल का बीस हजार रुपया मेरे पास रखवाया था। चड्ढा जेल से लौटा तो रुपया उसे लौटाना चाहा पर उसने लिया नहीं।"

"और वह…इस तरह…" काजल लम्बी सांस खींचकर चुप हो गई।

"मैंने बहुत इसरार किया पर वह नहीं माना।"

"अच्छा।"

"मेरा यक़ीन नहीं है तुम्हें ?" अविजित का स्वर फिर उग्र हो गया।

"न भी हो तो क्या," काजल ने कहा, "उनका तो है।"

"तुम मुझसे इतनी नफ़रत क्यों करती हो ?"

"नहीं तो।"

"ज़रूर करती हो ! ठीक है, करो। फिर भी मैं तुम्हीं से पूछता हूं, उस रुपये का मैं क्या करूं ?"

"उन्होंने नहीं बतलाया ?"

"कहा था, किसी संस्था को दे देना। किस संस्था को देना होगा, उसने नहीं बतलाया। मैं तुमसे पूछता हूं, किसे देना होगा ?"

"रुपया तो क्रान्तिकारी दल का था न ?"

"हां।"

"जिस काम के लिए रुपया जमा किया गया था उसी के लिए इस्तेमाल भी होना चाहिए।"

"हां। यही मैं चाहता हूँ।"

काजल की आंखें भक से जल उठीं।

"यही चाहते हो ?" उसने कहा।

अविजित को लगा ऊँची चट्टान पर खड़ी काजल ठाठे मारते समुद्र में छलांग लगाने वाली है।

"काजल !" आतंकित स्वर में उसने पुकारा।

काजल चट्टान से धरती पर उतर आई।

"अभी रखो," उसने कहा, "ज़रूरत होने पर तुमसे मांग लूंगी।"

"कब ? "

"समय आने पर।" गाड़ी का दरवाज़ा खोल कर काजल नीचे उतर गई।

"मैं चली जाऊँगी," उसने कहा, "तुम लौट जाओ अब।"

रेंगती हुई गाड़ी फिर सड़क पर घिसट आई। घर की तरफ़। हर चीज़ की

अपनी एक गति होती है और अपनी ही एक धुरी।

धुरी से टूट पाना इतना आसान नही; चाहने-भर से कुछ नही होता।

१०

घर के दरवाज़े पर कोई खड़ा था।

"अनित्य !" अविजित ने आर्त्त कण्ठ से पुकारा।

"क्या हुआ, भाई साहब," अनित्य ने कहा, "आप तो मुझे देखकर ऐसे चौं उठे जैसे कोई भूत देख लिया हो।"

"कब आए ?"

"जब आपने देखा।"

"तुम्हारे साथ कोई और भी है ?" अविजित ने चालाकी से पूछा।

"हां, एक दोस्त हैं, शुक्लजी। बात यह है···" अनित्य ने कहा।

"तो तुम सचमुच हो !" उसके मुह से निकला।

"जी ?" अनित्य ने अचरज से उसकी तरफ़ देखा, "क्या हुआ, भाई साहब ? उसने पूछा।

"अनित्य, चड्ढा मर गया !" अविजित ने कहा।

"ओह, कब ?"

"आज।"

तब तक प्रभा और शुभा भी बाहर आ गई थीं।

"क्या कह रहे हैं, पिताजी। चड्ढा अंकल क्या सचमुच···" प्रभा ने पूछा।

"हां।"

आप वही गए थे ?"

"नहीं, वह तो मेरठ में था। मुझे बाद में पता चला···अभी कुछ देर पहले·· दाहकर्म के बाद।"

कुछ देर सब चुप रहे फिर प्रभा ने कहा, "यक़ीन नही होता···कितने जिन्दादि आदमी थे···पिछली बार दिल्ली आए तो कितनी मज़ेदार बातें सुना रहे थे···"

"जब वे अण्डरग्राउण्ड थे तब की बातें न ? कितना हंसाया हम लोगो को··

क्या हुआ था उन्हें ? बीमार थे ?" शुभा ने पूछा।

"हां," अविजित ने लम्बी सांस खींचकर कहा, " बारह साल से।"

"बारह साल से ?"

"अपनी बीमारी के बारे में उसने तुम लोगों से कुछ कहा था ?" अविजित ने पूछा।

"नहीं तो," शुभा ने कहा, "बीमार तो···मैं सोच भी नहीं सकती वे बीमार भी हो सकते थे···"

"क्या बीमारी थी ?" प्रभा ने गंभीर होकर पूछा।

"अरे बीमार तो हर आदमी होता है," अनित्य ने झपट कर जवाब दे डाला, "मौत खुद एक बीमारी है। तुम बतलाओ, चड्ढा अंकल क्या बातें बतला रहे थे ?"

"वही अंडरग्राउंड रहने के क़िस्से। एक वह···" प्रभा ने शुरू किया।

"उनकी टांग कैसे टूटी, बतलाया तो हम लोग हंस-हंस कर पागल ही हो गए," शुभा ने कहा।

"कैसे टूटी थी ?" अनित्य ने पूछा।

"उन दिनों वे क्रिश्चियन पादरी का भेष बना कर रह रहे थे।" प्रभा ने बतलाया, "एक दिन हुआ यह कि पास वाले चर्च में शादी थी, अचानक वहां के पादरी को खसरा निकल आई। दूल्हा-दुल्हिन तैयार और पादरी ग़ायब ! वह चीखो-पुकार मची कि बस। तभी किसी को चड्ढा अंकल का ख़याल आया···क्या नाम रखा हुआ था उन्होंने अपना उन दिनों···"

"फ़ादर चैलीस," शुभा ने कहा।

"हा, फ़ादर चैलीस," प्रभा ने कहानी का सिरा फिर पकड़ लिया और उसी ज़िन्दादिली के साथ उसे दुहराने लगी जिसके साथ कभी चड्ढा ने कहानी उन्हें सुनाई थी।

शायद यह करके वे दोनों उस ज़िन्दादिल आदमी को कुछ देर और जिलाये रखना चाहती थीं।

"···दो-चार आदमी आए और उन्हें पकड़ कर चर्च ले गए। आधी-पौनी बात रास्ते में पता चली, बाकी चर्च पहुंचने पर। माजरा समझ में आया तो अंकल के होश फ़ाख्ता ! क्रिश्चियन बैपटिस्म तक तो ठीक था पर शादी—वह भी कैथोलिक नाज-नखरों से ! बेचारे अंकल को रस्मो-रिवाज़ का सिर-पैर पात नही था। अब उस जंजाल से बचें तो कैसे ? कुछ और नहीं सूझा तो पुलिपट तक जाते-जाते उन्होंने पैर को इस तरह मरोड़ा कि चारो खाने चित गिर पड़े। शादी करवाने के झंझट से बच गए, अलबत्ता टांग टूट गई।"

"ऐसे तो नहीं टूटी थी···" अविजित बोल उठा।

"तब फिर···?"

"वह तो जेल में···"

"जेल मे वह आप ही के साथ थे न ?" जल्दी से अनित्य ने बीच में टोका।

"वह बत्तीस की बात है। टांग उसकी बियालीस मे टूटी···फतेहगढ़ जेल मे···"

"और क्या सुनाया था चड्ढा अंकल ने ?" अनित्य ने उसे बात पूरी नहीं करने दी।

"मिस बनर्जी वाला क़िस्सा···वह भी खूब मज़ेदार है," शुभा ने कहा।

"कमाल है, वह तो एकदम !" प्रभा बोली।

"क्या था, सुना तो," अनित्य ने कहा।

"अरे, वे भी तो बियालीस में फ़रार रही। कौन-सा शहर बतलाया था अंकल ने···"

"बम्बई," शुभा ने कहा।

"हां, बम्बई। वहा वे एक खुफिया रेडियो चलाती थी···एक बार पता चला कि पुलिस उनके पीछे है तो कही और न छिप कर वे सीधी कलेक्टर के घर जा पहुची। उसकी बीवी के पास, किसी महिला क्लब के नाटक के लिये चन्दा करने के बहाने। अंग्रेजी फ़र्राटे से बोलती ही थी···बीवी खूब इम्प्रेस हुई और चाय पीने बिठला लिया। संयोग से कुछ देर बाद कलेक्टर साहब भी तशरीफ़ ले आए। मिस बनर्जी को देख कर एक बार चौके, फिर हाथ मिलाकर आराम से चाय पीने लगे। कुछ देर बाद वे चलने को हुई तो कलेक्टर साहब बोले, 'मिस शहनाज़,' ···उन दिनों उनका यही नाम मशहूर था··· 'आगे से नही, पिछले दरवाजे से चली जाइए।' उन्होंने अचरज से कहा, 'आप जानते है, मेरा नाम शहनाज़ है ?' 'जी हा,' 'वह बोला, और यह भी कि असल में आप काजल बनर्जी है।' उनके पूछने पर कि पुलिस को इत्तिला तो उन्होंने कर ही दी होगी, वह बोला, 'अभी नही। मैं इतिहास का विद्यार्थी हू। अपनी आंखों के सामने इतिहास बनता देखू, इससे ज्यादा रोमांचकारी बात मेरे लिये और क्या हो सकती है। आप निकल जाइए, रेडियो फ़ौरन हटा लीजिए, बेहतर है कि शहर ही छोड़ दें···दो घण्टे बाद मै पुलिस को इत्तिला कर दूगा।' शुक्रिया कह कर मिस बनर्जी पिछले दरवाजे से भाग निकली और पुलिस के जाल से बच गई।"

"खुद तो अपने बारे में मिस बनर्जी कभी कुछ बतलाती ही नहीं। जब पूछो हंस कर टाल देती है," प्रभा ने अपनी तरफ़ से जोड़ा।

"जेल के बारे में चड्ढा ने तुम लोगों से कभी कुछ नहीं कहा ?" अविजित ने पूछा। लगा, उसने मिस बनर्जी वाला क़िस्सा सुना ही नहीं।

"नही तो," प्रभा और शुभा ने एक साथ कहा।

"तुम्हे पता है," अनित्य बोला, "ये लोग सब एक साथ एक ही जेल में क़ैद थे। चड्ढा अकल, तुम्हारे पिताजी, हरीश, चटर्जी···और कौन था, भाई साहब ?"

"सरण।"

"वह छुछून्दर भी।"

"पिताजी भी तो जेल के बारे में कभी कुछ नहीं बतलाते," शुभा ने कहा।

"अरे, उसमें बतलाने को क्या है," अविजित ने कुछ हल्का महसूस करते हुए कहा, "हम सब में चड्ढा ही सबसे धाकड़ था। बात-बात पर मरने-मारने को तैयार। चार जनवरी को आनन्द भवन के आगे प्रदर्शन करते हुए पकड़े गए और जेल पहुंचा दिये गए···सब दोस्त एक ही बैरक में रखे गये थे···"

रखे क्या गये थे, भेड़-बकरियों की तरह ठूंस दिये गये थे···तीस आदमी एक बैरक में। सुना था, सरकार ने जेल में ए, बी, सी श्रेणियां बना रखी हैं···दिल में कहीं उम्मीद बनी हुई थी कि राजनैतिक क़ैदी की हैसियत से 'ए' नही तो 'बी' क्लास तो मिलेगी। पर वह सुविधा सिर्फ बड़े लोगों के लिये थी। विद्यार्थी वर्ग पर सरकार ज़्यादा से ज़्यादा दबाव डालना चाहती थी। आखिर देश का भविष्य उन्ही के कन्धों पर था न! लिहाज़ा 'सी' क्लास मिली।

लोहे का फ़ाटक बन्द हुआ···देह के कपड़े उतार कर जेल का कुर्ता-जांघिया पहनना पड़ा···कितना संकुचित हो आया था अविजित!

कपड़ों के मामले में वह हमेशा से नख़रेबाज़ रहा है···खादी का कुर्ता-धोती इतना साफ-शफ़्फ़ाफ़ धुला रहता कि आते-जाते दोस्त चिढ़ा कर कहते—यार, अपने धोबी से हमारे कपड़े भी धुलवा दे।···धोकर सुखाते हुए खास ख़याल रखता कि एक भी सिलवट न पड़े···और कहां यह कुचमुचा 'सी' क्लास का कुर्ता-जांघिया! कुर्ते तक तो ग़नीमत थी पर जांघिया!

चड्ढा ठठाकर हंस पड़ा था।

"एक लाइन में खड़े हो जाओ," उसने कहा था, "मैं बतलाता हूं सबसे बड़ा बन्दर कौन लग रहा है।"

अविजित हंसी में उसका साथ नही दे पाया था, बिल्कुल नही दे पाया था···

उसका साथ देना था ही मुश्किल।

"अच्छा, क्या किया चड्ढा अंकल ने वहां?" उसने सुना शुभा पूछ रही है। अविजित खींच कर वापिस अपने को वर्तमान में ले आया।

"छब्बीस जनवरी को स्वतंत्रता दिवस आया। जेल के अन्दर हम भला उसे क्या मनाते पर चड्ढा हार मानने वाला न था..."

सहसा खड़े होकर उसने ज़ोर-ज़ोर से बन्दे मातरम् का नारा लगाना शुरू कर दिया था। उसकी देखा-देखी बैरक के बाकी लड़के भी बन्दे मातरम् चिल्लाने लगे। फिर क्या था!

सामने के वार्ड से प्रतिध्वनि की तरह नारा गूंजा···फिर बगल के वार्ड से···क्या समां था !

कुछ देर के लिये वे सब कुछ भूल गये थे। बैरक की चारदीवारी, जेल का लोहे का फाटक, वार्डन की घुड़कियां, जेलर का घृणा से सना चेहरा।

वाकई क्या समां था !

हरे-भरे जगल में कुलांचे मारता हिरनों का झुण्ड···खुले आसमान में आज़ाद उड़ता सारसों का काफ़िला ··एक के पीछे एक पंख खोलते अक्षर···गर्व से सिर उठाये, आकाश छूने को पंख ताने नौ सारस···वं-दे-मा-त-रम् ! उड़ान भरता काफ़िला··· अन्तरिक्ष में मुक्त तैरती लय ··आरोही तान, आज़ाद !

और तभी···पगली घण्टी बज उठी !

लाठी घुमाते सिपाही···सीटी बजाते वार्डन···आदेश दहाड़ते जेलर। लय टूट गई। संगीत चीत्कार में बदल गया। फिर भी···एक आवाज़ थी जो गूंजती रही थी !

सिर पर लाठी बरसती हो और दौड़ने के लिये सिर्फ़ एक दीवार से दूसरी दीवार तक का फ़ासला हो···कैसा लगता है ? दस क़दम आगे···दस कदम पीछे··· बीच में लाठिया···आगे लाठिया···पीछे लाठिया···फिर भी बचाव के लिये आदमी दौड़ लगाता है। दस क़दम आगे···दस क़दम पीछे···सिर को हाथों की ओट किये··· ज़िन्दा बचे रहने की कितनी दर्दनाक चाहत आदमी के अन्दर कौली मारे पड़ी रहती है। टूटने दो कमर और कन्धो की हड्डियां···सिर सलामत रहा तो जिन्दा रह लेंगे, सिसक-सिसक कर ही सही।

फिर भी···एक आवाज थी जो गूंजती रही थी—बन्दे मातरम् !

लाठी ठीक चड्ढा के सिर पर पड़ी थी···नहीं, टांग उसकी बत्तीस में नही टूटी।

चड्ढा के फ़र्श पर गिरते ही सारसों का काफ़िला दम तोड़ गया था। एक खौफ़नाक खामोशी···

"बन्देमातरम् बोलने की मनाही थी न ?" शुभा ने पूछा।

"हां···" लम्बी उसांस के साथ अविजित का 'हां' खिचा।

"नारा बुलन्द करते ही लाठी चार्ज हो गया···काफ़ी लोगों को चोट आई," उसने मुर्दा स्वर में कहा।

"आपको भी ?" प्रभा ने पूछा।

"नहीं।"

प्रभा कुछ नहीं बोली तब भी अविजित तिलमिला गया।

"हर किसी को चोट आए, ज़रूरी नहीं है।"

"चड्ढा अंकल को आई होगी," प्रभा ने फिर कहा।

"हां, उसने अपने को बचाने को कोई कोशिश नहीं की। वह लगातार बन्दे-मातरम् चिल्लाता रहा।"

"फिर क्या हुआ ?" शुभा ने बिना तंज़ पूछा।

"घायलो को अस्पताल ले जाने में देर हुई तो हम लोगों ने भूख हड़ताल कर दी," अविजित ने उसके स्वर से आश्वस्त होकर कहा।

पर प्रभा भी तो थी।

"आपने भी ?" उसने कहा।

'क्यो, मै क्यो नही करता ?"

"प्रभा," अनित्य ने कहा, "एक गिलास पानी लेकर आ।"

"आप लोग चड्ढा अंकल को पागल समझते थे न ?" प्रभा ने पूछा।

"किसने कहा ?"

"मै पूछ रही हू।"

"प्रभा," अनित्य ने कहा, "सुना नही तूने, एक गिलास पानी लेकर आ।"

"लाती हूं ··इतनी जल्दी···'

"जल्दी है ! पहले लेकर आ।"

प्रभा अन्दर चली गई।

"यह काजल इन लोगो को जाने क्या-क्या सिखलाती रहती है," अविजित ने कहा।

"काजल ? कौन···बनर्जी ?"

"हां।"

"यहां है ?

"हां। प्रभा को पढ़ाती है।"

"चड्ढा से उसका कुछ लगाव था ?"

नही, लगाव उसका मुझसे था; सज़ा भी वह मुझे ही देगी। वह और चड्ढा, दोनों···जेल में मैने कम तो नही भुगता···

प्रभा पानी का गिलास लेकर आ गई, बोली, "ममी पूछ रही हैं, सब लोग फाटक पर क्यो खड़े है। कोई वारदात हो गई क्या ?"

"ओहो, हद हो गई," अनित्य ने कहा, "मै तो शुक्ल जी को भाभी के पास ही छोड़ आया। है वहां ?"

"जी। एक शै नज़र तो आई थी," प्रभा ने कहा।

"कौन है यह शुक्ल जी ?" अविजित ने पूछा। कही और मन लगाना बहुत ज़रूरी हो रहा था।

"दोस्त ही समझिये। रिश्ता खासा दिलचस्प है। हुआ यूं कि अपना एक दोस्त था। जरा दूर की देखने का शौक़ीन था। ऐसे लोगों की, आप जानते ही है, पास की नज़र कमज़ोर हुआ करती है। खैर, हुआ यूं कि उसने बिज़नेस का एक प्लान बनाया।

खूब पुख्ता। और दो चार आदमियो से रुपया इकट्ठा कर लिया। कोई गड़बड़-घोटाला उसमें नही था। बाक़ायदा पार्टनर बनाया था दोस्तों को। क़रीब बीस हज़ार रुपया लगा होगा हर आदमी का। बिज़नेस शुरू धूमधाम से हुआ, बस कुछ दूर चल कर अड़ गया। रुपया डूब गया। पार्टनरो की खीचातानी से बचने का उपाय भी दोस्त ने दूर का निकाला। खुदकुशी कर ली।

"मातम मनाने वाले पार्टनरों में एक शुक्लजी भी थे। मालूम नही कहां से मेरा पता पा गए और रोते-पीटते मेरे पास आ पहुचे। अब मैं क्या कर सकता था? रुपये न हों तो आदमी सिर्फ़ दोस्ती दे सकता है, लिहाज़ा दोस्त बनाना पड़ा···"

"तो अब क्या हर जगह इन्हें साथ लेकर घूमेंगे?" प्रभा ने पूछा।

"नही, यहाँ छोड़ जाऊंगा।"

"जी?"

"भले आदमी ने बीवी के ज़ेवर बेच कर पार्टनर बनने की ख्वाहिश पूरी की थी। बीस का बीस हज़ार डूब गया तो अब घर जाने से कतरा रहे है। मैंने सोचा कुछ दिन यहां रह लेगा···बीमे की एजेंसी जैसा कोई काम आप उसे करा दे···कुछ दिनो में घर जाने लायक़ हो जायेगा।"

"यह कोई खैरातखाना है?" प्रभा ने, अविजित के कुछ कहने से पहले ही कहा।

"नहीं···पागलखाना," अनित्य ने उसके कान में कहा।

"प्रभा," अविजित ने बाधा दी, "ऐसे क्यों कहती हो? रह लेंगे कुछ दिन··· मुसीबत में हैं।"

"मुसीबत में तो यहाँ चालीस करोड़ इंसान है, उन सबके लिये···"

"चुप रह प्रभा," सहसा शुभा ने कहा, "बात को कहाँ से कहा ले जाती है।"

प्रभा ने अचरज से उसकी तरफ़ देखा और चुप हो गई।

"चलो, अन्दर चलो," अनित्य ने कहा, "भाभी घबरा रही होंगी।"

श्यामा मज़े में थी। कमरे में पहुंच कर सभी आश्वस्त हुए।

श्यामा बिस्तर पर अधलेटी पड़ी थी। पास आराम कुर्सी पर शुक्लजी बैठे थे। बड़े भक्ति भाव से ययाति के बेटे पुरु की पितृभक्ति की गाथा सुना रहे थे। सुनने वालों में श्यामा ही नही, उसके पलंग के पायताने बैठी खोखी भी शामिल थी और अचरज··· सुधांशु शुक्लजी की गोद मे था!

"इनके आठ बच्चे है," चुपके से अनित्य ने कहा।

बाद मे पता चला था, शुक्लजी खुद भीतर आकर स्वर्णा के पास से सुधांशु को उठा लाए थे।

आदमी काम का लगता है, अविजित के मन में उठा, स्वर्णा के जाने के बाद···

परिचय और नमस्कार में ज़्यादा वक़्त नही लगा था, श्यामा नही चाहती थी कि कहानी बीच में छोड़ी जाए।

उन्हें वहीं छोड़ कर अविजित अनित्य के साथ बैठक में चला आया। पीछे-पीछे प्रभा भी आ पहुंची।

शुभा कुछ देर कमरे में ठिठकी खड़ी रही, शुक्लजी का कहानी सुनाने का तरीक़ा काफ़ी नाटकीय था···अतिनाटकीय पर दिलचस्प···नौटंकी की तरह। शुभा को सुनने में मज़ा आ रहा था पर वह प्रभा और अविजित के पास रहना चाहती थी···उनके बीच। उसे लग रहा था, अविजित को उसकी ज़रूरत किसी वक़्त भी पड सकती है। लिहाज़ा दो-एक मिनट बाद ही वह बैठक की तरफ़ चल दी।

"चड्ढा अंकल और मिस बनर्जी आप लोगों से अलग क्यों हो गए थे?" उसने सुना प्रभा अविजित से पूछ रही है।

यह प्रभा भी, बस! जिस चीज के पीछे पड़ जाए, भूत की तरह चिपकी रहती है।

"अलग? क्या मतलब?" अविजित ने माथे पर बल डाल कर पूछा।

"बाद में उन्होंने गान्धीवादी पथ छोड़ दिया था न? क्यों? सिर पर चोट आने के कारण?"

"नहीं तो। छोडना-न-छोड़ना क्या था। पथ बचा ही कहां था जो···जब चौतीस में हम लोग जेल से छूटे तो सब-कुछ ठण्डा पड़ चुका था। नहीं-नहीं, सिर पर चोट आने के कारण चड्ढा कुछ छोड़ने वाला नहीं था। वह तो अस्पताल भी चार दिन टिक कर न रह पाया, लौट आया क्योंकि···"

बीच वाक्य वह चुप हो गया। पता नहीं, बार-बार प्रभा क्यों उन दिनों में जाने पर विवश कर रही है, जिन्हें वह आधा-पौना याद कर नहीं पाता और पूरा करना नहीं चाहता।

चड्ढा चार दिन के भीतर अस्पताल से वापिस बैरक में लौट आया था···

वे लोग अचरज में पड़ गए थे, इतनी भयानक चोट और अभी से डिस्चार्ज कर दिया!

"अभी से डिस्चार्ज कर दिया?" चड्ढा से पूछा भी था।

"नहीं," उसने कहा था, "पर जोर करके रोका भी नहीं।"

"कमाल है। वे भला क्यों जोर करके रोकेंगे? जेल के डाक्टर हैं, तेरे महबूब नहीं," हरीश ने कहा था।

"डाक्टर है या नहीं, यह तो नहीं मालूम। इतना ज़रूर जानता हूं कि वहां मरीज़ कोई नहीं है।" चड्ढा ने कहा था।

"यानी?"

"सब के सब वहानेबाज़ हैं। जेल की मुसीबतो मे बचने के लिए अस्पताल में भरती हो गए है। वह सेठ याद है जो पहले दिन यहां मिला था···"

'वह मुनारिया जो 'ए' क्लास का रोना रो रहा था ?" चटर्जी ने पूछा।

"हां। और तुम लोग बड़े हमदर्द बन कर पूछ रहे थे—सेठजी आपको 'सी' क्लास कैसे मिल गई !"

"अरे, वह बारी-बारी से सबको अपनी व्यथा-कथा सुना रहा था तो हमने सोचा इकट्ठी ही कह लेगा," हरीश जोर से हस पड़ा था, "याद है, रोटी देख कर कैसे बिदका था, जैसे साप पर पाव आ गया हो !"

"आजकल अस्पताल में तशरीफ़ रखे है," चड्ढा ने कहा।

"अच्छा, मैंने तो सोचा, क्लास बदली हो गई सेठ की," चटर्जी ने कहा।

"अर्जी तो भेजी है बेचारे ने। बाहर से रिश्तेदार—दोस्त—वकील सभी जोर लगा रहे है पर रेड-टेप में कही बल पड़ गया दिखता है। ग़लती से बड़े आदमी को 'सी' क्लास दे तो दी पर ग़लती हुई कहा, ढूंढ़े नही मिल रही। लिहाज़ा···बवासीर की घातक बीमारी की बदौलत सेठजी आजकल अस्पताल में भरती हैं।"

"कितना गान्धीवादी बनता था। रोज़ नियम से चरखा कातता था।"

"वह तो अभी भी कातता है। वक़्त काटने का उपाय जो चाहिए। हम लोगों की तरह खुशक़िस्मत थोड़ा ही है कि बारह सेर गेहू दिन भर में पीसो तो पता ही न चले कि कब सुवह शुरू हुई कब शाम खत्म।"

"वह सब तो समझ में आ गया," अविजित ने टोका, "पर तू अस्पताल से क्यों चला आया, यह तो बतला।"

"आज सुबह एक एमरजेन्सी केस आ गया। बस, सब को दस्त लग गए, कहीं बेड खाली करके वापिस 'सी' क्लास में न आना पड़े। मैंने कहा, लानत है अस्पताल पर ! और चला आया।"

"बवासीर की बीमारी वैसे होती खतरनाक है," सरण जो अब तक चुप बैठा सुन रहा था, बोल पड़ा।

"क्यों तुझे भी है क्या ?" चड्ढा ने फ़ौरन कहा था।

सरण लजा गया था। पर बीमारी आदमी को एक नहीं होती। बवासीर न हुई खुजली सही ! सरण जब-तब अस्पताल हो ही आता था। कम दाम पर ही काम हो जाया करता था।

पर हम लोग नही गए। मैंने पूरे दो साल की क़ैद 'सी' क्लास में काटी ! फिर काजल को क्या अधिकार है मुझ पर छींटाकशी करने का !

यह ठीक है कि चड्ढा की तरह बेतों की सज़ा मुझे नहीं मिली पर···चड्ढा से मेरी कोई प्रतियोगिता तो थी नही···

चड्ढा था जो नीम पागल···दीवार से सिर फोड़ने का शौक़ किसी एक को हो तो यह मतलब तो नही कि दूसरे भी···

उस दिन···

सुपरिन्टेन्डेट जेल का मुआयना करने आने वाला था। सुबह से जेल की धुलाई पोंछाई हो रही थी। क़ैदियों को चक्कियों पर से हटा कर फ़र्श धोने के काम पर लगा दिया गया था। सुपरिन्टेन्डेट के बारे में मशहूर था कि उसने आज तक किसी क़ैदी के पास रुक कर बात नहीं की; बेहद सफ़ाईपसन्द अंग्रेज़ है। फ़र्श और दीवारों का इंच-दर-इंच मुआयना करता है···चूहों और तिलचट्टों से ख़ास नफ़रत है, क़ैदियों में कोई दिलचस्पी साहब की नहीं है। उनके आने पर क़ैदियो को एक ही काम पर लगाया जाता है, साहब के आगे जाकर चूहों और तिलचट्टों को भगाते रहे ताकि उनकी नज़र उन पर न पड़े वरना···

और ऐन उसी वक़्त चड्ढा आकर सामने खड़ा हो गया था। हाथ की झाड़ू नीचे पटक दी थी और दहाड़ कर बोला था, "राजनैतिक क़ैदियों से झाड़ू-पोछा लगवाने का कायदा नहीं है!"

वार्डन से लेकर सुपरिन्टेंडेट तक हक्के-बक्के रह गये थे। बाक़ी के क़ैदियों को सांप सूँघ गया था। चड्ढा ने एक बार पीछे मुड़ कर देखा भी था। पर कोई क़ैदी आगे नहीं बढ़ा था। चड्ढा अकेला पड़ गया था!

सुपरिन्टेंडेट ने गरज कर कहा था, "बीस बेत!"

वे लोग चड्ढा को पकड़ कर···

नहीं-नहीं, वह याद करना नहीं चाहता।

उन लोगों ने पहले ही उससे कहा था। एक बार जेल में आ गए तो क्या चक्की और क्या झाड़ू! सब बराबर है। कांग्रेस के बड़े नेता, कमलनैन जी, खुद 'बी' क्लास से आकर समझा गए थे—जेल के भीतर बन्देमातरम् बोलना, प्रदर्शन करना, विरोध जतलाना, इन सबका कोई औचित्य नहीं है। जेल के अन्दर ही तो जेल के क़ायदे-क़ानून मान कर रहो और इन छोटी-मोटी बातों से फ़र्क भी क्या पड़ता है···

उन सब ने चड्ढा को कितना समझाया था पर उसने एक न मानी। उसका ख़याल था कि उसके आवाज़ उठाते ही बाक़ी लोग ख़ुद-ब-ख़ुद साथ देने को आगे बढ़ जाएंगे, उस दिन की तरह, जब बन्देमातरम का नारा गूंज गया था पूरी जेल में। वह भूल गया था कि वे लोग एक बार भुगत चुके हैं। सात-आठ महीने जेल काट लेने पर वह जोश कहां रह जाता है। ऊपर से वार्डन आए दिन नई अफ़वाहें सुना जाता था। अख़बार उन लोगों को नसीब था नहीं। सो डिब्बे में बन्द प्राणियों की तरह ढक्कन के छिद्रों से हवा के साथ जो अफ़वाहें अन्दर प्रवेश कर जाती थीं, उन्हीं पर सन्तोष कर लेना पड़ता था। कभी किसी ख़त के ज़रिये, कभी वार्डर की दया से···

कुछ दिन पहले ही तो वह बतला रहा था; रामज़े माक्डोलैन्ड के साम्प्रदायिक निर्णय के विरुद्ध गान्धीजी आमरण अनशन कर रहे हैं। आज़ादी का मुद्दा छोड़ दिया गया है, गान्धीजी अछूतोद्धार में लगे हैं। कांग्रेस ने कांसिल प्रवेश का उसूल स्वीकार कर लिया है। ऐसे वक़्त में कैसा जोश और किसके लिए?

अविजित चड्ढा का साथ दे भी देता तो क्या हो जाता ? उसे भी बेंतों की सजा···!

···नंगी पीठ पर सरसराता चाबुक···एक···दो···तीन···कुलबुल करता खून···चमड़ी फाड़ कर फूटती लहू की धाराए ! चार···पांच···छह···सात·· धाराओं का संगम, होश को चीखों से ललकारता ! आठ·· नौ···लहू का समन्दर···होश में खौफ़नाक ज्वार ! पन्द्रह···सोलह···बेहोशी की रेत पर सिर धुनता प्रलाप···ऊपर टिकटिकी पर टंगा मांस का लोथड़ा···

ऊपर टिकटिकी पर टंगा चड्ढा···अविजित नहीं, चड्ढा। चड्ढा···

"मिस बनर्जी कह रही थी," प्रभा ऊंचे स्वर में कह रही है, "जेल में चड्ढा अंकल पर बहुत जुल्म हुए।"

"तो !" अविजित गरज उठा, "इसमें मिस बनर्जी ने नई बात क्या कही। जेल में जुल्म नहीं तो क्या होगा !"

"पिताजी !" त्रस्त स्वर में शुभा ने पुकारा।

अविजित की लाल-लाल आंखें प्रभा से घूम कर उस पर आ टिकी। शुभा समझ गई, वे उसे नही देख रहीं और शायद प्रभा को भी नही।

"आप कह रहे थे," उसने कहा, "चौतीस में जब आप लोग जेल से छूटे तो आन्दोलन ठण्डा पड़ चुका था ?"

"इसीलिए चड्ढा और काजल बनर्जी अलग जा पड़े, क्यों भाई साहब ?" अनित्य ने कहा।

"हां। वे क्या, सभी लोग-अलग-अलग जा पड़े। गान्धीजी ने आन्दोलन वापिस ले लिया था," अविजित ने सम्भल कर कहा। फिर मुख़ातिब हो कर सख्ती के साथ जोड़ा, "बात तो पूरी तरह समझने की कोशिश करनी चाहिए।"

आज भी याद है अप्रेल चौंतीस का वह दिन जब जेलर ब्राउन खुद आकर उन्हें ख़बर दे गया था—गान्धीजी ने सत्याग्रह आन्दोलन वापिस ले लिया !

कैसा लगा था सुन कर ?

आदमी से कहा जाए, आंखों पर पट्टी बांध कर नदी में छलांग लगा दो। अन्ध-विश्वास के साथ नदी को पानी समझ कर वह कूद पड़े और नुकीले पत्थरों पर जा गिरे, कैसा लगेगा ?

जेलर ब्राउन 'सी' क्लास के क़ैदियो को इस लायक़ नहीं समझता था कि उनसे बात की जाए। पर इतनी बड़ी खुशखबरी पचा नही पाया था, इसी से ऐलान करने उनकी बैरक में आ पहुंचा था।

"नामुमकिन !" चड्ढा ने कहा था।

"नामुमकिन ?" ब्राउन ने टेढ़ी मुस्कराहट के साथ उस दिन का 'लीडर' उनके

सामने कर दिया था।

अखबार !

एक दर्जन हाथ उस पर झपट पड़े थे।

अखबार चिथड़े-चिथड़े हो गया था—हर पन्ना अलग। सुर्खियों वाला पन्ना अविजित के हाथ लगा था। बाक़ी हाथों से उसे बचाए रखने के खयाल से उसने खबर ज़ोर-जोर से पढ़नी शुरू कर दी थी और हर हरफ़ के साथ उसका दिल टूटता चला गया था।

वाक़ई गांधीजी ने सत्याग्रह वापिस ले लिया था। कारण बतलाते हुए उनका वक्तव्य छपा था। अविजित ने पढा जरूर पर समझ में कुछ नहीं आया। सुनने वाले भी उसी की तरह भौचक थे। खत्म करते ही दुबारा पढना शुरू कर दिया उसने...

"...इसका मुख्य कारण वह आंखें खोलने वाली खबर थी जो मुझे अपने एक बहुत पुराने और बहुमूल्य साथी के सम्बन्ध में मिली थी। वह जेल में काम करने को राजी न थे और उसके बजाय किताबें पढना पसन्द करते थे। यह सब कुछ सत्याग्रह के नियमों के सर्वथा विरुद्ध था। इस बात से इस मित्र की अपेक्षा मुझे अपनी दुर्बलताओं का अधिक बोध हुआ। उन मित्रों ने कहा था कि मेरा खयाल है कि आप मेरी दुर्बलता को जानते है। लेकिन मैं अन्धा था। नेता में अन्धापन एक अक्षम्य अपराध है। मैने फ़ौरन यह भांप लिया कि कम-से-कम इस समय के लिए तो मै अकेला ही सक्रिय सत्याग्रही रहूंगा..."

बस ! इतनी मामूली-सी बात के लिए गांधी जी ने इतना बडा राष्ट्रीय संग्राम रोक दिया। एक अकेले इंसान ने ग़लती की, इसी को किन्ही आध्यात्मिक और रहस्यमय उसूलो का आधार बनाकर राष्ट्रीय आंदोलन में हिस्सा ले रहे हजारों इंसानों को अधर में लटका कर छोड दिया !

वक्तव्य के अन्त में गांधी जी ने कांग्रेस वालों को सलाह दी थी—"उन्हें आत्म-त्याग और स्वेच्छापूर्वक ग्रहण की गई दरिद्रता की कला और सुन्दरता को समझना होगा; उन्हें राष्ट्रीय निर्माण के कार्य में लग जाना चाहिए, उन्हें स्वयं हाथ से कात-बुनकर खद्दर का प्रचार करना चाहिए, उन्हें जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे एक-दूसरे के साथ निर्दोष सम्पर्क स्थापित करके लोगो के हृदयों में साम्प्रदायिक ऐक्य का बीज बोना चाहिए, स्वयं अपने उदाहरण द्वारा अस्पृश्यता का प्रत्येक रूप मे निवारण करना चाहिए और नशेवाजों के साथ सम्बन्ध स्थापित करके अपने आचरण को पवित्र रखकर मादक चीजों के त्याग का प्रसार करना चाहिए। ये सेवाएं है जिनके द्वारा ग़रीबों की तरह निर्वाह हो सकता है। जो लोग ग़रीबी में न रह सकते हों, उन्हे छोटे राष्ट्रीय धन्धों में पड़ जाना चाहिए जिससे वेतन मिल जाए।"

सब लोग, हक्का-बक्का, एक-दूसरे का मुह देखते खड़े रहे।

"ये सब करने से आजादी मिल जाएगी ?" हरीश के मुह से निकला।

"गांधीजी तो हमेशा से कहते आए हैं, अपने निजी जीवन को पवित्र बनाए रहो, बाक़ी सब कुछ अपने आप ठीक हो जाएगा," सरण ने कहा।

वह हमेशा की तरह स्थिति से तटस्थ था।

"कैसे ?" चटर्जी ने कहा।

"मैं पूछता हूं हमारा ध्येय क्या है—आज़ादी या सदाचार ?" हरीश ने तमतमा कर कहा।

"गांधीजी कहते हैं, साधनों की चिन्ता करो, साध्य अपने आप···"

"ओह, शट-अप !" अविजित ने कहा, "तोते की तरह सूक्तियां मत बोल। गांधीजी ने जो कहा हो, इस वक़्त सवाल यह है कि आंदोलन बीच में रोक देने से आज़ादी के हमारे ध्येय का क्या होगा ?"

"कुछ नहीं होगा," हरीश ने कहा, "यही अन्त है !"

"नहीं," चड्ढा बोल उठा, "यह अन्त नहीं अन्त की शुरुआत है ! गुलामी के अन्त की ! अब हमें गांधीजी की जरूरत नहीं रही। हम लडकर आजादी हासिल कर लेंगे !"

उसके स्वर की दृढता ने सबके दिल में उम्मीद की जुम्बिश पैदा कर दी पर तभी ब्राउन बोल उठा, "आज़ादी की तुम लोगों को ज़रूरत क्या है ?"

वे लोग भूल ही गए थे कि जेलर ब्राउन अब तक उनके बीच में है।

"क्या मतलब ?" अविजित ने तड़प कर कहा।

"तुम लोगों का यह गांधी वाक़ई अक़्लमंद शख़्स है। अच्छी तरह जानता है कि अंग्रेजों के चले जाने पर हिन्दुस्तान दो दिन ज़िन्दा नहीं रह सकता, इसी से सुधार की बात करता है, लडाई की नहीं।"

उसकी बात से सभी तिलमिला उठे थे पर जवाब किसी के पास नहीं था, खून का घूंट पीकर चुप बने रहे।

जेलर ब्राउन का स्वर कोमल हो गया। पथभ्रष्ट युवकों को समझाने के बुर्जुगाना अन्दाज़ में उसने सदय स्वर में कहा, "क्यों तुम लोग यहां जेल में पड़े सड़ रहे हो। अभी बच्चे हो, तुम्हारा भविष्य तुम्हारे सामने है। घर जाओ, पढ़ाई-लिखाई करो। अंग्रेज़ी राज क़ायम रहा तो नौकरियों की कमी नहीं होगी।"

"हमें नौकरी नहीं, आज़ादी चाहिए," चड्ढा ने कहा।

"तुम्हारे चाहने से क्या होता है।" ब्राउन ने व्यंग्य से हंस कर कहा, "तुम्हारे जैसे सैकडों सिरफिरे फांसी के तख्तों पर लटक चुके। हम समझते हैं—और कांग्रेस समझती है, हिन्दुस्तान और अंग्रेज जुदा नहीं हो सकते।"

"शट-अप।" सहसा चड्ढा चीख पड़ा था।

बैरक के अन्दर-बाहर सन्नाटा छा गया था।

ब्राउन के चेहरे पर से शालीन समझौते का नक़ाब उतर गया। घृणा और क्रूर

अहं की लाली से हर नक़्श गरम हो उठा।

चाबुक फटकारती आवाज़ में उसने कहा, "इतनी बेतें खाकर भी अक़्ल दुरुस्त नहीं हुई। और खाना मांगता है, बास्टर्ड!"

तान कर बूट-समेत एक लात उसने चड्ढा की पीठ पर जमा दी। चड्ढा औंधे मुंह फ़र्श पर गिर पड़ा।

फिर···

नहीं, अविजित याद नहीं करना चाहता।

अविजित नहीं चाहता, एक बार फिर वह अपने चारों तरफ़ के माहौल से अपरिचित हो जाए।

जब से काजल से मुलाक़ात हुई है···न जाने क्या हो गया है कि अपने वर्तमान से परिचय जोडे रखने के लिए अविजित को सायास प्रयत्न करना पड़ता है।

"ऐसे कोई जी सकता है भला? विगत में लिपट कर, हर पल?

छोटा अन्तराल तो नहीं है, बीस साल का। फिर···और जब वह याद करना नहीं चाहता। इतने बरस भुलाए रहा······सिर्फ़ जो चाहा वही याद किया······जो तसल्लीबख्श था······खुशगवार था······जमीर पर जो भारी पडे······छोड़ो······ वह अनित्य की बातें है। नही······अनित्य ने तो कुछ कहा ही नहीं······आज···यह अविजित की बातें हैं···अविजित के हर पल जीवित उस विगत को जो बीता नही···

काजल······अविजित याद नही करना चाहता······फिर भी···काजल···जेल में उससे मिलने आई थी···आखिरी बार·· बीस साल पहले···

कमरे में बैठे प्राणी अविजित को दीखने बन्द हो गए।

वह उठा और कमरे से निकल कर बाहर बरामदे में आ गया···उन्हे वर्तमान में टँगा छोड़कर स्वयं समय के अन्तराल में खिसक गया···

दस कदम आगे···दस क़दम पीछे·· फिर दस क़दम आगे···दीवारो केबीच फंसा अविजित छटपटाता घूमता रहा···

जेल की कोठरी में बन्द रहने वाले आदमी के लिए मुलाक़ात का दिन कितना उत्साह-पूर्ण होता है······बाहर की दुनिना से सम्पर्क जुड़ते ही इन्सान होने का अहसास जो जग उठता है मन में! वही तो अटका रहता है रात-दिन उसका मन—बाहर की दुनिया में। भीतर के संगी-साथी उदासी और खालीपन को भर नहीं पाते, और विस्तार देते हैं।

बाहर की दुनिया का छोटा-सा आभास···!

रात दस बजे एक दिन···आसमान के उस छोटे-से हाशिये पर जो उनके वार्ड

की खिड़की से दीखा करता था, एक हवाई जहाज़ उभर आया ! वाह ! उड़ान भरती बाहर की दुनिया ! वार्ड के तमाम क़ैदी एकजुट होकर खिड़की की तरफ़ दौड़ पड़े थे··· काश दूर क्षितिज पर विलीन होने तक उसे देख सकते, पर कहां···खिड़की की सलाखों में फंसे आसमान का व्यास था ही कितना ? फिर भी, जब तक हो सका, अविजित खिड़की से नही हटा था। धक्का-मुक्की करते साथियों को उसकी बलिष्ठ भुजाओं ने पीछे धकेल दिया। देखता रहा था···दूर ··कहीं जा कर ओझल हो गया था हवा का वह प्रतिद्वन्द्वी !

पागल की तरह अविजित खिड़की छोड़ दरवाजे की तरफ़ दौड़ा और ज़ोर-ज़ोर से दरवाज़ा पीटने लगा। नहीं ठहर सकेगा अन्दर अब एक पल भी ! मत छोड़ो जेल से, अहाते में तो निकल जाने दो ! क्षण-दो-क्षण हवाई जहाज के साथ आकाश में उड़ लेने दो ! पर नहीं। रात बाड़े में बन्द किये गए क़ैदी सुबह होने पर ही खोले जाते थे। दरवाजे के बाहर मोटे कुण्डे में भारी ताला पड़ा था ।

"सुअर है हम लोग जो इस तरह बन्द करके रखा जाता है !" वह चीख उठा था।

"क्यों इतना बिदक रहा है ?" चड्ढा ने कहा था, "हवाई जहाज तुझे लेने नही आया।"

मन मार कर वह खिड़की पर लौट आया था और देर तक सूने आसमान पर शून्य की उड़ान देखता रहा था।

और उस दिन···

"मुलाक़ात आई है," उसने सुना था, मेट ने कहा है।

"कौन है ?" उसने पूछा था। मन में सोचा था, काश अनित्य हो, पिताजी आते हैं, उदास और बीमार, नो रो-रोकर उसकी भर्त्सना करते रहते हैं।

"कोई काजल बनर्जी है," मेट ने कहा था।

पुलक ! ···फिर आतंक ! अविजित ने चाहा था, मना कर दे, पर बाहर की दुनिया को छू पाने का लोभ···रोक न सका था···चाहे जिस भी माध्यम से हो।

उस दिन, अगर उन दोनों के बीच जाली न खिची होती···दौड़ कर आती काजल दो साल पहले की तरह, उसके गले से लिपट गई होती···उसे बांहों में दबोचकर वह उसे चूम न उठता ! उसकी देह की छुअन से अपने शरीर की उद्दाम जलन को बढ़ा न बैठता ?

दूर से आती काजल की मादा-आकृति को देखकर उसका मन हुआ था, जाली को नोचकर फेंक दे। बेतहाशा उसकी तरफ़ दौड़ जाए, जैसे उस रात उड़ते हवाई जहाज़ को देखकर दौड़ लगाई थी, और उसे बांहों में भर ले। पर···उनके बीच जाली खिंची थी। बच गया वह। जो उस दिन घटा था, घटना ही था पर उससे कहीं ज़्यादा भयानक अन्याय से वे बच गए थे। अविजित करने से, काजल सहने से।

जाली के एक तरफ़ अविजित था, दूसरी तरफ़ काजल। आमने-सामने। स्त्री-

पुरुष नहीं, अविजित और काजल।

इतनी बदसूरत काजल पहले कभी नहीं थी। कमज़ोर पीला चेहरा, खुरदुरी खाल और गहराई तक गुदे चेचक के दाग़।

पास बने पाखाने से बदबू का भभकारा उठा। अविजित का मन वितृष्णा से भर गया था।

चारों तरफ़ इस कदर हल्ला मचा हुआ था कि बात सुननी मुश्किल थी। जोर से बोलो तो सब सुने, धीरे तो सामने वाला भी नहीं। काजल की बात क्या ज़ोर से कहने की थी? फिर भी वह नही झिझकी थी। हां, अविजित बुरी तरह संकुचित हो उठा था।

बैठने की जगह नही थी। वे लोग खड़े-खड़े ही बात कर रहे थे।

"कैसे हो?" काजल ने पूछा था।

"ठीक हूं," उसने कहा था।

"मां-बाबा पटना जा रहे है।"

'अच्छा।"

"मुझे क्या करने को कहते हो?"

"मैं क्यों कहूंगा?" अनजान बनकर उसने कहा था।

"बाबा के साथ पटना चली जाऊं या यहीं रहूं। तुम्हारे छूटने पर···"

"बाबा क्या कहते हैं?"

"उन्हें छोडो। तुम बतलाओ।"

"मैं क्या बतलाऊं, यह तुम्हारे सोचने की बात है।"

"अविजित, सोचकर ही तुमसे पूछ रही हूँ। यह वक़्त लज्जा का नाटक करने का नहीं है। तुम्हारे जेल से छूटने पर हमारा विवाह होगा या नहीं?"

अविजित न 'हां' कह सका था, न 'ना'।

"यह वक़्त क्या इन सब बातो का है?" उसने कहा था।

"क्यों नही?"

"अभी मै जेल में हूं। छूट भी गया तो क्या होगा, दुबारा पकड़ा जाऊंगा। मेरा जीवन देश को अर्पित है। शादी-ब्याह के बारे में मैं नहीं सोच सकता।"

कहते-कहते अविजित को लगा था, काजल के चेहरे पर कुछ और चेचक के दाग़ गुद आए है, उसके देखते-देखते। उनसे बिंध कर चेहरे की त्वचा बिल्कुल कोयला हो गई है।

"सोचना चाहते नही कि कोई और बाधा है?" उसने पूछा।

"गाधीजी कहते है, नौजवानों को ब्रह्मचर्य व्रत लेकर देश की सेवा में उतरना चाहिए···" उसने बात शुरू की पर काजल ने बीच में काट दी।

"गाधीजी को रहने दो। तुम क्या चाहते हो, वही कहो।"

"मैं क्या चाह सकता हूं? चाहता हूँ देश आज़ाद हो। मैं जेल से छूट जाऊं। मेरे चाहने से हो जाएगा?"

"तो···मैं···पटना···चली जाऊं?" काजल की आवाज़ कांप गई थी।

अविजित ने महसूस किया था कि अगर यह औरत काजल न होती तो फूट-फूट कर रो पड़ती।

वह क्रूर हो गया था।

"तुम आज़ाद हो," उसने कहा था, "जो चाहो कर सकती हो। मैं क़ैदी तुम्हें क्या सलाह दे सकता हूं?"

"मैं भी जेल काटकर आई हूँ, अविजित," उसने कहा था, "पर तुम्हारी तरह···"

"टाइम पूरा हो गया!" वातावरण को चीरती मेट की आवाज़ गूंजी! काजल का वाक्य उसमें खो गया।

अविजित अपनी बैरक में लौट आया था पर महीनों काजल का वह अधूरा वाक्य उसे सालता रहा।

क्या कहा था काजल ने उस दिन···

"तुम्हारी तरह कायर नही बनी···तुम्हारी तरह खुदगर्ज़ नही बनी या ···तुम्हारी तरह हिप्पोक्रेट नही बनी···

दीवार में लगी अलमारी के आगे आकर अविजित रुक गया। धीरे से पल्ला खोला और भीतर झांका। देखा- –सारा सामान, सुई-धागा, शेविंग का सामान, कैंची-चाकू, प्याला-प्लेट-गिलास क़रीने से सजे हैं। उसने राहत महसूस की और क़दम लौटा लिए।

यह देखकर मैंने राहत क्यों महसूस की, वह सोच रहा था। क़रीने से क्यों नही सजा होगा सामान? यह जेल नहीं है कि शेविंग रेजर और शीशे को ताक पर सजा कर रख देने से ही कोई ऐतराज़ करने लगे।

बस, आदत हो गई है तभी से, जब वार्डन ने उसका वह मामूली-सा सामान ज़ब्त कर लिया था। 'यह जेल है, यहां आप अपने शौक़ पूरे करने नही आते,' उसने कहा था और उसका शेविंगरेज़र और साबुन, और हाँ, एक शेविंग ब्रश और सबसे प्यारा, उसका वह आईना उठा कर ले गया था। कमबख्त! कभी माफ़ नही करेगा अविजित उसे! अविजित का बदन काँप उठा। किस-किस को माफ़ नही करेगा अविजित? अविजित को किसने माफ़ किया है?

एक चक्कर काट कर वह वापिस अलमारी के आगे पहुंच गया।

मुझे इस बरामदे में क़ैद कर दिया जाए, तो बरसों आसानी से काट सकता हूँ काजल!

यह ठीक है कि १९३४ में जेल से छूटने पर मैंने बढ़िया नौकरी ढूँढ निकाली और ब्याह भी कर लिया। पर इसमें मेरा कोई क़सूर नही था। गांधीजी ने आंदोलन ही वापिस ले लिया था।

मैं अकेला तो आंदोलन चला नहीं सकता था, अविजित ने हल्का महसूस करने

की कोशिश में सोचा पर काजल से जिरह···जीतना उतना आसान न था।

वह वापिस कमरे में लौट न सका।

शाम रात में तबदील होती गई।

अविजित, दस क़दमों में बंधा, चहलक़दमी करता रहा···

११

आज अविजित घर के एक कमरे से दूसरे कमरे में भटक रहा है।

इतवार का दिन है।

आज शाम संगीता की शादी है।

उसकी तैयारी में सुबह से श्यामा आराम कर रही है।

पता नहीं कैसे उसने अनित्य को भी शादी में चलने के लिए राज़ी कर लिया है। शादी-ब्याह में कभी जाता तो नहीं, आज कैसे मान गया? श्यामा की बात टाली भी जा सकती थी। चलो, न सही···

एक कमरे में शुभा-प्रभा को लेकर अनित्य बैठक लगाये हुए है, दूसरे में श्यामा है ही। बस, अविजित कहीं टिक नहीं पा रहा। और घर से बाहर जाने से भी कतरा रहा है। अनित्य है यहां। एक मोह बना हुआ है मन में कि शायद आपस में नाता जुड़ जाए और सब साथ मिलकर बैठ सकें। अपनों के सामीप्य में जो तुष्टि होती है···

"तुम्हारे पिताजी की भाभी से शादी मैंने ही करवाई थी," अनित्य कह रहा है।

"बड़ा अच्छा काम किया था!" प्रभा ने टोका।

"चुप भी रह," शुभा ने कहा, "कैसे हुई थी, बतलाइए न?" उसे सुनने में मज़ा आ रहा था।

"भाभी अपनी खूबसूरती के लिए पूरे लखनऊ शहर में मशहूर थी। स्कूल में घुसती या बाहर निकलती तो दीदार हासिल करने के लिए लड़कों की भीड़ फाटक पर खड़ी मिलती। हम भी चले जाया करते थे। मालूम तो था, हैं जज सिंघल की बेटी··· बहुत ही बेहूदा बात है कि हर ख़ूबसूरत लड़की के एक बाप ज़रूर होता है···"

"क्यों, बदसूरतों के बाप नहीं होते क्या ?" प्रभा ने फिर टोका।

"होते हैं पर उतने असरदार नहीं !" अनित्य ने कहा," खैर, यह मैं अच्छी तरह जानता था कि कोई बाप इतना बेवकूफ़ नही हो सकता कि अपनी बेटी की शादी मुझसे कर दे। अलबत्ता भाईसाहब की बात और थी। मैंने तय किया कि जस्टिस सिंघल की बेटी की शादी भाई साहब से होगी।"

"फिर ?" शुभा ने पूछा।

"फिर क्या ?"

"आपने तय कर लिया और हो गई शादी !" प्रभा हंस पड़ी।

"और क्या। मैंने भाई साहब से कहा, शादी करने का इरादा है ? वह बोले, हां। मैंने कहा, लड़की मैने देख ली है, बेहद खूबसूरत है। बस भाईसाहब राज़ी हो गए।"

"और जस्टिस सिंघल ?"

"ज़ाहिर है।"

जस्टिस सिंघल के राज़ी हो जाने पर अविजित को भी कम अचरज नही हुआ था।

"वे अपनी बेटी की शादी मुझसे क्यों करेंगे ?" अनित्य से उसने कहा था, "वे जज है, उनके हिसाब से मै देशद्रोही हूं···अंग्रेज़ी राज की मुख़ालफ़त करके जेल काट आया हूं।"

"यही तो वे चाहते है," अनित्य ने कहा था।

"क्यों भला ?"

"बुलन्द ज़मीर के आदमी है। जज है तो हर किसी को सजा सुनाने का काम करना ही पड़ता है पर ज़मीर बगावत किये रहता है। सुना है, एक बार गोविन्द वल्लभ पन्त को सज़ा सुनाने का मौक़ा आया तो बेचारों की आंखों में आंसू आ गए। अब तो खैर, कांग्रेस मंत्रिमंडलों का जमाना है, जज साहब खुलकर रो सकते है।"

"लड़की वाक़ई खूबसूरत है ?" अविजित ने पूछा था।

"बेहद ! एक बार देख आइए न, फिर बात कर लेंगे। हां, एक बात है, जज साहब दहेज नही देंगे, ज़रा ऊंचे खयालात के आदमी हैं।"

"अच्छा है। पिताजी के उसूल भी दहेज के खिलाफ है।"

"जी हा। पिताजी के उसूलों को कौन नही जानता। सैशन्स कोर्ट के जज को समधी बनाने के लिए वे बड़े-से-बड़ा बलिदान देने को राज़ी होंगे।"

"वह बात नहीं है।"

"हां, बलिदान तो पहले ही दिया जा चुका। बेटा आई. सी. एस. अफसर न बन पाया, समधी तो हो। आपकी प्राइवेट फ़र्म की नौकरी को पिताजी बराबर की अहमियत न देते हों पर जज साहब को खूब सूट करता है। दामाद ऊंचे पद पर हो और ज़मीर पर भारी न पड़े, इससे बढ़िया बात क्या हो सकती है।"

१६३८ में अविजित की शादी श्यामा से हो गई थी। जीवन का एक अध्याय खत्म होकर दूसरा शुरू हो गया था। १६३७ में प्रान्तों में कांग्रेस मन्त्रिमंडल बन चुके थे। तय रहा था कि स्वतंत्रता की लड़ाई हमेशा के लिए स्थगित हो गई।

एक बहुत बड़ा लक्ष्य सिकुड़ कर दैनिक जीवन-यापन के व्यापार में केन्द्रित हो जाए तो कैसा लगता है ?

आदमी को दबा कर बोतल में बन्द कर दो तो वह उसी छोटी-सी जगह में हाथ-पैर मारकर जीने की आदत डाल लेगा, यही नहीं, बोतल के बीच घूमने को ही बड़ी बात मानकर नये-नये कोणों से उसकी दिक्कतों पर ग़ौर करेगा और अपने को सूरमा कहलाने में ज़रा झिझक नहीं महसूस करेगा।

देश से सिकुड़ कर परिवार !

आजादी से सिकुड़ कर प्रान्तीय हुकूमत में हिस्सा !

आदमी छोटा होता चला जाता है······

कई बरस बाद, अगर फिर से पुराना लक्ष्य आवाज़ लगाने लगे तो सुन पाना मुश्किल हो जाता है···

"जस्टिस सिंघल बहुत पुख्ता ज़मीर के आदमी थे···" अनित्य कह रहा है।

"तभी तो जज थे," प्रभा की आवाज।

"हां, हर जज का ज़मीर पुख्ता होता है। इसी से दूसरों को सज़ा सुनाने से नही कतराता। अपने को सज़ा सुनाने की ज़रूरत महसूस करते ही आदमी बेचारा सिर्फ़ आदमी रह जाता है···"

वहां से हटकर अविजित श्यामा के कमरे में चला आया। देखा सुधांशु को गोद में लिये शुक्लजी गद्‌गद् कण्ठ से गीता के श्लोक गा रहे है। श्यामा आंखें बंद किये पड़ी है, चेहरे पर मुग्ध शान्ति का भाव है। निष्क्रियता में आनन्द ले पाना हर किसी के बस की बात नहीं है।

जब संगीता गाना सुनाती थी तब भी ऐसा ही सम्मोहित शान्ति का भाव श्यामा के चेहरे पर छाया रहता था। संगीता···आज शाम···जाना ही पड़ेगा।

अनित्य की कहानी चालू थी।

तभी स्वर्णा कमरे में घुसी।

"चाचाजी," उसने कहा।

प्रभा शुभा की देखा-देखी स्वर्णा भी अनित्य को चाचाजी कहती है।

शुरू-शुरू में एक बार 'छोटे साहब' कहकर पुकारा था तो अनित्य ने टोक दिया था, "मौसी मैं छोटा जरूर हूं पर साहब किसी हिसाब से नहीं। बेहतर है कि तुम मुझे···

"चाचाजी कह कर बुलाया करो," प्रभा ने जोड़ दिया था। तभी से स्वर्णा उसे चाचाजी कहती है और अनित्य उसे मौसी।

"चाचाजी," अब स्वर्णा ने कहा, "हमको कलकत्ता का एक टिकट लाकर दो।"

"कब का ?" अनित्य ने काम का सवाल किया।

"अगले इतवार का।"

"तू कलकत्ते जा रही है ?" शुभा ने बाधा दी।

"हां।"

"लौटेगी कब ?"

"लौटेगा नहीं।"

"क्या मतलब ?" शुभा उठ कर खड़ी हो गई, "तू चली जाएगी ?" चकित स्वर में उसने कहा।

'इसमें इतने अचरज की क्या बात है ?" प्रभा बोली, जानती तो है लछमन चला गया है तो वह भी···"

"नही—नही !" शुभा एकदम जा कर स्वर्णा की छाती से लिपट गई।

"तू मत जाना," उसने कहा।

स्वर्णा ने खीच कर उसे और पास समेट लिया। उसकी आंखों से आंसू गिरने लगे।

"सुधांशु का क्या होगा ?" शुभा ने कहा।

"उसको खोखी देख लेगा," स्वर्णा ने घरघर करते गले से कहा।

"खोखी ? वह कैसे देखेगी ?"

"देख लेगा। हम बतला कर जाएगा।"

"और ममी को ?"

"तू देखना।"

"मैं ? मैं कैसे ? नही, तू मत जा," शुभा सुबक कर रो दी।

"तू समझती क्यों नही, उसे जाना ही है," प्रभा ने कहा।

"एक लड़के का बन्दोबस्त हम कर दिया है, काम सम्भाल लेगा," स्वर्णा ने कहा।

"उससे क्या होगा !"

"वहाँ पहुंच कर अपना पता भेज देना," प्रभा ने कहा। भावुकता जाहिर न करने की कोशिश ने उसका स्वर रोज़मर्रा से ज्यादा कर्कश बना दिया था।

शुभा ने चौक कर उसकी तरफ़ देखा।

"क्या करेगा पता लेकर ?" स्वर्णा का स्वर भी कर्कश था।

"कभी घर से भागना पड़ा तो तेरे पास आऊंगी न," प्रभा ने कहा।

"भागेगा क्यों ?" स्वर्णा ने डपट कर कहा।

"किसी से प्रेम हो गया तो क्या करूंगी···भागना ही पड़ेगा।"

"चोप! क्या बोलता है। किससे प्रेम है तुमको?" स्वर्णा के आंसू सूख गए।

"है नही। मैंने कहा, जब होगा।"

"तो घर से भागेगा क्यों? ठीक आदमी देख कर प्रेम करना और सीधा आकर ममी को बोलना, समझा।"

"ओर जो वह उड़िया हुआ?"

"एई, हमसे मज़ाक करता है। उड़िया हो चाहे पंजाबी, प्रेम करेगा तो शादी करना होगा, समझा।"

"ठीक है उसे लेकर तेरे पास आ जाऊंगी। तू 'पास' कर देगी तो ठीक वरना ..."

"तू सचमुच नही आएगी?" शुभा ने फटे गले से कहा।

"हम नहीं," अब तू हमारे घर आना," स्नेह से थर्राते स्वर में स्वर्णा ने कहा, 'तेरे वास्ते हम खूब सुन्दर लड़का देखकर रखेगा कलकत्ता में···शादी करके तुम उधर रहना···तेरा बेटा होगा न···हम पालेगा···" कहते-कहते स्वर्णा और शुभा, दोनों फूट-फूट कर रो दी।

"टिकट मंगाना हो तो पैसे दो, मौसी," अनित्य ने ऊंची आवाज में कहा।

स्वर्णा रोना रोकने की कोशिश करने लगी।

"अभी गया तो खाने के वक़्त तक लौट आऊंगा वरना नाहक तुम्हें लेकर बैठे रहना होगा," अनित्य कहता गया।

स्वर्णा ने अपने पर क़ाबू पाकर धोती के पल्ले में बंधी गाँठ से पैसे निकाल लिये। पास आकर रुपये अनित्य के हाथ पर रखने लगी तो एकदम चौंककर बोल उठी, "इतना गन्दा कमीज़ पहन कर जाएगा!"

"गन्दी कहाँ है?" अनित्य ने अचरज से कहा, "कल तो पहनी है।"

"धोया ही गन्दा होगा," स्वर्णा ने कहा, "हमको दो। हम धोकर डाल देगा।"

"अब?"

"हां, उतारो अभी।"

"और टिकट लेने नंगा जाऊं?"

"नही, धूप में बैठो उतनी देर। टिकट कल लाना। दो जल्दी। ओ मां, इतना गन्दा कमीज़ धोकर दिया। पहनने में घिन नहीं आता···"

"कमाल है," अनित्य ने कहा, पर कमीज़ उतार कर उसे दे दी।

स्वर्णा बुड़बुड़ करती हुई उसे लेकर भीतर चली गई।

"ख़ब्त है ख़ब्त!" प्रभा ने कहा।

"स्वर्णा बहुत सफ़ाईपसन्द है," शुभा बोली, "साफ़ बात, साफ़ काम।"

"हां, मिलावट किसी चीज़ में पसन्द नही है। पता है चाचाजी, एक बार छाती के दर्द के कारण अस्पताल में भरती होना पड़ा तो क्या हुआ?"

"क्या ?"

"जनरल वार्ड के भीतर घुसते ही बोली, इतना गन्दा जगह में मानुष रहता कैसे है ? अस्पताल वालों ने कहा, यह जनरल वार्ड है, यहां गरीब आदमी आते हैं, लाट साहब नहीं। स्वर्णा ने फ़ौरन कहा, ग़रीब आदमी को गन्दगी में रहना होगा, यह कौन लाट साहब बोला ? अस्पताल वालों ने नाराज़ होकर कहा, इतनी नाज़ुकमिज़ाज हो तो करवा लो सफ़ाई। बस, स्वर्णा बिस्तर छोड़ झाड़ू-पोछा जमादार से छीन कर चालू हो गई। डांट-डपट, गाली-गलौज, जो ज़रूरत हुई, करके दो-चार कम बीमार मरीजों को साथ ले लिया और दो घण्टे के अन्दर पूरा वार्ड चमका कर रख दिया। अस्पताल वाले बेहद नाराज हुए। अच्छा, आप बतला सकते हैं, चाचाजी, वे लोग खुश होने के बजाय नाराज क्यों हुए ?" प्रभा ने कहा।

"स्वर्णा ने जो किया, बहुत खतरनाक था। ग़रीब आदमी एक बार अपने माहौल से उचट जाए तो खतरनाक हो उठता है।"

"पिताजी को फ़ोन करके उन्होंने कहा, अपने मरीज़ को आकर ले जाइए। उसने पूरे वार्ड का डिसीप्लिन खराब कर दिया है। पर इससे पहले कि पिताजी वहां पहुंचते, स्वर्णा ख़ुद आ पहुची, धमकाकर बोली, फिर जो कभी हमें अस्पताल भेजा तो देखना। हम मरेगा तो साफ़ जगह नहीं तो भूत बन कर भटकेगा। ज़रा सोचिए चाचा-जी, काली माई का भूत !"

"मैं सोच रहा हूं, गरीब आदमी की कमीज़ का क्या होने वाला है ?" अनित्य ने कहा।

"एकदम साफ़ हो जाएगी," शुभा ने कहा।

"आप गए काम से," प्रभा बोली, "इतनी साफ़ कमीज़ में कोई दोस्त आपका पहचानने से रहा।"

श्यामा के कमरे से बरामदे में टहलता हुआ अविजित वापिस बैठक में पहुंच गया।

"अरे, ऐसे कैसे बैठे हो ?" चकित स्वर में उसने अनित्य से पूछा।

"कमीज़ गन्दी थी," अनित्य ने कहा।

"तो दूसरी पहन लो।"

"आपकी अलमारी से ले लू ?" अनित्य ने पूछा।

उसके 'हां' कहने पर अनित्य उठकर चला गया पर अविजित वहीं ठहरा रहा। शुभा-प्रभा ने उसकी तरफ़ ध्यान नहीं दिया।

आखिर अविजित ने ही पुकार कर कहा, "शुभा...कॉफी पिएगी ?"

"नहीं," उसने अनमने स्वर में कहा।

अविजित फिर भी खड़ा रहा। शुभा का ध्यान उधर नहीं गया।

"आप पिएंगे ? बनवा दूं ?" प्रभा ने कहा।

"पी लेंगे," अविजित ने कहा।

उसके स्वर के विषाद ने प्रभा को छू लिया।

"मिर्च के पकौड़े तलवा लूं ?" तनिक हंस कर उसने कहा,"मेरे ख़याल से चाचा जी भी पसन्द करेंगे।"

"पिताजी !" सहसा शुभा फट पड़ी, "स्वर्णा अगले हफ़्ते जा रही है !"

"इतनी जल्दी···"

"आप उसे रोकेंगे नहीं ?" शुभा ने उलाहना देते हुए कहा।

"नहीं," अविजित की तरफ़ से जवाब प्रभा ने दे दिया। ख़ासे हठीले अन्दाज़ में।

दोनों लड़कियों ने एक साथ अविजित की तरफ़ देखा। उसकी समझ में नहीं आया किसकी बात पर मुहर लगाए।

कुछ देर रुके रह कर, उसने अनमने भाव से इतना ही कहा, "अच्छा···रहने दो पकौड़े···कॉफ़ी भी नहीं चाहिए···" और भटकता हुआ श्यामा के कमरे में पहुंच गया।

सुधांशु शुक्ल जी की गोद में सो चुका था। शुक्ल जी अभी भी गीता पाठ कर रहे थे पर फुसफुसाते मद्धिम सुर में। श्यामा की आंखें बन्द थीं—पता नहीं सो रही थी या वैसे ही लेटी थी। इतनी तन्मयता से 'आराम' कर रही है तो इसका मतलब है शाम को शादी में जाने का पक्का इरादा है। एक बार अविजित का मन हुआ ज़ोर से बोल कर या घर के किसी प्राणी को डाट-डपट कर उसके 'आराम' में विघ्न डाल दे। उसकी तबीयत तब जरूर ख़राब हो जाएगी और वह शाम को संगीता का सामना करने से बच जाएगा।

फ़ौरन उसने अपने को फटकार दिया और दबे पांव बरामदे में निकल गया।

फूल मालाओं और रंगीन बल्बों की क़तारों में मढ़े बगीचे के भीतर अविजित घुसा ही था कि अपने को संगीता के सामने पाया।

लाल जरी की लक़दक़ साड़ी के बीच जड़ा एक सफ़ेद चेहरा और उस पर दह-कती दो काली आंखें। कोयला, शोला और राख !

संगीता का रंग तो सांवलेपन पर था, इतना सफ़ेद कैसे हो गया ?

मुर्दों के चेहरे सफ़ेद पड़ जाया करते हैं···

···लाश घर में रखे मुर्दे देखने चलेंगे, अविजित जी, संगीता ने कहा था एक बार; मिट्टी की मूर्तियों की नुमाइश लगती है, बड़ा मज़ा आता है।

वह कांप उठा। पर मुर्दों की आंखें इस तरह जला तो नही करतीं।

दो काली गुफ़ाओं के अन्दर जल रहीं दो बेरहम मशालें···कितनी देर लगती है आदमी को जला कर राख़ कर देने मे।

अविजित ने महसूस किया, संगीता की आंखें सिर से पैर तक उसके शरीर पर घूमी है और लौट कर उसके चेहरे पर टिक गई है। बदन के तमाम कपड़े तार-तार हो झड़ गए है और वही, रंगीन बल्बों की रोशनी के नीचे, वह एकदम नंगा खड़ा है···

गरम सलाखों की तरह संगीता की निगाहें उसकी आंखों में घुसी जा रही हैं···

चारों तरफ़ फैली भीड़ उसका तमाशा देख रही है और वह खुद···धीरे-धीरे, कुछ भी देख पाने के नाकाबिल होता जा रहा है···

उन आंखों से बचने का एक ही उपाय है···फ़ौरन उसे यहां से भाग जाना चाहिए !

झटके से उसने अपने बदन को मोड़ा···

वाकई वह भाग खड़ा होता अगर श्यामा के हाथ ने उसके हाथ में जुम्बिश न खाई होती।

याद आ ही गया, वह तो श्यामा को सहारा दिये खड़ा है, भागेगा कैसे ?

सामने कोच पर संगीता अकेली नहीं बैठी। बराबर में सिर पर सेहरा बांधे एक पुरुष भी है। दोनों के गलों में भारी फूल-मालाएं पड़ी हुई हैं। वही तो···जयमाल पड़ चुकी। उस वक़्त की भीड़-भाड़ से श्यामा को बचाए रखने के ख़याल से ही तो वे लोग कुछ देरी करके शादी के घर में घुसे हैं।

यह शादी का घर है।

संगीता की शादी हो रही है।

लाल ज़री की साड़ी में लिपटी संगीता दुल्हिन बनी बैठी है।

उसे अपनी आंखें झुका कर रखनी चाहिए। दुल्हिनों के लिए यही क़ायदा है··· इस तरह अविजित के चेहरे पर उन्हें गड़ाये रखना···

"बेचारा !" श्यामा ने कहा।

"क्या ?" चौंक कर अविजित ने उसकी तरफ़ देखा। नहीं, वह उसे नहीं, सामने देख रही है।

"कौन ?" अविजित ने पूछा।

"वही। संगीता का पति।"

अब जाकर अविजित ने सेहरा बांधे उस पुरुष को देखा जो संगीता के बगल में बैठा है।

हां, वाक़ई कुरूप है। काला और मोटा, जैसे संगीता ने बतलाया था। कोच पर ढीले बदन को फैला कर बैठा है और छोटी किचमिची आंखों से संगीता को देख रहा है।

"बेचारा वह है या संगीता ?" बेसाख़्ता उसके मुंह से निकला।

"इतना प्यार नहीं करना चाहिए," श्यामा ने कहा।

अविजित उसे देखता रहा।

"बहुत भयानक होता है," श्यामा ने फिर कहा।

"किसकी बात कह रही हो ?"

"उसी की।"

"तुम उसके बारे में क्या जानती हो ?"

"उसके चेहरे पर जो दीख रहा है वही कह रही हूं।"

इस बार अविजित ने ग़ौर से देर तक उसे देखा पर एक रूपविहीन चेहरे के अलावा कुछ नहीं दिखा। भारी काले चेहरे पर मोटे-मांसल लाल ओंठ, चौड़ा जबाड़ा, फैली हुई चपटी नाक और छोटी मिचमिची आंखें; इन्हें भेद कर श्यामा उस आदमी के कहां, कैसे पहुंच गई?

"बहुत ही बदसूरत आदमी है," वितृष्णा के साथ अविजित ने कहा।

"हां···वह तो है," श्यामा ने ऐसे कहा जैसे बिल्कुल महत्वहीन बात हो। फिर बोली, "सगीता को इससे शादी नही करनी चाहिए थी।"

"वही तो···"

"बहुत बड़ी क़ीमत अदा करनी पड़ेगी।"

"किसे?"

"उसे, संगीता को।"

"कैमी क़ीमत?"

श्यामा कुछ देर चुप रही; जब बोली तो उसका स्वर भारी था, आंखें भर आई थी।

"बलिदान लो तो देना भी पड़ता है," उसने कहा।

किसकी बात कर रही है वह? कभी-कभी ऐसी बात कर उठती है श्यामा कि सिर-पैर समझ में नही आता और आता है तो···आदमी समझना नही चाहता, कम-अज-कम अविजित।

तभी अनित्य ने आगे आकर श्यामा की दूसरी बांह थाम ली, बोला, "चलो, चल कर कुछ खाएं।"

"अरे," श्यामा मुस्करा दी, बोली, "हम क्या यहां खाने आए है?"

"और किसलिए आए हैं? शादी तो उनकी हमारे बग़ैर भी हो सकती है।"

"बधाई तो दे दें।"

अविजित ने देखा, अनित्य श्यामा को सहारा दिये हुए हैं। उसने अपना हाथ उसकी कुहनी के नीचे से निकाल लिया। श्यामा ने और मुस्तैदी से अनित्य के सहारे को सम्भाल लिया।

"चलो," अविजित ने कहा, "इनकी बेसिर-पैर की बातों मे बधाई देना ही रह गया।"

पर कह कर वह आगे नहीं बढ़ा। अनित्य और श्यामा को निकल जाने दिया। आज श्यामा के पीछे रहना ही ठीक है।

"बधाई," संगीता के पास पहुंच कर श्यामा ने कहा।

"शुक्रिया," संगीता ने उसका हाथ अपने हाथ में ले कर सहज भाव से कहा, "और आने के लिए और भी शुक्रिया।" फिर पति से परिचय कराती हुई बोली, "ये

श्यामा जी हैं और ये···"

"बधाई, सुरेश जी," बीच ही में श्यामा ने मृदु कण्ठ से कहा।

सुरेश ने नमस्कार में हाथ तो जोड़ दिये पर नज़रें उठाकर उसकी तरफ़ नहीं देखा, पहले की तरह संगीता को ही देखता रहा।

"ये···अनित्य···याद है ?" श्यामा ने अनित्य की तरफ़ इशारा किया।

संगीता ने चौंक कर अनित्य को देखा और पहचाना। उसकी आंखों की लपट बुझ गई और वे नीचे झुक गईं।

अविजित ने कुछ आश्वस्त महसूस किया।

अनित्य और श्यामा एक तरफ़ को खिसक गए। अविजित संगीता के सामने पड़ गया।

"बधाई," झुकी हुई आंखों का फ़ायदा उठा कर अविजित ने जल्दी से कहा और श्यामा के पीछे पलट जाने को तैयार रहा।

झटके से संगीता का मुँह ऊपर उठा। काली गुफ़ाओं के मुँह से पत्थर हट गए। लाल मशालें भभक उठीं।

"आपको भी !" उसने कहा।

घबरा कर अविजित ने सुरेश की तरफ़ देखा। उसके चेहरे पर कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। आंख उठा कर उसने अविजित की तरफ़ ताका भी नहीं। पर संगीता के चेहरे से हट कर उसकी दृष्टि गोद में पड़े उसके हाथों पर जा टिकी। उसका अपना एक हाथ उठा और कुछ देर संगीता के हाथों के ऊपर फडफड़ाता रहा पर···उन पर उतरा नहीं···मायूस-सा, क्षण-भर बाद लौट गया···

···अविजित की गदराई हथेलियों में संगीता के दोनों हाथ क़ैद हो गए। अपनी पूरी ताक़त लगाकर उसने उन्हें मसल डाला। फिर हाथ पीछे खींचकर पतली कमान-सी तनी उसकी देह को बाजुओं में भींच लिया। अपनी छाती पर उसकी छाती का दबाव महसूस किया। उसकी बढी हुई धड़कन की धमक से पागल हो उठा वह। अपना चेहरा उसने नीचे नहीं झुकाया, उसी का मुंह खींच कर ऊपर उठा लिया। ओंठ उसके अपने आप खुल गए। अपने ओठो और ज़बान से उसने उन्हें छेद डाला···संगीता ने बाधा नहीं दी···एक बार भी 'नहीं' कह कर उसे रोका नहीं। उसके मुर्दा चेहरे पर जलती दो आंखें उसे तब तक उकसाती रहीं जब तक उसके शरीर का उद्दाम आवेग···

"चलना नहीं है, भाई साहब ?" अनित्य ने कहा।

चौक कर अविजित ने अपने चारों तरफ़ देखा।

सगीता कोच पर बैठी है। अविजित सामने खड़ा है। आस-पास लोगों की भीड़

मंडरा रही है। कुछ लोग भीड़ से कट कर आगे बढ़ते है, संगीता को बधाई देते हैं और फिर भीड़ में शामिल हो जाते हैं। इस प्रवाह को अवरुद्ध करता अविजित संगीता के सामने खड़ा है। ख़तरे से ख़ाली दूरी पर।

दस साल बीत चुके···

"हा हां, चलो," लज्जित स्वर में उसने कहा और बधाई देने वालो के लिए जगह छोड़ कर उनके पीछे चल दिया।

दस साल बीत चुके !

संगीता उसकी गोद में नही बिछी।

सामने कोच पर सीधी तनी बैठी है। उसकी शादी हो रही है।

अनित्य ने गरम कॉफ़ी का प्याला लाकर उसे पकड़ा दिया उसने देखा, श्यामा को अनित्य ने आरामकुर्सी पर बिठला दिया है, हाथ में चाय का प्याला भी पकड़ा दिया है। वह ठीक-ठाक है। अनित्य उसकी देखभाल कर लेगा। अविजित दूर जा सकता है।

अपना प्याला ले कर वह बगीचे की दूसरी तरफ़ निकल गया।

क्या कर सकता है आदमी, अगर कोई औरत, संगीता जैसी औरत खुद आ कर उसकी गोद में गिर पड़े; उसके शरीर को बाहों में जकड़ ले; वक्ष से सटा ले और···एक बार भी 'नही' न कहे !

उसके शरीर का भूखा जानवर···

जानवर, हां, और भूखा···

सहसा उसका मन श्यामा के प्रति क्षोभ से भर उठा।

बादलों से बनी औरत के साथ कोई जानवर कितने दिन भूख दबाए रह सकता है। भूख लगने पर ग्लानि; भूख दबाने पर क्षोभ।

श्यामा का दृढ़ विश्वास था कि मां बनने की तैयारी में व्यस्त औरत शरीर से प्रेयसी नहीं बन सकती···ऐसे समय की तो जानवर भी इज्ज़त करते है, वह अक्सर कहा करती थी। खोखी का जन्म हुआ तो वह बीमार पड़ गई और छह महीने तक बिस्तर पर से नहीं उठी। कम सेवा तो नही की अविजित ने···

उन दिनों संगीता डाक्टरी पढ़ रही थी। कोशिश करके अविजित ने उसे मैडिकल कालेज में दाखिला दिलवा दिया था। उसकी भी कम मदद तो नही की उसने। तीसरे-चौथे दिन हॉस्टल से घर ले आता था। श्यामा को उसका गाना सुनना बहुत अच्छा लगता था। उसमें उसका अपना तो कोई स्वार्थ था नही। संगीता श्यामा को गाना सुना रही होती तो वह उन्हें छोड़ कर बाहर भी हो आता था। अगर श्यामा संगीता का भार खुद उठा लेती तो अविजित को उससे सम्बन्ध रखने की जरूरत क्या रहती। वह खुशी खशी उसकी सब चिन्ता श्यामा पर छोड़ देता। पर श्यामा किसी के लिए कुछ करने-लायक़ थी कहा ? हमेशा, हर क़िस्म का बोझ अविजित को ही उठाना पड़ा है। हर

आदमी उचके कन्धों पर अपनी ज़िम्मेवारी फेंक, निश्चिन्त हो रहा है।

संगीता की मां ! एक बार जो लडकी की सुध ली हो।

और अनित्य ! संगीता की ज़िम्मेवारी वह भी तो उठा सकता था। उससे शादी कर लेता तो हर मुश्किल आसान हो जाती···

अपने सोच पर अविजित फ़ौरन ही ग्लानि से भर उठा। ज़रूरतमंद होने से ही क्या कोई किसी से शादी कर लेता है। मदद करने के और भी तरीक़े है।

आदमी और औरत के बीच आदान-प्रदान का सिर्फ वही रास्ता तो नही होता।

सच···मैने संगीता के ज़रूरतमंद होने का फ़ायदा नहीं उठाया। क्या कर सकता है आदमी, अगर कोई औरत, संगीता जैसी औरत खुद पहल करके उसके शरीर के जानवर को उसकी तेज़ भूख की याद दिलवा दे ?

मैं बिल्कुल सच कह रहा हूँ, अनित्य !

"भाई साहब।"

उसने देखा, अनित्य सामने खड़ा है !

"भाभी घर जाना चाहती है," वह कह रहा है।

अविजित ने जवाब नही दिया।

"वे चाहती है, संगीता के फेरों पर बैठने से पहले ही उससे विदा ले लें।"

फिर भी अविजित कुर्सी छोड़ कर नहीं उठा।

"भाभी आपको बुला रही हैं," अनित्य ने फिर कहा।

"क्यों ?"

"संगीता से विदा लेनी है।"

"तो उसमें मै क्या करूँगा ?" उग्र स्वर में उसने कहा।

अनित्य कुछ देर चुप रहा, फिर धीमी आवाज में बोला, "चलना तो पड़ेगा ही, भाई साहब।"

उसकी तरफ़ देखते ही अविजित ने नज़रें झुका ली और उसके पीछे चल दिया।

"तुम कहां चले गए थे ?" देखते ही श्यामा ने कहा, "कितने लोग मिले, तुम्हें पूछ रहे थे···"

"यही तो था···लोग मिलते रहे···"

वह जानता है, एक कोने में जाकर बैठ न गया होता तो जान-पहचान के लोग बराबर उसे घेरे रहते।

जान-पहचान के लोग ! जो हमें जानते हैं पर पहचानते नही; जिन्हें पहचान लेने पर शायद हम उन्हे जानना न चाहे। बहुत तसल्लीबख्श होता है ऐसे लोगों का चन्द लम्हों का साथ।

श्यामा को साथ लिये, अपनी तेज़ चाल को ज़बरदस्ती उसके लायक़ सुस्त

बनाए, वह संगीता के पास चला जा रहा है और जान-पहचान के लोग मिल रहे हैं। ऊंचे ओहदों वाले भद्र लोग। लगता है, सगीता के पति की आमद शहर के बड़े लोगों में खूब है, यूंही अविजित के मन में उठा है···

"हलो मिस्टर बंसल !" लोग कहते हैं और, "कैसी है आप मिसेज़ बंसल ?"

पहले वाक्य में आह्लाद रहता है, दूसरे में करुणा।

अविजित सिर्फ़ पहले पर ध्यान देता है।

वे लोग संगीता के सामने खड़े है और मिसेज भण्डारी कह रही हैं, "हलो, मिस्टर बंसल, आज बड़ी देर बाद दीखे आप। आप न हों तो पार्टी का मज़ा खराब हो जाता है···ओह···मिसेज बंसल भी है आज साथ···आपकी बीमारी के बारे में सुनते रहते हैं···अब ठीक है तबीयत ?"

वे श्यामा की तरफ़ मुड़ गई है।

"हां," श्यामा ने पूरी हामी नहीं भरी है।

"सच, आप हैं बहुत खुशकिस्मत," मिसेज भण्डारी कह रही है।

"खुशकिस्मत ?" श्यामा ने अचरज से उसकी तरफ़ देखा है।

बाक़ी लोग भी चौकन्ने हो गए हैं।

"हां भई, कितने आदमी हैं जो मिस्टर बंसल की तरह बीमार बीवी की देखभाल करते रह सकते हैं।"

"वह तो है," श्यामा ने छोटी-सी आवाज़ में कहा है।

"मज़े हैं आपके। आराम से बिस्तर पर पड़े-पड़े सेवा कराते रहो। यहां तो एक दिन को लेट जाएं तो···"

"तो क्या ?" संगीता ने बात काट दी, "आप मौक़ा तो दीजिए अपने पतिदेव को। चलिए, कल ही आपको अस्पताल में भरती कर लेती हूं।"

मिसेज भण्डारी हंस दी।

"हंसने की बात नही है, मिसेज भण्डारी, "संगीता ने कहा, "मुझे यकीन है आपको कोई घातक बीमारी जरूर है। कल ही अस्पताल में भरती हो जाइए, चैक-अप हो जाएगा।"

"नहीं···मैं···"

"नही क्यों ? खुशकिस्मत होने का ठेका अकेले मिसेज बंसल ने तो नहीं ले रखा।"

श्यामा ने एक कृतज्ञ दृष्टि संगीता पर डाली पर उसकी निगाह अविजित पर टिकी हुई थी।

"आप कभी लखनऊ गई हैं, मिसेज भण्डारी ?" अनित्य ने पूछा।

"जी ?···नहीं तो···"

"तभी !" अनित्य ने जोर दे कर कहा।

"जी ?"

"…नही जानतीं कि बरसों से पूरा शहर लखनऊ भाईसाहब की किस्मत पर रश्क करता आ रहा है, क्यों भाई साहब ?" अनित्य ने तौल कर सवाल अविजित की तरफ़ फेंका।

"खुशकिस्मत तो मैं हूं, मिसेज़ भण्डारी," यंत्रचालित-सा अविजित के मुंह से निकला।

यह आपको बहुत पहले कहना चाहिए था, अनित्य ने कहा नहीं तो क्या हुआ।

श्यामा की आँखों में आंसू छलछला आए।

"चलूंगी अब," उसने संगीता से कहा।

संगीता ने उसके हाथ एक बार फिर अपने हाथों में लेकर भीच लिये और स्नेहिल स्वर में बोली, "मुझे भूल मत जाइएगा, श्यामाजी। किसी दिन अचानक गाना सुनाने आ पहुँचूं तो सुनेंगी न ?"

"ज़रूर," रुंधे कण्ठ से श्यामा ने कहा।

फिर सहसा, अपना मुँह करीब-करीब उसके मुंह से सटा कर, गहरी आस्था के साथ कह उठी, "संगीता, सुरेश जी का खयाल रखना।"

अविजित बुरी तरह कुंठित हो गया। क्या कहना चाहिए, क्या नहीं, सोच कर तो बोलती ही नहीं यह श्यामा। बस, जो मन में आया, कह डाला।

"चलो अब," रूखे स्वर मे उसने कहा।

संगीता ने कुछ नहीं कहा। चुपचाप बैठी सामने ताकती रही।

उसके चेहरे पर अजीब-सा भय तैर गया।

१२

श्यामा से रहा नहीं गया।

गाड़ी में घर लौटते हुए एक बार फिर बोल उठी, "संगीता ने यह ब्याह करके ठीक नही किया।"

अविजित चुप रहा।

"बेचारी के मां नहीं है, बाप नहीं है…कोई राय देने वाला होता…"

"तुम दे देतीं, "अविजित ने कटु स्वर में कहा कि अनित्य पिछली सीट से बोल पड़ा, "मां के लिए परेशान मत हो, भाभी। रहतीं तो इस ब्याह से खुश ही होतीं। लडका मालदार और इज़्ज़तदार तो हो पर दुनियादार न हो, इससे बढ़िया रिश्ता कहां मिलेगा?"

"सुरेश जी के लिए ही तो दुख है मुझे," श्यामा ने धीमे से कहा, फिर एकाएक उत्तेजित होकर बोली, "पंडित शर्मा ने उसकी मां के साथ अन्याय किया, इसी से क्या किसी तीसरे आदमी को सज़ा दी जाएगी !"

अविजित और अनित्य अवाक् रह गए।

कुछ ठहर कर अनित्य ने मासूमियत से पूछा, "कौन पंडित शर्मा ?"

"रहने दो," श्यामा बोली, "मैं सब जानती हूं।"

"हां, महान् नेता थे," अनित्य ने कहा।

"थे। तो ?"

"सुना है, उन्हें जेल में धीरे-धीरे जहर दिया गया था। छूटने के बाद बेचारे ज़्यादा दिन जिये नही। शहीद हो गए।"

"तो तुम संगीता की मां को क्या करने उनके पास ले गए थे?" श्यामा ने कहा।

"फिर कहा ले जाता ? तुम पहले कहती तो तुम्हारे पास छोड़ देता।"

"मुझसे तुमने पूछा कब ? संगीता और उसकी मां दोनो मेरे पास रह सकती थीं।"

"हर ऐरे-गैरे को इस तरह घर में नही रखा जा सकता," कर्कश स्वर में अविजित बोल उठा और एक्स्लरेटर पर उसके पांव का दबाव बढ़ गया।

श्यामा चुप होकर उसके कठोर चेहरे को देखने लगी।

गाडी की रफ्तार बढ़ती चली गई···

अचानक श्यामा चीख पड़ी, "इतनी तेज़ गाड़ी मत चलाओ। मेरा दिल घबराता है !"

'सॉरी' कह कर अविजित ने गाडी धीमी कर ली और कोशिश करके मुस्करा भी दिया। कोमल स्वर में उसने पूछा, "थकी तो नही ?"

"थक तो गई। बहुत हो गया आज," श्यामा ने फ़ौरन कहा और आंखे बन्द कर के निढाल-सी सीट पर लुढ़क गई।

गाड़ी के अन्दर चुप्पी छा गई।

कितनी खौफ़नाक होती है यह चुप्पियां।

पल-भर में आदमी दस-बीस बरस का सफ़र तय कर लेता है। अनचाहे।

अविजित को महसूस हो रहा था, अनित्य की आंखें उसकी पीठ में गड़ती चली जा रही है। उसके फेफड़ों को भेद कर उन दृश्यों को आंखों के सामने खोल रही हैं जिन्हें देखने से वह हमेशा कतराता रहा है।

"पंडित यज्ञदत्त शर्मा तो खाला को पहचान नही पाए," अनित्य ने मेरठ से लिखा था।

दस बरस पहले···

"शर्मा जी नही पहचान पाए," अनित्य ने लिखा था, "पर उनका नौकर रामू ज़रूर पहचान गया। कोठी के फाटक से बाहर निकले ही थे कि उसने आकर खाला का दामन थाम लिया। कहने लगा, उसके साथ चली चलें, उनके रहने का इन्तज़ाम हो जाएगा। शहर की साफ़-सुथरी बस्तियों से हटकर पंडित जी की एक और कोठी है जिसके पिछवाड़े पांच-छह छोटी-छोटी कोठरिया बनी हैं। एक में रामू रहता है, बराबर वाली खाली पड़ी है। खाला उसमें मज़े से रहें, रामू सब देख लेगा। उसने इस कदर आरज़ू-मिन्नत की कि खाला राज़ी हो गई। उनका कहना है कि मालिक की रज़ामन्दी के बग़ैर नौकर उन्हें नही पहचान सकता। बात मुझे भी जंच गई और मैं उन्हें वहां छोड़ कर लखनऊ चला आया हूं।"

'दो-तीन दिन जो वहां रहा तो देखा कि रामू खाने-पीने का सामान जुटा देता है···खाला ने कहा, भगवान खुद नहीं देते किसी के हाथ से दिलवा देते है। उन्हें तो यहां तक इत्मीनान है कि पंडित शर्मा उन्हें अपने वसीयतनामे के भरोसे न छोड़ कर, पहले ही, लड़कों की चौकीदारी से बचा कर एक मोटी रक़म भिजवा देंगे।" लखनऊ पहुंच कर अनित्य ने लिखा था।

इससे पहले कि शर्मा जी कुछ करते उनका इन्तक़ाल हो गया। सुना गया था कि ब्रिटिश सरकार ने जो कोर-कसर छोड़ी थी, लड़को ने पूरी कर दी और जेल से रिहा होकर घर आने के एक महीने के अन्दर वे चल बसे।

"शर्मा जी के बड़े लड़के हरिदत्त शर्मा बहुत-ही गुस्सैल आदमी मशहूर है," अनित्य ने लिखा था, "सुनते है, मोटर गाड़ी इतनी रफ़्तार से चलाते हैं कि उनके डर से बाज़ार की तंग-से-तंग गली भी चौड़ी सड़क बन जाती है।"

···शर्मा जी के बारे में श्यामा कितना जानती है···कैसे जानती है···कभी ठीक से पता नहीं चल पाया···

शर्मा जी के मरने के बाद खाला के सिर फ़ितूर चढ़ गया···रामू ने गोपनीय खबर जो ला दी कि उनकी वसीयत में बेटी का नाम है···बस वह शहर-भर में उसका बखान करती घूमने लगीं। जैसे शहर की जनता आवाज़ उठा कर उनका हक़ उन्हें दिलवा देती !

संगीता ने कई बार उन्हें रोकने की कोशिश की पर वे बाज़ न आईं। वैसे शायद रामू के पास शर्मा जी थोड़ा-बहुत पैसा छोड़ गए थे क्योंकि छह महीने तक संगीता की मां की गुज़र-बसर होती रही।

फिर···अनित्य की चिट्ठी मेरठ से आई थी।

"कल रामू की चिट्ठी से पता चला कि बेग़मपुल पार करते हुए खाला मोटर गाड़ी से टकरा गई। मैं मेरठ पहुंच गया हूं। हालत उनकी खराब है। आप संगीता को लेकर चले आइए, खाला के बचने की उम्मीद नही है···मोटर गाड़ी किसकी थी इसका अन्दाज़ लगाना जितना आसान है, साबित करना उतना ही मुश्किल···"

संगीता को लेकर अविजित मोटर गाड़ी से मेरठ चल दिया था। दुर्घटना की खबर पाकर संगीता एकदम पगला गई थी। पहली बार अविजित की समझ में आया था कि अपनी मां का पूरा इतिहास जानते हुए भी लड़की को उस पर कितना मोह है। पंडित शर्मा से ताल्लुक़ात को वह बुरी नजर से नही, इज्ज़त से देखती है। कितने लोग हैं जो इतना गहरा तर्कहीन प्यार कर सकते हैं, एक दिन उसने कहा था···नहीं, उसने नहीं, वह तो श्यामा ने कहा था···नहीं, श्यामा ने तो संगीता के लिए कहा था, 'हे भगवान, प्यार करने की कितनी ताक़त है इस लड़की में।' क्यों कहा था···कब कहा था···याद नही आ रहा···

"मां को बहुत चोट आई है, अविजित जी ?" रास्ते में संगीता ने पूछा था।

"हां, आई तो है," कोमल स्वर में उसने कहा था।

संगीता ने अपनी गीली काली आंखें उसके चेहरे पर टिका दी थी। उस दिन व्यंग्य, उपहास, आहत अहम्, कुछ नहीं था उनमें।

अविजित देखता रह गया था। व्यंग्य तो उनकी स्थायी प्रकृति है।

अविजित फ़ीस के रुपए उसके हाथ पर रखता···

"शुक्रिया," वह कहती।

"शुक्रिया की क्या बात है। तुम डाक्टर बनोगी तो मुझे तुमसे कम खुशी नहीं होगी," वह कहता।

उसकी आखे भक से जल उठती···रहने दीजिए अपनी उदारता, डाक्टर बनते ही आपका कर्ज़ा उतार दूँगी, आखें कहती और झुक जाती।

ज़बान उसकी फिर कहती, "शुक्रिया।"

इससे तो साफ़-साफ़ कह दे जो मन में है। अविजित तिलमिला कर रह जाता।

एक दिन तो कह भी डाला था।

"अविजित जी," उसने कहा था, "एम. बी. बी. एस. की डिग्री मिल जाएगी तो सब पैसा धीरे-धीरे करके लौटा दूंगी।"

"इससे तो अच्छा रहेगा," अविजित ने कहा था, "तुम किसी और ज़रूरतमंद की मदद कर देना।"

"जरूरतमंद! मदद! नही, अविजित जी, बड़े लोगों का यह शौक़ मेरे बस का रोग नही है," सगीता ने तल्खी से कहा था।

अजीब लड़की है, अविजित सोचता, मदद मागेंगी भी और शालीनता से लेगी भी नही।

अनित्य ने सुझाव दिया था कि संगीता के नाम बैंक में रुपए जमा कर दिये जाएं, ज़रूरत पड़ने पर हर महीने वह निकाल लिया करे। पर अविजित नही माना था। इस तरह···दिल्ली जैसे शहर में···कम-उम्र लड़की को छोड़ देना मुनासिब जो नही था।

उससे सम्पर्क रख कर अविजित उसी का भला करना चाहता था पर वह लड़की···

अविजित कहता, घर चलो, तुम्हे श्यामा याद कर रही है, तो कहती, चलिये पर आंखें उठती और वार कर जाती—साफ़ क्यों नही कहते मुजरा करने चलो। पर बीमार श्यामा के पास आते ही संगीता एकदम बदल जाती। श्यामा उन दिनों वाक़ई बहुत बीमार थी···खोखी का जन्म हो कर चुका था···

चहक कर संगीता उससे कहती, अभी पांच मिनट में तबीयत ठीक करती हूं आपकी···अच्छा बतलाइए मैं क़ाबिल डाक्टर बनूंगी या नहीं···आप सर्टिफ़िकेट दे दे तो समझिये मैं फ़र्स्ट ड़िवीजन में पास···अच्छा, श्यामा जी, आप नहीं सोचती हर नर्स-डाक्टर के लिए गाना सीखना ज़रूरी होना चाहिए···सच कहिए, मेरा गाना सुनकर तबीयत हल्की हुई कि नहीं···

उसका ऐसा रूप देखने को मिलता तो अविजित मुग्ध रह जाता···इतनी मासूम भी लग सकती है यह लड़की!

कभी-कभी···पता नहीं कब और कैसे वे क्षण उभर आते थे···अविजित देखता, संगीता मुग्ध भाव से उसी को देख रही है···

एक दिन पूछ बैठा था, "क्या है, क्या देख रही हो?"

लजा कर उसने मृदु कण्ठ से कहा था, "आपकी शक्ल शर्मा जी से बहुत मिलती है। एक चित्र है उनका मेरे पास, देखेंगे ?"

चित्र दिखलाते हुए वह एकदम नन्हीं-प्यारी-सी बच्ची दीख रही थी।

अविजित हंस पड़ा था।

स्नेह से कहा था उसने, "मेरी कहां, तुम्हारी मिलती है।"

फ़ौरन संगीता का व्यंग्य सान चढ़ गया था।

"लावारिसो की शक्लें किसी से नही मिला करती, अविजित जी," उसने कहा था।

अविजित समझ नही पाता था वह आखिर चाहती क्या है।

श्यामा उसके गाने की तारीफ़ करती तो खूब खुश होकर कहती, "अपनी मा से सीखा है मैंने। वे मुझसे भी अच्छा गाती है।"

अविजित तारीफ़ करता तो कभी खुश होती तो कभी तड़ से कह डालती, "बड़े लोगों को खुश करने लायक़ एक ही तो हुनर है हमारे पास।"

कभी देखती तो लगता, प्रभा या शुभा की तरह निर्मल दृष्टि है, यह लड़की बस थोड़ा-सा स्नेह चाहती है। कभी देखती तो लगता इस लड़की ने सिर्फ़ नंगे आदमी देखे हैं, इसके सामने किसी की कोई मान-मर्यादा नही है।

फिर भी···शिद्दत के साथ अविजित उन लम्हों का इन्तज़ार करता जब उन आंखों से व्यंग्य का धुआं छंट जाएगा और मुग्ध परिचय का दीया जल उठेगा···

उस दिन···अविजित ने देखा···उसकी आंखो में न व्यंग्य है, न उपहास और न आहत अहम् की घुटन। इतना गहरा भय उन्हें मथ रहा है कि अविजित से भी बर्दाश्त नही हो रहा।

मन की करुणा और सहानुभूति को अभिव्यक्ति देने के लिए सांत्वना के शब्द उसे बहुत कमज़ोर लगे थे। हाथ फैलाकर उसने उसका कन्धा थपथपा दिया था और उसे अपने पास आ जाने दिया था। उसका हाथ वापिस 'स्टीयरिग व्हील' पर चला गया था। पर संगीता पास ही बनी रही थी।

मेरठ अस्पताल के अहाते में जाकर गाड़ी खड़ी हुई थी तो डरी-सहमी सगीता को अनायास ही वह हाथ का सहारा दे उठा था। संगीता ने उसका हाथ कस कर पकड़ लिया था और 'इन्टेन्सिव केयर वार्ड' में मां के बिस्तर के पास पहुंच कर भी नही छोडा था।

वार्ड के बाहर बेंच पर अनित्य बैठा था। उसे देखकर सहज प्रतिक्रियास्वरूप अविजित ने हाथ छुड़ा लेना चाहा था पर संगीता ने पकड़ ढीली करने के बजाय और सख्त कर ली थी।

अनित्य ने तो खैर उस तरफ़ देखा तक नहीं था।

संगीता की मां बेहोश पड़ी थी।

"कोमा में है," डाक्टर ने सपाट स्वर में कहा था।

अविजित का हाथ जेब में गया था और कई नोट थामे बाहर आ गया था।

"जो कुछ सम्भव हो, कर देखिए डाक्टर साहब," उसने कहा था।

डाक्टर ने सिर हिला दिया था।

"ऐसा कुछ नहीं है," उसने कहा था, "जो पैसों से सम्भव बनाया जा सके। दुआ कीजिए, एक बार कोमा से बाहर आ जाएं तब शायद···दवा काम कर जाए।"

रात में अस्पताल में रहने की अनुमति किसी को नहीं मिली थी। फिर भी अनित्य वहीं रह गया था। वार्ड के आगे काफ़ी बडा खुला अहाता था।

"इतनी आरामदेह जगह मेरे लिए मेरठ में और कहां मिलेगी?" उसने कहा था। पर संगीता को वहां छोड़ने की कोई तुक नहीं थी क्योंकि भीतर उसे जाने दिया नही जाता।

अविजित उसे लेकर उसकी मां के घर चल दिया था।

उसका पक्का इरादा था कि संगीता को वहां छोड़कर वह ख़ुद अपनी सौतेली मां के घर जा टिकेगा। अनित्य को जो आपत्ति हो, उसे वहां रहने में कोई दिक़्क़त नही थी।

पर···

"चलूं?" उसने कहा ही था कि कमरे की बत्ती जलाती हुई संगीता एकदम मुड़ी और आकर उसके गले में झूल गई।

"मां बचेंगी नहीं," उसने सुबक कर कहा।

अविजित ने देखा, वह उसकी बाहों में जकड़ी उसकी छाती से चिपकी हुई है।

उसके शरीर में आग लग गई।

फिर भी उसने कहा, "धीरज रखो," और कोशिश की कि उसे अपने से अलग कर दे।

संगीता ही जोर करके उससे चिपटी रही।

उसे बाहों में थामे-थामे अविजित कुर्सी पर बैठ गया।

वह उसकी गोद में बिछ गई।

छाती से हट कर उसके उरोजों का स्पर्श घुटनों पर आ गया।

"अविजित जी, प्लीज़, मुझे अकेला छोड़ कर मत जाइए," उसने कहा।

बेवकूफ़ लड़की!

असहाय अविजित!

उसके भय-जड़ित शरीर को उसने इस तरह ऊपर खीच लिया कि चुम्बन लेने के लिए झुकना नहीं पड़ा।

उसे ठीक से याद नहीं···शायद उसके ओठों की कड़ी गिरफ़्त में आने पर संगीता

चौंक उठी थी और उसे परे धकेलने की कोशिश भी की थी उसने, पर···

···बहुत देर हो चुकी थी।

अविजित का आलिंगन अब छटपटाने तक की छूट नहीं दे रहा था।

आंख खुलने पर पल भर भी वहां टिके रहना असम्भव हो गया था। अविजित भाग खड़ा हुआ था। पर भाग कर जाता कहां···जाने क्यों क़दम अस्पताल की तरफ़ बढ़ गए थे अनित्य था वहां। शायद मन मे लालच था कन्फ़ेशन का। बची-खुची रात अस्पताल के अहाते मे बीत गई थी। भरपूर एकान्त मे अनित्य साथ था पर कन्फ़ेशन हो नहीं पाया था। दिन चढ़ने पर अविजित फिर भाग खड़ा हुआ था और शाम घिरने पर क़दम दुबारा अस्पताल लौट आए थे···

पता चला था, दोपहर बाद संगीता की मा की मृत्यु हो गई।

मन में आया था, एकदम सीधा दिल्ली भाग जाए।

अनित्य है न, पहुंचा देगा संगीता को।

पर—क़दम फिर धोखा दे गए···

एक चाहत थी···उसी कोठरी मे पहुंचा दिया उसने, जहां रात···

छोटी-सी कोठरी के अनुपात मे ही लोग लाश के पास जमा थे; संगीता, अनित्य और शायद रामू का परिवार।

संगीता ने उसे देखा···लस्त-पस्त-सी उठी और पागलो की तरह भाग कर उस से आ लिपटी।

"मां गई। मां गई।" सुबक-सुबक कर वह कहती रही।

सांत्वना देने को उसके हाथ नही उठे पर शरीर में वही चाहत ज़ोर मार गई।

अनित्य ने सिर्फ़ एक बार उसकी तरफ़ देखा···देर तक।

अविजित को लगा, कन्फ़ेशन हो गया।

संगीता को अपने से अलग करके उसने अनित्य से कहा, "तुम भी मेरे साथ दिल्ली चलो।"

अनित्य चला आया था पर उससे क्या होना था···

अविजित संगीता के पास हॉस्टल जा पहुंचा था।

"मै तुम्हारा क़सूरवार हू, संगीता," उसने कहा था, "क्या करने से प्रतिकार होगा, समझ में नहीं आ रहा···"

संगीता ने उसे बात पूरी नही करने दी थी। आ कर उसकी छाती से लग गई

थी और बोली थी, "मैं आपसे प्यार करती हूं, अविजित जी।"

अविजित का सर्वांग कांप उठा था; देह का जानवर भूख से बिलबिला गया था। मन हुआ था, वहीं हॉस्टल के कॉमन-रूम में, बाहों से दबोच कर उसका अस्तित्व मिटा डाले। किसी निरापद स्थान पर पहुंचने तक अपने पर क़ाबू रखना मुश्किल हो गया था···

संगीता अकेली है, निस्सहाय है, मां की मृत्यु से स्तब्ध है, अविजित को याद रखना चाहिए था। ऐसा नहीं है कि उसे खयाल आया नहीं···करुणा की उसमें कमी नहीं है···

संगीता की जगह श्यामा होती तो···ऐसे ही भय और अकेलेपन से टूट कर उसकी गोद में बिखर गई होती···दुलार-पुचकार कर वह उसे बिस्तर पर लिटा देता···उसके पास बैठ कर उसके बाल सहलाता रहता···बस···

पर संगीता···उसकी देह का वह दुर्दमनीय आकर्षण! शालीनता, अनुग्रह, करुणा और मानवीयता की धज्जियां उड़ाता वह सम्मोहन, जो हर इन्सान की तरह उसके भीतर मौजूद जानवर को जा झकझोरता था···

उसे प्यार करके उठता तो देह की तुष्टि को नकारता आत्म-ग्लानि का भाव उसे छेद डालता। संगीता के शब्द सुनता—मैं आपको प्यार करती हूं, अविजित जी। अहम् संतुष्ट होता नहीं कि गहरी आत्म-भर्त्सना उसे परे धकेल फुकार उठती।

एक दिन भी तो ग्लानि से छुटकारा नहीं मिला···एक दिन नहीं···फिर भी तीन साल बीत गये।

बीच-बीच में श्यामा कह उठती, संगीता नहीं आई बहुत दिनों से। कुछ दिन वह टालमटोल करता रहता, फिर उसे लेने पहुंच जाता। वह आती···श्यामा से बातें करती···गाना सुनाती···और अविजित न श्यामा से आंख मिला पाता, न संगीता से! उफ़, कितना वीभत्स था! संगीता की आंखों में कौंधता उपहास, अविजित के मन में कुलबुलाता डर! फिर भी दिन गुज़रते गए थे···आत्म-ग्लानि की भी आदत पड़ जाती है।

आखिर एक दिन संगीता कह उठी, "मुझसे ब्याह करेंगे, अविजित जी?"

अविजित को धुरधुरी आ गई।

"मै शादीशुदा हूं," उसने कहा।

"पर उन्हें तो आप प्यार नहीं करते।"

"किसने कहा, नहीं करता?"

"मैं कह रही हूं। अपनी आश्रिता को ले जा कर गाना सुनवा देने से ही क्या प्यार का इज़हार हो जाता है?"

"क्या मतलब ? श्यामा को मैंने कभी किसी चीज़ की कमी नहीं होने दी।"

"उन्हें अगर मेरे बारे में पता चले ?"

"क्या ?" अविजित डर गया, "तुमने उनसे कुछ कहा है ?"

"नहीं, पर अगर कोई और कहे ?"

"कौन कहेगा ? कौन जानता है ?"

"मैं जानती हूं।"

"तो ?"

"उन्हें पता चलेगा तो क्या होगा ?"

"तुम…तुम मुझे ब्लैकमेल कर रही हो !"

संगीता उठ कर खड़ी हो गई।

आंखों से चिनगारियां फूट निकलीं। क्रोध, मोहभंग, उपहास और अपमान बोध के खिंचाव से चेहरे में दरारें पड़ गईं। नक़्श विकृत हो उठे।

"अगर करूं तो ?" उसने कहा।

अविजित के सिर पागलपन सवार हो गया। झपट कर उसने उसकी गरदन दबोच ली।

"मैं तुम्हें जान से मार दूंगा," वह चीख़ उठा।

"ज़रूर," संगीता ने घरघर करते गले से कहा। आंखों से चिनगारियां फूटती रहीं।

अविजित का पंजा उसकी गरदन पर कस गया।

"श्यामा से एक लफ़्ज भी कहा तो…" वह गुर्राया।

संगीता के चेहरे पर तिरस्कार की इतनी तीखी चमक कौध गई कि अविजित की आंखें चुंधिया गईं। हाथ कांप गए।

"बेवकूफ़ आदमी !" हाथों का कसाव ढीला होते ही संगीता ने कहा, "श्यामा को दुख देने को तुम काफ़ी नहीं हो कि मैं तुम्हारा हाथ बंटाने जाऊंगी।"

अविजित तड़प उठा।

गरदन पर से हाथ फिसल चुके थे तो क्या हुआ। धक्का दे कर उसने संगीता को फ़र्श पर गिरा दिया और… मारने के और भी तरीक़े हैं।

"तुम मेरे जीवन का अभिशाप हो ! मैं तुमसे नफ़रत करता हूं ! तुम्हारे पास आने के लिए ख़ुद से नफ़रत करता हूँ !" वह कहता रहा था। प्यार की चरम स्थिति में भी यही कहा था उसने—मैं तुमसे नफ़रत करता हूं !

स्टीयरिंग व्हील पर से अविजित के हाथ फिसल गए।

घबरा कर उसने उन्हें परखा। इतनी लिसलिसाहट क्यों ? ख़ून ? नहीं, हथेलियां

पसीने से सराबोर हैं।

उस दिन भी···अगर संगीता का विकृत चेहरा देख, हथेलियां पसीने से पसीज कर उसकी गरदन पर से फिसल न गई होतीं तो वह ज़रूर उसका खून कर देता।

वही तो किया है उसने। मारने के और भी तरीक़े है!

हाथों के हिल जाने से गाड़ी ने धचका खाया···

चौक कर श्यामा हल्के से कराही और बुदबुदायी, "घर आया नहीं अब तक?"

अविजित ने चक्के को कस कर पकड़ लिया पर हाथ फिर फिसल गए। गाड़ी ने झटका दिया। श्यामा कराह उठी।

हाथों का पसीना पोंछ डालने को वह बेताब हो गया।

आदत के सख्त खिलाफ़ उसने उन्हें पैन्ट से ही रगड़ डाला।

जेब से रूमाल निकाला तो देर तक चक्का साफ़ करता रहा···

संगीता फिर नहीं मिली थी···

फ़ीस ले कर गया तो पता चला कि उसने हॉस्टल का कमरा छोड़ दिया है। फिर सुना वह अस्पताल के एक डाक्टर के घर रह कर उसके विकलांग बच्चे की देखभाल कर रही है। फ़ीस के लायक़ पैसा हो जाता होगा क्योंकि उसकी जमा की हुई फ़ीस चैक द्वारा उसके पास लौट आई थी। मिलने की बहुत कोशिश की थी उसने; कालेज में, उस डाक्टर के घर पर···सफल नहीं हुआ। साल पूरा होते ही संगीता ने शहर छोड़ दिया था और तीन-चार साल तक उसका कुछ पता नहीं चला था···

चलता तो···

संगीता उसे दिखलाई पड़ जाती तो···बच कर रह पाती?

बरसों उसका शरीर खुद को खाता रहा था···श्यामा पर उसका अनुग्रह बढ़ता गया था···वह अपने को काम, और काम में होम करता गया था। काम नहीं पैसा, अनित्य कहता है। हां, पैसा। पैसा कमाने में एक नशा है; सम्भोग से भी गहरा। पैसा, पद, इज़्ज़त, नाम, पैसा। एक पूरा चक्र। अहम् की तुष्टि, देह की थकन, सफल होने का नशा···कुछ कम तो नहीं।

फिर संगीता अगर सामने पड़ गई तो···

अपने शरीर को वश में करने में बरसों लग गए···

फिर···एक दिन···कुछ करने की ज़रूरत नहीं रही···छोटे बच्चे की तरह शरीर पूर्ण-परितुष्ट, आंखें मूदे सो रहा था।

उसके जीवन में रंजना ग्रा गई थी।

कितना-सा है उनका सम्बन्ध !

पांच-सात दिन में एक बार वह शाम को उसके यहा चला जाता है। एकाध प्याला चाय पीता है, हाल-चाल पूछता है, उसके बच्चे से खेल लेता है ग्रौर लौट ग्राता है।

रंजना श्यामा की चचेरी बहन है। विधवा। पति की मृत्यु हुई तो वह गर्भवती थी। यूँ ग्रविजित ने दो-चार बार पहले भी उसे देखा होगा पर याद नही था; हां, पति की मृत्यु के चार महीने बाद जब उसके बच्चे का जन्म हुग्रा तो अविजित बगल के बरामदे में मौजूद था। लाचारी में होना पडा था। श्यामा के कहने पर। प्रसव शुरू हुग्रा तो रंजना ग्रकेली थी। रात का दूसरा पहर बीत रहा था। पड़ोसी ने ग्रा कर श्यामा को खबर दी थी। ग्रौर हमेशा की तरह श्यामा का बोझ अविजित को उठाना पड़ा था। रंजना को अस्पताल पहुंचा कर वह वही रुक गया था। ग्रद्‌भुत स्त्री लगी थी रंजना। ग्रपूर्व सुन्दरी, निर्भीक, वैधव्य के बावजूद बच्चे के जन्म से प्रसन्न।

नर्स ने बेटे के जन्म का समाचार ला कर ग्रविजित को दे दिया था।

रंजना के कमरे के दरवाज़े पर खड़े हो कर उसने बधाई दी थी ग्रौर पूछा था, किसी चीज़ की ज़रूरत तो नही।

भीतर से मधुर पर सशक्त कण्ठ-स्वर सुनाई दिया था; ग्रस्पताल पहुँचा देने के लिए धन्यवाद, ग्रागे वह ख़ुद देख लेगी।

बेटे को लेकर रंजना घर ग्राई, महीने भर के ग्रन्दर कालेज जाना शुरू कर दिया। निपट अकेली ग्रौरत रंजना को एक दिन भी ग्रविजित ने रोते-झीकते नहीं देखा ग्रौर न कड़ुग्राहट में गोते लगाते।

घण्टे भर उसके पास बैठ कर ग्रविजित चला ग्राता है···ग्रजीब-सी शान्ति ग्रौर ग्रशान्ति से एक-साथ भरा हुग्रा। जीवन में पहली बार उसने किसी से प्यार किया है। वह जानता है वह रंजना से प्यार करता है ग्रौर जानता है कि वह उसे कभी नहीं मिल सकती। कैसे मिलेगी, जब वह उसे मागेगा नहीं। ग्रब वह कभी किसी ग्रौरत को नहीं मागेगा। ठण्डी ग्रोस की बूंद-सी रंजना की ग्राकृति ने उसके शरीर की ग्राग को बुझा दिया है। काश, रंजना उसे सोलह साल पहले मिली होती। ग्रपने शरीर के ग्रत्याचार से वह बचा रहता···ग्रात्म-ग्लानि का यह धुआं उसकी ग्रावाज़ घोट न देता···रूह के हर ज़र्रे से चाहते हुए भी, प्यार के इज़हार से यूँ महरूम न रहना पड़ता।

संगीता सुने तो विश्वास कर सकेगी···ग्रविजित ने वासना पर विजय पा ली··· ग्रविजित ब्रह्मचारी हो गया !

अविजित ज़ोर से हँस पड़ा।

"क्या हुआ ?" श्यामा ने ऐसे पुकारा जैसे वह हंसा न हो, चीख उठा हो।

अविजित ने जवाब नहीं दिया।

एक्सलरेटर पर उसके पांव का दबाव बढ गया।

सामने से आ रहे ट्रक को बिल्कुल पास आ जाने दिया।

"देखो, ट्रक !" श्यामा चीख पड़ी।

अविजित ज़ोर से हंस दिया।

गाड़ी की रफ़्तार कम नहीं हुई।

ट्रक रास्ता देने पर मजबूर हो गया।

अविजित ने झटके से गाड़ी दाएं मोड़ी और चौड़ी सडक पर बेतहाशा दौड पड़ा।

गान्धीजी को अपने ब्रह्मचर्य पर कितना गर्व था ! सोचते थे, नग्न युवती के साथ एक बिस्तर पर सो कर भी उत्तेजित न हुए तो ब्रह्मचर्य सार्थक हो गया। कितना हास्यास्पद है ! शरीर क्या बस शरीर से उत्तेजित होता है ? प्यार होने पर तो आदमी ब्रह्मचारी हो ही जाएगा।

पर अविजित की विडम्बना तो देखो। जिसे प्यार करता है, उसी के सामने सबसे ज़्यादा लाचार है उसका शरीर।

संगीता ने लिखा था, एक पत्र आया था उसका जाने के बाद···ज़्यादा प्यार करना बहुत खतरनाक होता है पर हर प्यार करने वाला कमज़ोर ही हो, यह ज़रूरी नहीं है। मैंने अपना रास्ता ढूँढ निकाला है। कभी किसी प्रख्यात डाक्टर का नाम सुनें तो समझ जाइएगा संगीता ही है···

तुम लौट क्यों आई, संगीता ? कुछ और बरस बीत जाते तो मेरा गिल्ट शायद कम हो जाता···मैं रंजना से सब कुछ कह डालता और हो सकता था···हिम्मत कर के मैं उसकी गोदी में सिर रख भी देता···

तुमने यह कैसा रास्ता चुन लिया, संगीता, कि मेरे तमाम रास्ते बन्द हो गए ! तुम्हारा अभिशप्त भविष्य आत्म-ग्लानि के धुएं को किस क़दर ज़हरीला बना रहा है, जानती हो ? मेरा गला सूख रहा है···आंखें जल रही हैं···मुझे कुछ दिखलाई नहीं दे रहा···

कुछ नहीं है कहीं···बस मेरी प्यास है और···छह साल बीत चले···नखलिस्तान है और मेरी प्यास ! ऐसा न हो कि नखलिस्तान दीखना भी बन्द हो जाए···

रहने दो मेरी प्यास ! प्यास की मुझे आदत हो चुकी।

प्यास-प्यास-प्यास ! आजन्म···अविराम···निरन्तर···अक्षुण्ण···मृत्यु तक···

मृत्यु तक···मृत्यु तक···

"ये कहा आ गए हम!" श्यामा चीख पड़ी।

चौक कर अविजित ने गाड़ी रोक दी।

बराबर में जमना का पुल है।

यह तो मेरठ के रास्ते में पडा करता है।

पुल के ऊपर नही, वह नीचे बालू की सतह पर है, नदी के किनारे।

जमना नदी चढाव पर है। गाडी से ज़रा-सी दूरी पर किनारे तोड़ता पानी है।

जगह उसकी जानी-पहचानी है। पहली बार यहा नही आया। हर बरसात में जब जमना नदी किनारे तोड बह निकलती है तो वह यहां आया करता है। यही, लहराते पानी से जरा दूर खड़े रह कर देखता है···स्थिर कुछ नही है···सब कुछ बह जाता है···जीवन के बहाव के सामने किनारों की क्या हस्ती?

बहाव तेज़ हो तो हाथ-पैर ढीले छोड़ कर प्रवाह के साथ बहते रहो···जिधर चाहे ले जाए···तभी बचाव है···प्रवाह से उल्टी दिशा में जाने की ज़िद की तो डूबना निश्चित है।

अविजित का मन हुआ, श्यामा को गोद में उठा ले और गाड़ी का दरवाज़ा खोल बाहर दौड़ जाए···छलाग लगा दे नदी के पानी में, और···मुक्ति पा जाए!

संगीता! काजल! चड्ढा! वही यथार्थ है, जीवित है, सच है। व्यतीत ही हमारा वर्तमान है···व्यतीत नही, भूत! आदमी के सिर चढ़ जाता है तो भूत की तरह चिपटा रहता है···

वह और श्यामा···केवल मिथ्या आडम्बर, जीव-तत्व-विहीन थोथा खोल!

उठा ले श्यामा को गोद में, कूद जाए चढ़ी नदी के अथाह पानी में।

पटाक्षेप! पूर्णाहुति!

पसीने से चिपचिपाता अपना हाथ उसने श्यामा के कन्धे पर रखा और उसे अपनी तरफ़ घुमाया।

"अनित्य!" विकल कण्ठ से श्यामा ने पुकारा।

एक क्षण बाद, गाड़ी के दरवाज़े पर हाथ रखे अनित्य अविजित की बगल में खड़ा था।

"घर पीछे रह गया, भाई साहब," उसने कहा, "गाड़ी लौटा लें।"

विमूढ़-सा अविजित उसे देखता रहा।

"तुम बैठो न," श्यामा ने कहा।
"मैं नहीं। मैं उधर जाऊंगा," उसने पुल की तरफ़ इशारा किया।
"अनित्य!" एक बार फिर श्यामा ने पुकारा।
"फिर भी आऊंगा, भाभी," अनित्य ने कहा, "पर अब नहीं।"
"कहां जाओगे?"
"कहीं भी। शायद यहीं बैठूं रात-भर।"
लम्बे डग भरता अनित्य अंधेरे में ग़ायब हो गया।
अविजित बैठा रहा।
"जो हो चुका, उसे भूल क्यों नहीं जाते," श्यामा ने आहिस्ता से कहा।
अविजित ने गाड़ी लौटा ली।

१

सुबह से लगातार बारिश हो रही है।

अविजित महसूस कर रहा है...हाँ, बारिश बरस रही है। कानो में टप-टप का सहज-सरस सुर बज रहा है। नल मे टपकते पानी की टप-टप अलग होती है, कंकरीली-सी। सिर की नसों को चटकाती है। कनपटी की नस आजकल बराबर कुट-कुट करती रहती है। एक महीना हो गया जमना किनारे से लौटे···लगातार तभी से। हथेली से कनपटी दबाए रखो तो ज़रा देर को राहत मिल जाएगी। हथेली हटाते ही वही कुट-कुट; कुट-कुट। कितने बरस लगेंगे उसे पूरी तरह छलनी हो जाने में ?

बारिश की टप-टप भी जलन में नमी नहीं ला रही···

कोई और दिन होता तो गीली मिट्टी की गंध सूघने अविजित कब का बाहर निकल गया होता। हवाखोरी···सैर-सपाटा···या पिकनिक। बारिश पड़ते ही अविजित का मन हरियाली को ललक उठता है···तबीयत खराब न होती तो श्यामा भी साथ चल पड़ती। गाड़ी की पिछली सीट पर दो तकिये लगा कर लेट रहती। बच्चे आगे बैठ जाते। खूब तेज़ गाड़ी दौड़ाता अविजित। प्रभा कहती, और तेज़। और तेज़! श्यामा भी मज़े में आ जाती। मना नहीं करती।

शहर से दूर, हरियाली या पानी के किनारे वह गाडी खड़ी कर देता···स्वर्णा को श्यामा के पास छोड़कर वे लोग घूमने निकल जाते। जंगली बेर खाते, हंसते-बतियाते, भागते-दौड़ते···हाँ, अविजित बच्चों के साथ रेस भी लगा लिया करता था···बारिश का पहला दिन उत्सव का दिन हुआ करता था।

इतवार का दिन न भी रहता तो कोई दिक़्क़त न होती। अविजित दफ़्तर से ज़रा जल्दी चला आता और शाम चार बजे वे घर से निकल पड़ते···

पर आज···

बारिश को सुना भर है, उठकर देखा नहीं। आज बिस्तर छोड़कर उठने की इच्छा नहीं है। आंखें बन्द रखो तो लगता है, बारिश पगला गई है। सारी मर्यादाएं तोड़कर सड़क पर नंगी दौड़ आई है।

"कितने रुपये चाहिए ?" अविजित ने पूछा था।

"सौ।"

उसने सौ का नोट उसकी तरफ़ बढ़ा दिया था। प्रभा पैर पटक कर बाहर चली गई थी ··

बारिश ने ज़ोर पकड़ा है।

अविजित के कानों में बाढ़ का शोर है। जमना नदी किनारे तोड़ रही है।

आने दो पानी को ! निगल जाने दो हेली रोड को ! धराशायी हो जाएं यह चौड़े बंगले जिनके हर कोने में फफूद लगी है।

अविजित आँखें बन्द किये, गर्दन तक चादर ओढ़े उदासीन पड़ा रहेगा। पानी भीतर आएगा और उसे बहा कर ले जाएगा। जमना नदी की चौड़ी छाती पर बढते-बहते वह जीव से शव बन जाएगा···बस किसी तरह समुद्र की निर्मम गहराई में जा मिले···एक बार भी उतरा कर जल के आंचल पर तैर न आए·· हाथ छाती पर बाधे रहे, पैर निष्क्रिय लटकाए रहे···और नदी उसके समर्पण को करुणावश स्वीकार कर ले···

क्यों इतनी लड़ाई करता है आदमी पानी के डुबाते प्रकोप से। तैरना न भी जानता हो तो तीन बार सिर ऊपर उठा ही लेता है।

बरसने दो पानी। अविजित सिर नही उठाएगा। ऐसे ही आखे मूँदे-मूँदे प्रकृति के असीमित रोदन में जलमग्न हो जाएगा।

अविजित देख रहा है...

शहर और गांव का फ़र्क मिट रहा है···कच्ची-पक्की सड़कों पर नदी का पानी वेग से बढ़ता चला जा रहा है···ऊपर से मूसलाधार बारिश बरस रही है। लोग डूब रहे हैं, कुछ आसमान से बरसते पानी की धार में, कुछ धरती पर उमड़ते जल-प्रवाह मे। ऊंची इमारतें आसमान की मार सह नही पा रही। पानी की धार से पिघल-पिघल कर नीचे सरक रही हैं। पानी के शोर के बीच बेआवाज़, आहिस्ता-आहिस्ता, छतें फ़िसल कर फ़र्श से मिल रही हैं। मंज़िलों के बीच फंसे लोग पिस-कुचल कर नीचे लटक रहे हैं और धीमे-धीमे पानी में टपक रहे है। पानी के ओर-छोर-हीन सीने पर जो लाश आकर गिरती है, उसका चेहरा ग़ायब हो जाता है···धड़ तैरते रहते है···सड़ते रहते हैं···एक दूसरे से पिलट-चिपट कर खाद बनते रहते है···

फिर भी कुछ इमारते नही गिरती। छज्जों पर खड़े बड़े आदमी सब्र के साथ इन्तज़ार करते है···कब पानो उतरे और बढ़िया खाद से उर्वरा हुई धरती उनके हाथ लग सके।

अविजित देख रहा है···

तमाम हिन्दुस्तान बाढ के पानी में डूब रहा है···लाशो की सड़ांध से मतली आ रही है। सिर मे घुमेर उठ रही है। सास लेना दूभर हो रहा है। पानी से बाहर बने रहना नामुमकिन होता जा रहा है।

इस तरह किनारे पर खड़े रह कर इन्तजार करते रहने से तो अच्छा है आदमी छलांग लगा दे पानी में और सबके साथ घुल-मिट कर, आने वाली पुश्तों की मिट्टी को उपजाऊ बनाने के काम आए।

नही, अविजित उस इमारत में नही रहना चाहता जो पानी के उजड्ड वेग से अछूती रह कर, मजिल पर मजिल चिनती चली जाए पर जिसके ईंट-गारे के भीतर पलती फफूंद उसमें रहने वाले हर प्राणी को रफ़्ता-रफ़्ता उसके अपने थूक में डुबा कर मार डाले।

बारिश अब भी बरस रही है···

सुबह के दस बजा चाहते है।

इतवार नही है।

घर के लोग परेशान है, अविजित अभी तक बिस्तर छोड़ कर उठा क्यों नही। शायद यह ज़िन्दगी में पहली बार हो रहा है कि सुबह होने पर भी उसने बिस्तर नहीं छोड़ा। क्या हुआ जो धूप नही खिली; क्या हुआ जो बादल फूट-फूट कर रो दिये; बेला तो धूप निकलने की है; कलाई पर बंधी घड़ी तो बाक़ायदा चल रही है।

पास के बिस्तर से श्यामा ने पांचवी बार पूछा है, "तबीयत ठीक नहीं है क्या? डाक्टर माचवे को बुलवाऊं?"

शुक्ल तीसरी बार कमरे में आया है। दो बार पहले आकर पैर छू कर देख गया है।

"बुख़ार तो नहीं लगता, भाई साहब," तीसरी बार कह रहा है, "कहें तो पीठ दबा दूं?"

"नहीं," अविजित ने बुदबुद करके कहा है पर चादर से मुह बाहर नहीं निकाला है।

भला आदमी है शुक्ल। स्वर्णा के जाने के बाद से घर को काफ़ी सम्भाल लिया है।

क्या ऐसा नही हो सकता कि चादर से ढका अविजित सपाट पड़ा रहे और उसका घर उसके बिना अपनी ताक़त से चलता रहे। धीरे-धीरे उसका सम्पर्क घर के हर प्राणी से टूट जाए·· उसे याद तक न रहे कि यहां कोई एक श्यामा है, एक प्रभा, शुभा, खोखी और···

"सुधांशु को स्कूल से ले आऊं?" दरवाज़े से पलट कर शुक्ल ने पूछा है, "आज पहला दिन है।"

तीव्र वेदना से अविजित का बदन सिकुड़ उठा है। उसी को तो सबसे पहले भूलना है!

सुधांशु, उसका बेटा। क्यों? किस अभिशाप से?

"हां, ले आओ," श्यामा ने कह दिया है।

शुक्ल बाहर चला गया।

"ठीक है न," श्यामा उससे पूछ रही है, "पहले दिन थोड़ा जल्दी ले आना?"

अविजित चुप है।

कैसा पहला दिन; कैसा दूसरा। जल्दी आए या देर से, क्या फ़र्क पड़ेगा। श्यामा नहीं जानती, सुधांशु को पिछड़े हुए बच्चों के स्कूल में दाखिला दिलवाना पड़ा है।

उसका बेटा और रिटार्डेड।

पूरा हफ्ता निकल गया। एक स्कूल से दूसरे स्कूल, दूसरे से तीसरे। हर जगह एक ही जवाब। बच्चा सिर्फ़ तुतलाता नहीं, पिछड़ा हुआ भी है। तुतलाने की वजह शारीरिक होती तो इलाज मुमकिन था पर अब·· एक ही विकल्प है, पिछड़े हुए बच्चों के स्कूल में थोड़ा-बहुत जो सीख सके···अपनी रोजमर्रा की ज़रूरतें बतलाने लायक़!

अविजित देख रहा है···

सुधांशु जवान हो चुका। उसका चेहरा-मोहरा बिल्कुल अविजित की तरह है। दूर से देखो तो वहम हो जाए, अविजित ही है।

सुधांशु बरामदे में बैठा कागज़ की नाव बना रहा है। पूरी एकाग्रता और तन्मयता के साथ कागज़ तहाता है, मोडता है, त्रिकोण बनाता है, हाशिये में छूटे कागज़ को ऊपर मोड़ता है ··कागज़ फट जाता है, नाव नहीं बनती।

वह दूसरा कागज़ उठाता है···हाथों को संतुलित रखने की कोशिश करता हुआ उसे तहाता है···मोड़ता है···त्रिकोण बनाता है···कागज़ हाथ से फिसल जाता है, नाव नहीं बनती।

वह झुक कर कागज़ उठाता है···तहाता है···मोड़ता है···त्रिकोण बनाता है···छूटे हुए हाशिये को ऊपर मोड़ता है···खींच कर खोलता है और कागज़ फट जाता है, नाव···

अविजित भीतर बिस्तर पर पड़ा आखिरी सांसें गिन रहा है···सुधांशु उससे बेखबर बाहर बरामदे में बैठा कागज़ की नाव बनाने की कोशिश कर रहा है···

सुधांशु नहीं जानता, अविजित मर रहा है। नहीं जान सकता···पर नाव··· कम-अज़-कम नाव तो बने।

सुधांशु ने फिर कागज उठाया है···उसे तहाया है···आवेश से उसके हाथ कांप रहे हैं···हताशा उस पर हावी होती जा रही है···पांच बरस का बच्चा भी कागज़ की

नाव बना लेता है···चार बरस का···नही बना पाता या बना लेता है वह भी ? सुधांशु जवान हो चुका है···पूरा जोर लगा रहा है नाव बनाने मे ··देखने मे बिल्कुल अविजित की तरह है···

रंजना भीतर घुसी है।

अविजित, उसने आवाज़ लगाई है।

सुधांशु ने सिर ऊपर उठाया है।

सुधाशु, तुम ! रंजना ने कहा है, पिताजी कैसे है ?

नाव नहीं बनती, सुधांशु ने रुआंसे स्वर में कहा है, तुम बना दो।

पिताजी कैसे है, रंजना ने फिर पूछा है।

तुम नाव बना सकती हो, सुधांशु ने पूछा है।

रंजना अचरज से सुधांशु को देख रही है।

अविजित से बर्दाश्त नहीं हो रहा।

उसने आंखें मूंद ली है, सांस रोक लिया है, शरीर को स्पंदनहीन बना लिया है···

अविजित का शव कमरे में पड़ा है···बाहर बरामदे में बैठा सुधांशु नाव बनाने की असफल कोशिश कर रहा है···

रंजना···रंजना···रंजना, जाओ तुम ! मेरा मुह देखने लायक़ नही रहा···

कितने दिन हुए···शायद एक हफ़्ता।

वह एक दोस्त के घर बैठा था।

उनका बेटा आकर उसकी गोद में बैठ गया।

चचल, मोटा-गुदगुदा-सा लड़का।

"पिताजी," उसने कहा था, "राजी मेरी झूठी शिकायत करे तो तुम सुनना मत।"

"शिकायत," अविजित दुहरा उठा था, "बहुत साफ़ बोलता है तुम्हारा बेटा।"

"हां," दोस्त ने बात को कोई महत्व नही दिया था।

"कितने साल का हो गया ?" अविजित ने ही पूछा था।

"चार।"

"चार साल···" अविजित बुदबुदा उठा था, "पर यह तुतलाता नही।"

"चार साल के बच्चे तुतलाते तो नही," दोस्त की बीवी हंस पड़ी थी।

"फिर सुधांशु क्यों तुतलाता है ?" अविजित के मुह से अनायास निकला था।

"सुधाशु···कौन, आपका बेटा ?"

"हा।"

"तुतलाता है ?"

"हां।"

"अच्छा···कितने साल का हो गया?"

"चार···नही, पाच।"

"स्कूल वाले क्या कहते है ?"

"स्कूल तो अभी जाता नहीं।"

"नही ? उम्र तो हो गई," दोस्त ने कहा था।

"पता नही···वह···स्कूल जाने लायक़ लगा नही कभी···"

सुधांशु को ज्यादातर अविजित ने स्वर्णा की गोद में देखा है। स्कूल के बारे में कभी सोचा नही···किसी ने कुछ कहा भी नही।

दोस्त और उसकी बीवी ने एक दूसरे की तरफ़ देखा।

बीवी का चेहरा सख्त हो गया। उसे वह बहुत ही नालायक़ और लापरवाह बाप लगा होगा।

"किसी अच्छे स्कूल में डालकर देखिये, रूखे स्वर में उसने कहा था, "घर से निकलेगा तो ठीक बोलने लगेगा।"

"अरे यार, बड़ा आदमी बनने का यह मतलब तो नही कि बाल-बच्चों को भुला ही दो। न हो तो एक सेक्रेटरी रख लो याद दिलाने को," दोस्त ने मजाक करने की कोशिश में जोड़ा था पर उसका ठहाका माहौल को हल्का न कर पाया था।

अगले दिन, सुधांशु को लेकर, अविजित पास के स्कूल में जा पहुंचा था···

फिर एक सिलसिला···

अभी कोई नहीं जानता···दो-चार बरस में सब जान जाएंगे, अविजित बंसल का बेटा···

अविजित कही नहीं जाएगा···किसी से नही मिलेगा···सफ़ेद चादर पीली पड़ती जाएगी···नीचे उसके शरीर के अवयव एक-एक करके सूखते चले जायेंगे··· बाढ़ का पानी जब भीतर घुसेगा···

अविजित सुन रहा है···

बारिश की टप-टप कभी तेज़ होती है, कभी धीमी। उसके लिए सब एक है।

पानी की टप-टप में एक सुर और आ मिला है···टेलीफ़ोन की घण्टी की टन-टन।

टन-टन, घण्टी बज रही है···

टप-टप, पानी टपक रहा है···

अविजित सुन रहा है···बस, सुन रहा है···

सुन कर चेत नहीं रहा···

टेलीफ़ोन बजता जा रहा है···अविजित फिर भी निस्पन्द पड़ा है···

बजने दो···तब तक बजने दो जब तक बेहोशी का आलम इन्सानों के सिर से होता हुआ यन्त्रों पर तारी न हो जाए···

बारिश की टप-टप और घण्टी की टनटनाहट एक साथ बन्द हो गई !

अटूट सन्नाटा छा गया।

क्षण खिंचता गया।

अविजित ने घबरा कर आँखें खोल लीं।

तभी शुक्ल ने ऊंची आवाज़ में पुकार कर कहा, "भाई साहब, कलकत्ते से सिंघानिया जी का ट्रंक काल है !"

चादर फेंक कर अविजित ऐसे उठा जैसे बटन दबा देने पर मशीनी पुर्जा हरकत करता है···

···फोन उसके हाथ में आ गया।

"अरे भई बंसल," सिंघानिया जी बोले, "तबीयत क्या खराब कर ली ? दफ़्तर में मिले नहीं···"

"जी··" अविजित जो कहेगा, उसे सुनने के लिये रुके बग़ैर ही वे कहते गए, "लो, इस बार तुम्हारा काम हमने कर दिया ! एक जबरदस्त सोर्स हाथ लगा है। मेरठ में कोई सरण साहब है, गाधी संस्थान के व्यवस्थापक। पता चला है कि लाइसेन्स उन्हें मिलते है और वे उन्हें प्रीमियम पर बेच डालते हैं। नफ़े की आधी रक़म उनकी, आधी मुकर्जी बाबू की। मैं न कहता था, आदमी खेल गहरा खेलता है।"

"बस, तुम आज हो सरण से मिल कर बात पक्की कर लो। और हां, सुना है, वह भी इलाहाबाद यूनिवर्सिटी का पढ़ा हुआ है···तुम्हारा काम और आसान हो गया, क्यों ?"

कौन सरण ? कैसा लाइसेन्स ? मेरठ ! मेरठ में ही तो संगीता की हत्या··· नहीं चड्ढा की मौत···मेरठ में ही रहता है अविजित का भूत ! नहीं, वह नही जाएगा मेरठ···कभी नही जाएगा।

"हलो-हलो···," उधर से सिंघानिया जी पुकार रहे है, "आपरेटर-आपरेटर··· हलो-हलो···"

"जी," अविजित ने कहा।

"समझ गए तुम ?"

"जी।"

"तुम्हारी तबीयत ज़्यादा खराब है क्या ?"

"जी नहीं।"

अविजित के जवाब टेलीफ़ोन की घण्टी की तरह निश्चित सुर में बजते जा रहे हैं। सोचने की ज़रूरत नहीं है।

"अगर तुम जाने लायक़ हालत में न हो तो भट्ट को भेज देते है। मेरठ के काम में देरी नहीं की जा सकती। और फिर···दिल्ली आफ़िस का भी कुछ काम वह सम्भाल लेगा···तुम्हें आराम मिल जाएगा···"

भट्ट! उसकी जगह दिल्ली आफ़िस में भट्ट!

अविजित के बदन पर से उदासीनता की खाल उचट गई। एक-एक रोयां चौकन्ना खड़ा हो गया।

"मेरी तबीयत बिल्कुल ठीक है," करारे स्वर में उसने कहा, "एक-दो दिन के लिए यूंही बुखार आ गया था, मौसमी। भट्ट के आने की कोई ज़रूरत नही है।"

"तो तुम आज ही मेरठ चले जाओ।"

"जी, ठीक है।"

"लौटते ही मुझे खबर···"

"ज़रूर! आज रात को ही आपको खबर मिल जाएगी, काम हो गया।"

२

"वहां जाकर जरा भी अच्छा नही लगा," शुभा ने गहरी मायूसी के साथ कहा।

"अच्छा लगने को था क्या?" प्रभा बोली।

"मैने सोचा था, लोगों को मदद करके अच्छा लगेगा।"

"फिर···क्यो नही लगा, कुछ सोचा?" पैनी नजर उस पर जमा कर उसने पूछा।

"पता नहीं···" शुभा अपने भीतर डूब गई।

कुछ देर चुप्पी रही, फिर शुभा जैसे फट पड़ी, "इतने लोग आए थे वहां। बढ़िया पोशाकें पहने, उम्दा गाड़ियों में बैठकर, ढेर-सारा खाना साथ लिये। दूसरी तरफ़ भूखे बाढ़-पीडितों की क़तार थी। उन्हें खाना चाहिए था···खाना मिला भी पर···"

"पर···"

"खाना ज़्यादा हो गया, प्रभा! खाने वालों ने और लेने से इन्कार कर दिया। लाने वाले नाराज़ होने लगे···अब लेकर आए है तो क्या वापिस लेकर जाएगे!" शुभा ने व्यथित स्वर में कहा, फिर घबरा कर प्रभा की तरफ़ देखा कि कहीं वह हंसना न शुरू

कर दे।

पर प्रभा के चेहरे पर विद्रूप नही था। आंखों मे संवेदना थी। शुभा को ढाढस मिला। वह कहती गई, "ऐसा लगता था, प्रभा, कि जो लोग खाना लेकर आए है, उनका उन लोगों से कोई ताल्लुक ही नही है जिनके लिए खाना लाया गया है।"

"वही तो," प्रभा ने कहा, "वही तो गलत है।"

"हां" शुभा ने धीमे से कहा, "अच्छा नही लगा वहां जाकर।"

"ऐसी मदद ग़लत है," प्रभा ने कहा, "जो देता है उसके मन में हिकारत होती है; जो लेता है उसके मन मे नफ़रत।"

"मदद ग़लत है ?"

"नही, मदद करने की सामर्थ्य होना ग़लत है। एक समाज मे रहने वाले लोग इस तरह क्यों बंटे कि एक वर्ग के पास इतना हो कि वह मदद करने की सामर्थ्य रखे और दूसरे वर्ग के पास कुछ न हो, कि उसे मदद की ज़रूरत पड़े।"

"तब तो...एक ही रास्ता है...कौम्यूनिज़्म ?"

"हाँ।"

"उसके लिए क्रांति..."

"होनी ही पड़ेगी।"

"मारपीट, हिंसा, अराजकता..."

"उसके बिना कुछ बदलता नहीं, कभी कुछ नहीं बदलता !"

देर तक शुभा चुप बैठी एकटक सामने देखती रही। उसकी आंखों के सामने एक विशाल मंच था...

मंच पर एक आदमी आया...बिना चेहरे वाला...गोली चली...एक-दो-तीन-धांय ! आदमी वहीं ढेर हो गया। एक और आदमी...फिर गोली चली। धाँय ! एक-के-बाद-एक। फिर एक साथ...अनेक—अनगिनत...गोलियों की बौछार ! चीखो-पुकार ! बिना चेहरों के आदमी—लाशों का ढेर...ज़हरीले धुएं का ग़ुबार ..

"बहुत भयानक है," उसने कहा।

"हाँ।"

"सुन," शुभा का स्वर फुसफुसाया, "तू किसी अनजान आदमी पर गोली चला सकती है ?"

"हाँ।"

"चाकू मार सकती है ?"

"हाँ," प्रभा का स्वर एक बार भी नही काँपा, "ज़रूरत पड़ने पर," उसने कहा।

स्तब्ध शुभा की आँखों के सामने वही मंच उभर आया। उसने देखा...

प्रभा के हाथ में पिस्तौल है···वह धाँय-धाँय गोलियाँ चलाती भागी चली जा रही है। अचूक निशाना है। सामने लाशों का अम्बार लगता चला जा रहा है। धांय-धांय ! धांय-धांय ! विनाश का लयबद्ध सगीत ! धांय···और गोलियां खत्म। प्रभा ने मुड़कर देखा है। एक नक़ाबपोश चेहरा पास लटक आया है। गजब की फुर्ती है बदन में। गोलियों की पेटी प्रभा के पास फेंक दी है। कौन है वह ? काजल बनर्जी ? नही···दत्त ! बिमल दत्त। वह और प्रभा साथ-साथ भाग रहे हैं। धाँय-धाँय ! गोलियाँ चल रही हैं। झुण्ड के झुण्ड नक़ाबपोश चेहरे उनके दाएं-बाए जमा हो रहे हैं। बिना रुके प्रभा गोलियाँ चला रही है···पेटी खाली होने में नहीं आ रही···कि खत्म हुई और बिमल दत्त ने इशारा किया ! प्रभा ने कमर से लटक रहा चाकू हाथ में सम्भाला और···सामने अविजित है ! अविजित क्यों ?"

"प्रभा !" शुभा चीख उठी।

"क्या ?

"यह बिमल दत्त अच्छा आदमी नही है।"

"बिमल दत्त ?"

"हाँ।"

"तू उसके बारे मे क्या जानती है ?"

"तू तो जानती है न ?" शुभा ने जवाब न देकर सवाल पूछा।

"हां।"

"खूब अच्छी तरह ?"

"हां।"

"प्रभा, मैंने कई बार उसे तेरे साथ देखा है।"

"देखा होगा।"

"प्रभा···तू उससे प्यार करती है ?" शुभा ने संकुचित स्वर में पूछा।

प्रभा ने घूर कर उसकी तरफ़ देखा और खिलखिला कर हंस पड़ी, "इतना ज़ोर क्यों पड़ रहा है तुझ पर ? प्यार तो सभी-सभी को करते हैं।"

"पर वह तो··" शुभा अब भी गम्भीर थी।

"कायर नही है," प्रभा ने वाक्य पूरा कर दिया।

"जो मार-काट न करना चाहें, वे सब कायर होते है।"

"हां। ज़रूरत पड़ने पर भी न करना चाहें तो बेशक कायर होते हैं।"

"पिताजी को यह सब मालूम है ?"

"क्या ?"

"यही·· बिमल दत्त और उसके खयालात।"

"शायद नहीं।"

"मिस बनर्जी को ?"

"हां।"

"उन्हीं के कहने पर···"

"किसी के कहने पर कोई कुछ नहीं करता, पर कोई रास्ता दिखलाए और हमें दीख जाए तो···

"प्रभा," शुभा ने गम्भीरता से पूछा, "इस देश में क्रान्ति हो सकती है ?"

"क्यों नहीं हो सकती ? पर क्रान्ति सोचने या विवाद करने से नहीं होती। होती है करने से···तू हमारे साथ आएगी ?"

शुभा की नज़रें फिर मंच की तरफ़ खिच गईं।

पीली आंधी काले बवंडर मे बदल चुकी। शोर से मंच के तख्ते फटे जा रहे है। जांबाज जवानों के चेहरों से नक़ाब उतर चुके। उनकी दृष्टि की कौंध खुद बवंडर को दहलाये दे रही है। सैकडो बिजलियां एक साथ शुभा के चारो तरफ़ गिरी कि लाशो की ढेरियों से बहता खून तक जल कर सूख गया···

···अविजित का शरीर बहुत धीरे-धीरे नीचे गिरा, ऐसे, जैसे कोई बहुत पुराना पेड़ गिरता है। शुभा के हाथ में पिस्तौल आ गई। उसकी दृष्टि अविजित की दृष्टि से बंध गई। नहीं, घबरा कर उसने आखे मूंद ली···मैं नहीं देख सकती···मैं नहीं···मैं···

"मैं···," शुभा उठकर खड़ी हो गई, "जा रही हूँ।" उसने कहा, "डाक्टर जैन ने बुलाया है···"

"किसी नये नाटक की तैयारी है ?" प्रभा ने सहज भाव से पूछा।

"हां," जवाब देने भर को शुभा रुकी, फिर तेज़ी से कमरे से बाहर भाग गई।

बिमल, प्रभा ने याद किया, बिमलेन्दु दत्त···बिमल दत्त···दत्त···नहीं, बिमल।

···और जो वह उड़िया हुआ; याद आया, उसने स्वर्णा से कहा था। वह खिल-खिला कर हंस पड़ी। बिमल दत्त क्या उड़िया है ? शायद हो। उसने तो कभी कुछ बतलाया नहीं। प्रभा को अच्छा लगता है सोचना कि वह बंगाली है, काजल बनर्जी की तरह। अगर काजल दी के लड़का होता तो ठीक बिमल दत्त की तरह होता, प्रभा सोचा करती है। पर···काजल दी का लड़का···है तो उनका लड़का···मुकर्जी बाबू के घर पल रहा है···बिमल दत्त से एकदम फ़र्क है वह।

पिताजी ने बतलाया तो था ··

अविजित मुकर्जी बाबू से मिलने गया था···जाना पड़ा था। सिंघानिया जी का आग्रह था। लाइसेन्स दिलवाने का आश्वासन देकर सरण ने भी कहा था, एक बार मुकर्जी बाबू से मिल ज़रूर लेना; हम सेवक हैं, कर्त्ता तो वे ही हैं।

मुकर्जी बाबू को एक बार देखने की इच्छा भी थी मन में। कैसा आदमी है जो, थोड़े दिनों के लिये ही सही, काजल को मोहित तो कर सका।

कलफ़ लगे सफ़ेद बुर्राक कुर्ते-धोती में, ईरानी कालीन पर बिछी सफ़ेद चाँदनी

पर मसनद का सहारा लिये बैठा आदमी, बेहद शालीन और सुलझा हुआ इन्सान लगा था। हां, ठीक है, पैसा बनाता है पर···आजकल कौन नही बनाता। है तो परिष्कृत रुचि का सौम्य व्यक्ति। ऐसा आदमी एकदम त्याज्य नही हो सकता। फिर काजल···

ज़रूरी बातचीत खत्म होने को थी कि दस-ग्यारह बरस का स्वस्थ, चंचल बालक वहां आ खड़ा हुआ।

"डैडी," उसने कहा।

"पार्थ ? अरे, आओ-आओ, अभी आए क्या ?" मुकर्जी बाबू अतिथि के सामने ही स्नेह जतला उठे थे।

"सफ़र कैसा रहा ?" बगला मे उन्होने पूछा।

"फ़ाइन," लड़के ने अंग्रेज़ी में जवाब दिया।

"हाऊ वाज़ स्कूल (स्कूल कैसा था) ?" इस बार मुकर्जी बाबू ने भी अंग्रेज़ी ही में पूछा।

"ऑल राइट (ठीक-ठाक)"

"गुड।"

अविजित ने ध्यान से लड़के को देखा। ज़रूर काजल का लड़का है। निश्चित। वही सांवला रंग, वही बडी-बड़ी आंखों में झलकती बौद्धिक कान्ति। बस शरीर काजल की तरह दुबला नही, भरा हुआ है। अविजित का मन हुआ, उसे पास बुलाकर एक बार हाथों से सहला कर देखे।

"आपका बेटा है ?" उसने पूछा।

"हां," मुकर्जी बाबू ने सगर्व कहा।

"कौन-सी क्लास में पढते हो ?" उसने सीधे लड़के से पूछा।

"फ़िफ्थ स्टैंडर्ड," उसकी तरफ़ बिना देखे उसने अंग्रेजी में उत्तर दिया।

"कौन-से स्कूल में ?"

"दून स्कूल," उसने अकड़ कर कहा।

"हॉस्टल में हो ?"

"येस।"

"कितने बरस के हुए ?"

"इलेवन," लड़के ने लापरवाही से जवाब उछाला और पूरी तरह अविजित की तरफ़ पीठ करके पिता से बोला, "आई नीड सम मनी।

"श्योर," मुकर्जी बाबू हस कर बोले, "मां ने मना कर दिया क्या ?"

"शैल आई आस्क हर (उनसे पूछू) ?"

"रहने दो," वे बोले।

अविजित बुरी तरह अपमानित महसूस कर रहा था।

"आप काजल बनर्जी को जानते हैं ?" अनायास उसके मुंह से निकल गया।

वह जानता है, यहां काजल का नाम लेना ठीक नहीं है, उससे बना-बनाया खेल बिगड सकता है। पर काजल के लड़के के व्यवहार से पीडित होकर कुछ देर के लिए वह इष्ट और औचित्य की बात बिल्कुल भूल गया।

मुकर्जी बाबू का चेहरा तनिक भी मलिन नहीं हुआ। सेक्रेटरी को बुलाने के लिये घण्टी पर हाथ रख कर सहज भाव से बोले, "अच्छा-अच्छा···हां, आप भी तो इलाहाबाद यूनिवर्सिटी से हैं, पता तो चला था···"

सेक्रेटरी आ उपस्थित हुआ तो उसी स्वर में कहते गए, "पार्थ को पचास रुपये दे दो।"

"आजकल वे दिल्ली में ही है। सीतादेवी कालेज में पढाती है," अविजित ने कहा।

"अच्छा है," मुकर्जी बाबू बोले, "तब तो···मुलाक़ात होती रहती होगी!"

अविजित का मन इस आदमी के प्रति गहरी वितृष्णा से भर उठा।

"लड़के को मां के पास कभी नही भेजते क्या?" अपना स्वार्थ पूरी तरह भूल कर वह प्रतिहिंसक वार कर बैठा।

इससे पहले कि मुकर्जी बाबू कुछ कहते, ग्यारह बरस का पार्थ तेज़ी से घूमकर उसके सामने आ गया और घृणा से सने स्वर में बोल पड़ा, "डोन्ट टॉक ऑफ हर बिफ़ोर मी! माई मदर इज़ इनसाइड। (मेरे सामने उसका नाम मत लो! मेरी मा भीतर हैं," और पैर पटकता हुआ कमरे से बाहर निकल गया।

हतप्रभ अविजित की हालत बलात् घर में घुस आए चोर जैसी हो गई।

"हमारी ज़िन्दगी तो खुली किताब है, बंसल बाबू," मुकर्जी बाबू ने अभिमान के साथ कहा, "लड़के से सब कुछ छिपा रह सकता है क्या?"

उफ़, क्या कर डाला अविजित ने? काजल ने कहा तो था···मैं चरित्रहीन हू, उन्होंने सिर्फ़ दुबारा शादी की है। ज़ाहिर है, लड़के को उसके बारे में 'सब कुछ' से ज़्यादा बतलाया गया है।

"और हम छिपाएंगे क्यों?" मुकर्जी बाबू कहते गए, "जब जनता जानती है तो खुद अपना बेटा नही जानेगा···"

सेक्रेटरी फ़ाइलें लेकर दुबारा उपस्थित हो गया था···पता नही मुकर्जी बाबू ने घण्टी दबाई थी या स्वयं ही···

मुकर्जी बाबू फ़ाइलों पर दस्तखत करते-करते कह रहे थे, "कोई हमें ब्लैकमेल करना भी चाहे तो कैसे करेगा···सभी तो सब कुछ जानते है हमारे बारे में···"

"मैं आपको ब्लैकमेल करने नहीं आया," गुस्से से पागल अविजित में अब तक विवेक नहीं जगा था।

"आप क्यों करेंगे? आप तो जानते है आपका क्वोटेशन ज़्यादा है इसी से लाइ-सेन्स आपको नही मिला। पर होते हैं ऐसे भी लोग जो नाजायज़ तरीक़ों से काम कर-वाना चाहते है। नही···आप नही···आप तो जानते है जिसका क्वोटेशन कम होगा

लाइसेन्स उसी को मिलेगा, क्यों घोष ?" मुकर्जी बाबू ने सेक्रेटरी से अनुमोदन मांगा।

"जी, सर," उसने फ़ौरन कहा।

काग़ज़ पर सरण का क्वोटेशन सबसे कम होता है, अविजित जानता है।

तमाम ग़ुस्से के बावजूद उसने राहत महसूस की। लाइसेंस तो मिल ही जाएगा। तभी मुकर्जी बाबू ने कहा, "हां, वे अगर किसी को भेजें···"

"कौन ? काजल ? वे आदमी भेज कर···"

"ना-ना, आपको नहीं," मुकर्जी बाबू बात काट कर बोले, "किसी और को अगर भेजें तो···बेकार रहेगा, कह दीजिएगा।"

"काजल आपको ब्लैकमेल करेगी ? काजल !" अविजित चीख़ भी न सका, फुसफुसा कर रह गया, "काजल जैसी महिला···"

"अच्छा तो···" मुकर्जी बाबू ने बाधा दी।

एक जगह बैठे-बैठे ही पूरी तरह सेक्रेटरी की तरफ़ घूम जाने का आभास देते हुए वे बोले, "राघवन को भेज दो।"

इशारे में आदेश था सामने से हट जाने का। सकपका कर अविजित उठ खड़ा हुआ, हाथ जोड़े और बाहर चला गया।

ग़ुस्से में भरा हुआ वह घर पहुंचा था और काफ़ी कुछ प्रभा-शुभा वग़ैरह के सामने उगल डाला था। काफ़ी कुछ ! सब नहीं ! सब क्या कोई किसी से कह सकता है···

"एक नम्बर का बदमाश है," उसने कहा था, "उठ कर चला आया मैं वहां से।"

"तमाचा नहीं मारा उसके मुँह पर ?" प्रभा ने कहा था।

अविजित दंग रह गया था। यह व्यंग्य है या सीधा प्रश्न ?

"काजल दी से यह सब कहेंगे ?"

"नहीं, उससे क्यों कहूंगा ? बेकार दु.ख होगा। कोर्ट में उसके लिए लड़ रही है। मिल भी गया तो लेकर क्या करेगी।"

"क्यों, पिता के प्रभाव से दूर रहेगा तो बदल भी सकता है," शुभा ने कहा, "मिस बनर्जी का व्यक्तित्व भी तो कम प्रभावशाली नहीं है।"

"मिलना ही तो मुश्किल है," अविजित ने कहा, "मुकर्जी ठहरे केन्द्र के मंत्री। उनका रसूख···कोर्ट-कचहरी भी तो आख़िर इन्सान ही चलाते है।"

"हम लोग उसे दून स्कूल से किडनैप कर ले तो ?" सहसा प्रभा कह उठी।

अविजित उसकी तरफ़ घूम गया और इस बार तल्ख़ी से कह उठा, "यूँ बैठे-बैठे बेपर की उड़ाने से कुछ नहीं होता।"

प्रभा की आंखो में एक बार ज़ोरदार बिजली कौंध गई पर उसने कहा कुछ

नहीं, आंखें झुका कर अपने में डूबी बैठी रही।

अब तक चुप बैठे शुक्ल जी ने सहसा जम्हाई लेकर चुटकी बजाई और बोले, "हरि-हरि, जो स्त्री पति को छोड सकती है उसे बेटे मे क्या मोह होगा ?"

"क्यो ?" प्रभा ने भंवे ऊपर चढा कर कहा।

"भारतीय संस्कृति में पति का स्थान पुत्र से ऊचा माना गया है। बेटा स्त्री का भार तब सम्भालता है जब पति उस योग्य नहीं रहता।"

"नामाक़ूल !" प्रभा ने दांत भीच कर कहा और कमरा छोडकर बाहर निकल गई।

उसके पीछे-पीछे शुभा भी चली आई।

"उन्होंने सुन लिया होगा," उसने कहा।

"सुनने दे। यह आदमी आखिर यहां रहता क्यो है, काम-धाम कुछ करता नहीं..."

"पिताजी उसे काम दिलवाने का कोशिश कर रहे है।"

"पिताजी कर रहे है ! और वह खुद क्या कर रहा है ?"

"तू उनसे इतना चिढती क्यों है ? मम्मी तो..."

"अच्छा, तू जानती है," प्रभा ने बात काट कर कहा, "कामरूप की औरतें आदमी को भेड़ा बनाकर रख लेती है।"

"हां...तो ?"

"हमारी ममी ने इस आदमी को औरत बनाकर रख लिया है।"

शुभा ने हसना चाहा पर हंस नही पाई।

"अगर ये चले गये तो हम में से एक को कालेज छोड़ देना पड़ेगा, "उसने धीमे से कहा।

"ओह ! तो इसीलिए यह तुझे पसन्द है।"

"मुझे ? नही-नही...मुझे पसन्द नही है..." शुभा ने कहा।

"क्यों नहीं है ?"

"पता नहीं...मैंने कभी उसके बारे में सोचा ही नहीं..." शुभा जिरह से परेशान होकर बोली।

"क्यों नहीं सोचा ?"

"पता नही...तू हर बात के पीछे क्यों पड़ जाती है ?"

"तू हर बात के प्रति उदासीन क्यो रहती है ?"

"मैं..."

"इस तरह अपने में डूबे रहना अच्छा नहीं होता, शुभा।"

शुभा की आंखो में आंसू आ गए।

"प्रभा," उसने कहा, "मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता।"

"तो उस के लिए कुछ करती क्यों नहीं ?"

"तुझे पता है," शुभा बोली, "पिताजी उसे कभी काम नहीं दिलवाएंगे।"

"शुक्लजी को ?"

"हां। काम दिलवा देने से वह हमारे किसी काम का जो नही रहेगा।"

प्रभा ने चौंककर उसकी तरफ़ देखा।

"तू भी जानती है ?" उसने कहा।

"उसके हाथ में घर की तमाम चाभियां रहती हैं। एक दिन सारा रुपया-पैसा लेकर भाग जाए तो अच्छा हो !" कहकर शुभा प्रभा को वहां छोड़, घर से बाहर दौड़ गई।

"पागल," प्रभा कहती रह नई, "इस तरह भी भला कभी कुछ होता है।"

मरा यह शुक्ल, प्रभा ने याद करके कोसा। पूरा पैरासाइट है। आई हेट पैरासाइट्स ! पर...असल में पैरासाइट कौन है, हम या वह ?

विमल ने कहा था—पैरासाइट्स ! तुम लोग वाक़ई पैरासाइट्स हो ! प्रभा ने कसमसा कर याद किया।

"तो गोली मार दो हमें," तमक कर प्रभा कह उठी थी।

'मारेंगे। समय आने पर," बिमल ने शांत स्वर में कहा था।

"क्यों, तब तक सोने के अण्डे दिलवाने हैं क्या ?"

"अरे लडो मत," काजल दी खिलखिला कर हंस पडी थीं, "सोने के अण्डे देने वाली बत्तख को भला कौन मारेगा।"

वे लोग काजल के घर बैठे थे। कुछ दिन हुए काजल ने हॉस्टल छोड़ दिया है। कालेज के पीछे की बस्ती में दो कोठरियाँ किराये पर लेकर रहती है। एक में ठसाठस किताबें भरी पड़ी हैं, दूसरी में काजल सोती-बैठती है और युवा लड़के-लड़कियों को लेकर बहस करती है। मिस बनर्जी से काजल दी बन चुकी है। प्रभा हर तीसरे चौथे दिन आती है। किताबों की कोठरी में बैठकर पढ़ा करती है या दूसरे कमरे में बहस में हिस्सा लेती है। मार्क्स, लेनिन, माओ, चे-गुएवारा, और भगतसिंह... काजल दी भगतसिंह पर किताब लिख रही है, फ़ाइल पढ़ने को मिल जाती है...यही विषय है, पढ़ाई के और बहस के भी।

कितने लोगों से प्रभा इस कोठरी में मिल चुकी है पर बिमल दत्त आज पहली बार मिला है।

पहली बार मिला था...

काजल की बात खत्म होने पर बिमल ने कुछ अचरज से पूछा था, "आप क्या पैसों की बात कर रही है ?"

"नहीं, क्रांति की," काजल ने कहा था, "हमारे लिए सोने के अंडे पैसे नहीं, कारतूस हैं।"

"मैं समझा नही।"

"प्रभा को सिखलाओ तो सही, तुम से अच्छी निशानेबाज़ बनेगी। बल्कि मुझे तो डर है, कहीं तुम ज्यादा ही न पिछड़ जाओ।"

"असम्भव!" बिमल दत्त ने कहा था।

"हां," प्रभा ने फ़ौरन बात पकड़ ली थी, "हर कायर के शब्दकोश में यह शब्द ज़रूर रहता है," उसने कहा था।

बिमल दत्त हा-हा करके इतनी ज़ोर से हंसा कि प्रभा दंग रह गई।

"अच्छा तो आप हंस भी सकते हैं। मैंने तो सोचा था···" उसने कहा।

बीच झंकार बिमल की हंसी हठात् रुक गई। चेहरा एकदम तन गया। माथे की त्यौरियां चढ गई। किसी दूसरे आदमी की आवाज़ में उसने कहा, "क्या सोचा था ?"

प्रभा घबरा गई। मजाक भूल गई।

"कुछ नहीं," डरे से स्वर में उसने कहा।

बिमल का चेहरा सिकुड़ उठा। आक्रोश की स्याही उस पर पुत गई है, वह बहुत ही क्रूर और जिद्दी आदमी मालूम पड़ने लगा।

कम-अज-कम हंसने का अधिकार तो सबके पास है," उसने इतने तीखे तज़ के साथ कहा कि प्रभा तिलमिला गई और ज़िन्दगी में शायद पहली बार उसका मन शुभा की तरह रोने-रोने को हो गया।

तभी काजल ने उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया और उसके कान में फुस-फुसा कर कहा, "परेशान मत हो। बिमल भीषण अभिनेता है। जात्रा पार्टी में दो साल थियेटर कर चुका है।"

प्रभा की जान मे जान आई और वह ज़ोर से हंस दी।

"क्या है ?" गहरी भर्त्सना के साथ बिमल दत्त ने पूछा।

"कुछ नहीं," प्रभा ने कहा, "बिला कारण हंसने का अधिकार सब को है।"

उसका वाक्य पूरा भी नहीं हुआ था कि बिमल का चेहरा एकदम पिघल गया और सोलह साल के लापरवाह छोकरे की तरह वह हा-हा कर हंस दिया।

प्रभा के बदन में धुरधुरी आ गई।

यह एक आदमी है या चार-पांच एक साथ!

बिमल···बिमल दत्त···दत्त···बिमलेन्दु दत्त। पता नहीं यह उसका असली नाम है भी या नहीं। कुछ भी तो अपने बारे में नहीं बतलाता। और प्रभा है कि सब कुछ जान लेना चाहती है।

"तुम्हारे माता-पिता कहां हैं ?" एक दिन प्रभा ने पूछा था।

"नहीं हैं," बिमल ने कहा था।

"ओह! कब से नहीं हैं ?"

"कभी नहीं थे।"

"क्या मतलब ?"

"जिसके मां-बाप नही होते, उसकी क्लास भी नहीं होती, इसलिए नहीं है।"

"तो तुम पैदा कैसे हुए ?" प्रभा हंसी।

"अपने गांव के ऊंचे खजूर से गिरा और···और था !" पूरी गम्भीरता के साथ बिमल ने कहा।

"तुम्हारा गाँव कहां है ?"

"जहाँ ऊंचा खजूर का पेड़ है।"

"खजूर का पेड़ कहा है ?"

"मेरे गाँव में।"

बस···बात खत्म हो गई थी। यह शुभा उसके बारे में क्या जानती है, सहसा प्रभा को खयाल आया। कितना जानती है ? कैसे ? पूछना चाहिए था उससे। आने दो वापिस, आते ही पूछेगी।

"तुम करते क्या हो ?" एक और दिन प्रभा ने बिमल दत्त से पूछा था।

"तैयारी।"

"किस की ?"

"जो मुझे करना है, उसकी।"

"तुम्हें क्या करना है ?"

"कोशिश।"

"किसकी ?"

"करने की।"

"क्या ?"

"जो मुझे करना है।"

"तुम तो ऐसे जवाब दे रहे हो जैसे मैं कोई खुफ़िया पुलिस अफ़सर हूं," प्रभा ने कहा था।

बिमल दत्त का चेहरा प्लास्टर से गढ़ी मूर्ति की तरह निस्पन्द, निर्जीव, अभेद्य हो गया था।

"अभ्यास···निरंतर अभ्यास !" बहुत देर बाद उसने धीमे से कहा था।

पीछे नही रहूंगी मै, हजारवीं बार प्रभा ने अपने से प्रतिज्ञा की। एक दिन मुझे साथ आने को कहना ही होगा, बिमल दत्त !

३

बिमल दत्त से कब मुलाकात होती, कुछ ठिकाना नही रहता।

रोज़-रोज़ जाकर काजल दी के घर बैठे रहो, दुनिया-भर के लोगों के साथ बहस करो, तब एक दिन···अचानक···बिमल आ पहुचेगा···कभी हफ़्ता गुज़र चुका होगा, कभी महीना, कभी एक ही दिन।

आएगा, बैठेगा और मन हुआ तो एकदम मनचले स्टूडेन्ट की तरह कह उठेगा, "क्यों प्रभा, कॉफ़ी पीने चलोगी ?"

यूनिवर्सिटी के कॉफ़ी हाउस में कॉफ़ी पीते हुए ही देखा था, शुभा ने उन्हे।

उस दिन पूछ लिया था शुभा से प्रभा ने, बिमल दत्त के बारे में वह कैसे जानती है।

"डाक्टर जैन ने बतलाया था," शुभा ने कहा था।

"डाक्टर जैन ? उनके साथ नाटक किया था उसने ?"

"हां, किया था एक बार।

"तू भी थी ?"

"नहीं-नही, वह तो दो साल पहले की बात है।"

"और अब तक डाक्टर जैन को याद है ? इतना लाजवाब अभिनय था ?"

"था तो। पर ख़ाली वह बात नही है।"

"फिर बतला न, क्या बात है। पेट में क्यों रखे हुए है ?"

"डाक्टर जैन कह रहे थे वह···दो साल पहले वह एम.ए. बीच में छोड़कर भाग गया था···"

"कहां ?"

"बंगाल।"

"तो ?"

"प्रभा, वह वहां एक साल की जेल काट कर आया है," शुभा ने कह ही डाला।

"बस यही बात है। तो कहते हुए तेरी ज़बान क्यों ऐंठ रही है? एक साल की जेल तो पिताजी तक काट आए हैं।"

"वह दूसरी बात है।"

"क्यो ?"

"वह स्वतंत्रता के लिए विदेशी सरकार से लड रहे थे।"

"और विमल दत्त ?"

"डॉक्टर जैन कह रहे थे, मिदनापुर ज़िले के किसी गाव मे उसने किसानो को उकसा कर गड़बड करवाई थी।"

"कैसी गड़बड़ ?"

"गाव में जिस ज़मीन पर खेती नही होती थी, उस पर उन लोगो ने ज़बरदस्ती कब्ज़ा कर लिया..."

"और खेती शुरू कर दी ?"

"हां।"

"तो इसमें ग़लत क्या है ?"

"सवाल ग़लत होने का नहीं, गैरक़ानूनी होने का है।"

"और अगर क़ानून ग़लत हो ?"

"मै नही जानती।"

"क्या नही जानती ? ग़लत क़ानून बदला जाना चाहिए या नही ?"

"हां।"

"और ग़लत सरकार ?"

"हां।"

"ग़लत सामाजिक व्यवस्था ?"

"हां।"

"फिर ?"

शुभा चुप रही।

"प्रतिनिधि सरकार जैसी कोई चीज़ नही होती," प्रभा ने कहा, "पांच साल में एक बार चुने जाने पर कोई एक आदमी लगातार सब का प्रतिनिधित्व कैसे कर सकता है ? और फिर सत्ता का नशा होता ही ऐसा है कि हाथ में आते ही आदमी सिर्फ़ अपने स्वार्थ के लिए काम करने लगता है। न भी करे तो देश की अर्थव्यवस्था बदले बग़ैर वर्ग-भेद मिट ही नहीं सकता। देश के अधिकांश लोग शोषित और ग़रीब बने ही रहेंगे। पूंजी-रहित श्रम को बेचने वाला आदमी ग़ुलाम से सिर्फ़ एक मायने में फ़र्क होता है—यह कि वह अपना मालिक तब्दील कर सकता है। मालिक उसे नही बेचता; वह खुद, खुद को बेचने पर मजबूर होता है..."

"ग़ुलामो की कमी रूस में भी नही है," सहसा शुभा ने कहा, "वहां तो क्रांति हो चुकी। उनकी 'बेगारी' के बारे में नही पढा ?"

"वह सब अन्तर्कालीन समय में होना पड़ता है। क्रान्ति होने पर पुरानी सामाजिक व्यवस्था बिल्कुल टूट जाती है पर नई व्यवस्था स्थापित होने में समय लगता है।

जब तक नये और पुराने का संघर्ष चलता रहता है, लड़ाई में पूरी तरह विजय पाने के लिए ज़रूरी हो जाता है कि पार्टी सेना की मदद से शासन करे। एक बार आर्थिक समानता स्थापित हो जाने पर लाभ के लिए श्रम करने की प्रवृत्ति का ह्रास हो जाता है और एक समय वह आता है जब किसी प्रकार के दमन या बल-प्रयोग की आवश्यकता नहीं रहती।"

"कब, प्रभा? कब आता है वह समय? आज तक आया है किसी देश में?"

"नही, पर आएगा जरूर।

"कब?"

"यह हम नही जानते। एक क़दम उठाते ही आदमी पहाड़ की चोटी पर नहीं पहुंच जाता। इसलिए क्या क़दम बढाना ही छोड़ देना होगा?"

"अगर पहाड़ की चोटी मिथ हो, यूटोपिया हो?"

"तो उससे कुछ नीचे डेरा डालना होगा।"

"एक सपने के लिए पूरा समाज नष्ट कर दोगे?"

प्रभा लम्हे-भर को चुप हो गई, फिर बोली, "तूने सपनो मे विश्वास कब खोया?"

शुभा कुछ कह नही पाई।

"ज़िन्दगी से भाग कर सपनों में शरण लेने से कही अच्छा है, सपने को पाने की खातिर ज़िन्दगी होम कर दो," प्रभा ने ही कहा।

"पाने की उम्मीद हो तब तो।"

"उम्मीद नहीं, विश्वास है।"

"शुभा ने और तर्क नहीं किया। वह अपने में ग़र्क हो गई। कुछ देर बाद, गुन-गुन करके उसने कहा, "विश्वास···उम्मीद···चिन्ता···किसी से कुछ नही होता। नेगेटिव हमेशा पॉज़िटिव पर हावी रहता है और धुंधलका कभी नही छटता···"

प्रभा ने चौक कर उसकी तरफ़ देखा, पूछा, "नाटक का संवाद बोल रही है?"

"नाटक ही तो है, "शुभा ने कहा, "तुम चाहे जितना भी तेज़ दौड़ो, वही खड़े रहते हो क्योंकि समय तुम से तेज भागता है।"

"पेसिमिस्ट!" प्रभा ने कहा था और उसे छोड़, बिमल दत्त में डूब गई थी।

दो महीने हो गए, बिमल दत्त से मिलना नहीं हुआ।

प्रभा रोज़ काजल के घर जाती है।

पहले की तरह किताबें पढ़ती है, बहस करती है पर···

"बिमल दत्त आजकल नही आता?" काजल से पूछा भी है कई बार।

"हां···आया नहीं तो···" काजल ने उत्तर दिया है।

काजल आजकल अनमनी-सी रहती है।

प्रभा नहीं जानती पार्थ को लेकर उसका केस हाई कोर्ट में तय होने वाला है।

"बिमल दत्त लौटकर आएगा तो ?" प्रभा पूछती है।

काजल परेशान हो उठती है।

"लौटने पर आएगा," वह कहती है।

प्रभा नही जानती बिमल दत्त कहां है। कही दो साल पहले की तरह किसी दूर-दराज़ ज़िला-जेल में बन्द तो नही।

"आप जानती है, बिमल दत्त कहां है ?" वह काजल से पूछती है।

"नही," काजल का कहना है।

"जेल में है तो मुझे बतला दीजिए, प्लीज।

"नही। तब ख़बर आ जाती।"

"ख़बर आने पर मुझे बतलाएंगी न ?"

"अच्छा, बतला दूंगी।"

बिमल दत्त और उसकी ख़बर, अब प्रभा को दोनो का इन्तज़ार है।

दो महीने की असफल प्रतीक्षा के बाद आदत पड़ने लगी थी कि काजल के कमरे में घुसते ही बिमल दत्त पर नज़र पड़ी। उसका चेहरा घनी दाढ़ी-मूँछ के पीछे छिपा था पर प्रभा देखते ही पहचान गई।

उसका मन हुआ, दौड़ कर बाहें उसके गले में डाल दे और कहे, बिमल—बिमल बिमल !

वह न सही···

उसके पास तख्त पर बैठ तो गई और ढेर सारी ख़ुशी स्वर में उंड़ेल कर बोली, बहुत दिनो बाद दिखे हो आज।"

"हां," बिमल ने कहा।

"कहां चले गए थे ?'

"बाहर।"

"अब तो रहोगे न कुछ दिन ?"

"शायद।"

"जाओगे कहां ?"

"बाहर।"

"तुम्हें मुझ पर बिल्कुल विश्वास नही है ?" आख़िर उसका धीरज टूट गया।

"नही," सहज स्वर में बिमल ने कहा।

"पर क्यों ?"

"क्योंकि अपने पर है।"

"तुम अकेले देश में क्रान्ति लाओगे ?"

"नही।"

"और लोग भी होंगे ?"

"कौन लोग ?"

"मेरी तरह के लोग।"

"मैं उनमें से एक नही हो सकती ?"

बिमल दत्त के भारी पपोटे नीचे गिर गए और आंखों की पुतलियों पर परदा हो गया। फिर भी प्रभा को लगा पपोटों के नीचे से वह बहुत गहरी दृष्टि से उसे तोल रहा है।

"क्रान्ति में विश्वास है ?" बिमल दत्त ने पूछा।

"हां।"

"अपने पर ?"

"हां।"

"मुझ पर ?"

"हां।"

"नहीं होना चाहिए !" बिच्छू की तरह बिमलेन्दु दत्त की आवाज ने डंक मारा। खटाक से पपोटों का परदा उठ गया। काली पुतलियों की सीधी मार से प्रभा घबरा गई।

"पर..." उसने कहा।

"तुम्हे क्रान्ति नही, मुझ पर विश्वास है ! तुम मेरे क़रीब रह कर काम करना चाहती हो !"

डक पर डंक !

"नही," प्रभा ने प्रतिवाद किया।

"तुम क्रान्ति नही मुझे चाहती हो !"

"झूठ है !" आहत अहम् ने प्रभा की आवाज़ में ललकार ला दी, "मै नेता से विश्वास चाहती हूं। तुम नेता हो तो तुमसे। कोई और है तो उससे। तुम मेरे लिए कुछ नहीं हो।"

बिमल दत्त के पपोटे फिर पुतलियों पर आ टगे। वह चुप बैठा रहा।

प्रभा कुछ कहने को कसमसाती रही पर उसकी चुप्पी तोड़ने का साहस नहीं हुआ।

"गोली चलाना सीखोगी ?" बहुत देर बाद बिमल ने बदली हुई आवाज़ में कहा।

"हां," प्रभा ने फ़ौरन कहा।

"ठीक है। राइफ़ल क्लब ज्वाइन कर लो।"

"राइफ़ल क्लब ?" प्रभा भौंचक थी, "तुम नही सिखाओगे ?"

"अपने पिताजी से कहना तुम्हें सदस्य बनवा दें।

'तुम..."

'सीख लो तब बतलाना।"

"पर···कैसे ?"

"काजल दी से कहना, वे मुझसे कहलवा देंगी।"

प्रभा ने राइफ़ल क्लब के बारे में मालूम किया। पता चला, वह शहर के रईसज़ादों का शौक़िया क्लब है, जहां मोटी फ़ीस अदा करके वे सदस्य बनते है और दिल्ली के 'रिज' पर राइफ़ल चलाना सीखते हैं। बाप-दादा कभी शिकार खेला करते थे, बेटे-पोते सिर्फ़ निशाना लगाते हैं।

प्रभा की सदस्य बनने में कोई दिक़्क़त नहीं हुई। उससे पहले भी दो-चार लड़कियां सदस्य थीं। अविजित से कहना भी नही पड़ा। बस फ़ीस के रुपये मांगे, जो बिला कारण पता किये फ़ौरन मिल गए।

जिस पैशन के साथ उसने राइफ़ल चलाना और निशाना साधना सीखा, उससे क्लब के शौक़ीन सदस्य ही नही, शिक्षक तक दंग रह गए।

"अरे, प्रभा बंसल," एक शिक्षक कह उठा, "तुम तो राइफ़ल चलाना ऐसे सीख रही हो जैसे इसके बिना तुम्हारी शादी नहीं होगी।"

"क्या करूं ?" प्रभा ने कहा था, "मेरा मंगेतर शादी के लिए तैयार ही नही हो रहा। अब बन्दूक की नली के ज़ोर पर मनवाना पड़ेगा।"

नाचती-थिरकती प्रभा काजल के कमरे में घुसी।

"बुल्स आई ! बुल्स आई ?" वह कहे जा रही थी।

"क्या हुआ ?" काजल ने किताब पर से सिर उठाकर पूछा।

"मेरी गोली ठीक निशाने पर लगी। मैं सर्वप्रथम आई हूं," प्रभा ने उल्लसित स्वर में कहा।

"खड़े निशाने पर ?" काजल ने पूछा।

"हा।"

"घूमते हुए निशाने पर मार लो, तब बतलाना," काजल ने सख्त स्वर में कहा और दुबारा किताब पढ़ने लगी।

हतप्रभ प्रभा कुछ देर चुप खड़ी रही, फिर धीरे से बोली, "आपने मुझे बधाई तक नहीं दी।"

"तुम गोली चलाना क्यों सीख रही हो ? " काजल ने एकदम पूछा।

"बिमल दत्त ने कहा था।"

"क्यों कहा था, जानती हो ?"

"कुछ-कुछ।"

"देखो प्रभा, पूरी तरह किसी चीज़ को जाने बग़ैर उसमें हाथ नहीं डालना चाहिए।"

"मैं जानना चाहती हूँ, काजल दी।"

"सच ? डर नही है ?"

"नहीं।"

"मोह ? लगाव ? प्यार ?"

"किससे ?"

"तुम्हारी पूरी ज़िंदगी तुम्हारे सामने है, प्रभा। तुम सुन्दर हो, पढी-लिखी हो; तुम्हारे पिता के पास पोज़ीशन है, पैसा है। तुम जो करना चाहो कर सकती हो, ज़िंदगी को भरपूर जी सकती हो।"

"ग्रापकी तरह ?" प्रभा ने कहा।

ग्राहत काजल चुप हो गई। फिर धीमे से हसी, वोली, "मुझसे कही ग्रच्छी तरह।"

"मैं वह सब नहीं चाहती, काजल दी।"

"फिर क्या चाहती हो ? बिमल के पीछे जाने से तो कुछ भी नहीं मिलेगा। पूरे देश में क्रान्ति लाने के लिये बहुत बड़ी संगठन-शक्ति चाहिए। वह हमारे पास नहीं है। देशके किसी एक कोने में चिनगारी-भर सुलगा सकते है हम, इस उम्मीद में कि भड़क कर वह फैलती चली जाएगी।"

"उम्मीद नही, विश्वास कहिए, काजल दी।"

"सोचने की बात यह है, प्रभा, कि यह ज़रूरी नहीं है कि तुम इस ग्राग को फैलते हुए देख पाग्रो। शायद उससे बहुत पहले किसी बीहड़ जंगल या पहाड़ी पर गोली खाकर मर चुकी होगी या कहीं दूर, उपेक्षित जेल की सी-क्लास की ग्रंधी कोठरी में ठुसी होगी ग्रौर···कोई कभी तुम्हारा नाम तक नही सुनेगा।"

"यह सोचने की नही, जानने की बात है, काजल दी।"

"जानती हो ?"

"हां।"

"ठीक है," काजल ने कहा, "घूमते हुए निशाने पर गोली मार लो, तब बतलाना।"

"ग्राप बिमल से कह देंगी ?"

"अभी नही। उसके बाद।"

"ज़्यादा दिन रुकना नही पड़ेगा," ग्रात्म-विश्वास के साथ प्रभा ने कहा।

"ठीक है।"

"पर···" प्रभा मायूस हो गई, "बिमल दत्त को मुझ पर विश्वास नही है।"

"यह काम ही ऐसा है," काजल का स्वर कुछ कम सख्त हो गया, 'तूने तो इतना पढ़ा है। याद है न, ग्राज़ाद ने भगतसिह के पकड़े जाने पर मुखबिर बन जाने की ग़लत खबर सुनकर क्या कहा था ? 'कभी मै पकड़ा जाऊं तो भी तुम लोग दल की सुरक्षा के लिए स्थान ग्रादि बदल लेना, भावुकता में ग्राकर मुझ पर विश्वास करके बैठे मत

रहना।' याद है न ? हम लोग जितना कम जाने उतना ही अच्छा है।"

"फिर भी साथ लेने का आश्वासन···"

"नही दे सकते। सिर्फ़ समय आने पर आदेश दे सकते है···"

"पालन कर सकेंगे, यह विश्वास तो चाहिए ?"

"हो जाएगा। मेरे कहने से नहीं। तुम्हारे करने से। जब होना होगा, तब। पहले नहीं।"

"यही सही।"

दोनों काफ़ी देर तक चुपचाप बैठी रही, फिर काजल ने कहा, "अपने पिताजी से कहना, एक बार मुझसे मिल लें।"

"कब ?"

"जितनी जल्दी हो सके।"

"कह दूंगी," प्रभा ने कहा। मन में सोचा किस क़दर बदल गई है काजल दी। पिताजी का नाम लेते हुए आंखो में चमक तक अब नही आती।

दुखी मन प्रभा सड़क पर चली जा रही है। बिमल दत्त साथ है फिर भी।

वह परीक्षा में पास तो हुई पर दूसरे नम्बर पर।

बिमल दत्त ने उसे निशाना लगाते देखा है और कहा है, "नॉट बैड।"

नॉट बैड, बीसियों बार प्रभा दुहरा चुकी है···काश, उसने बिमल के बारे में न सोचकर सिर्फ़ निशाने के बारे में सोचा होता।

दृश्य अब भी आखो के सामने है···

हवा में बंधी लम्बी डोरी। बीच में झूलती मूंठ वाली पतली डन्डी। मूंठ पर बंधा गुब्बारा। एक बार घुमाकर छोड़ने से डन्डी पेन्डुलम की तरह घूमती चली जाती है। नीचे लटके झूलते सिरे को गोली का निशाना बनाना है···

प्रभा के हाथ राइफ़ल पर हैं · डन्डी का मूंठ हवा में झूल रहा है···दाएं-बाएं-वापिस दाए।

प्रभा की बग़ल मे बिमल दत्त बैठा है।

मूंठ पर निशाना लगेगा—ठांय ! गुब्बारा फूट जाएगा···बिमल दत्त तब क्या कहेगा, प्रभा सोचे जा रही है···

देखो, बिमल देखो, मुझे निशाना लगाते देखो, उसने मन-ही-मन पुकारा है, राइफ़ल को कन्धा दिया है, निशाना साधा है और ट्रिगर दबा दिया है।

धांय ! गोली छूटी है···हवा में कम्पन हुआ है···फूला गुब्बारा सुरक्षित लटका है···प्रभा को घुमेर आ रही है···बिमल दत्त चुप है···निशाना चूक गया !

एक बार और, प्रभा ने सुना है, अपने को सम्भाला है और दुबारा राइफ़ल तान

ली है।

हा, वह है···हवा में बंधी डोरी···डोरी से लटकती डन्डी···डन्डी के सिरे पर बंधा गुब्बारा। हवा में झूलता गुब्बारा···दाएं-बाएं बाजिस दाएं। अछोर शून्य में तैरता गुब्बारा। गुब्बारा-गोला-गुब्बारा! गुब्बारा···गुब्बारा···

ठाय! गोली छूट गई है।

मूंठ नगा झूल रहा है···चिथड़े-चिथड़े गुब्बारा उड़ गया है। बिमल दत्त कह उठा है, "नॉट बैड।"

प्रभा ने राइफल नीची कर ली और खिसियाए मन से सोचा, काश, निशाना पहली बार में ठीक बैठा होता। काश, मैंने बिमल दत्त के बारे में न सोच कर सिर्फ़ निशाने के बारे में सोचा होता।

कल प्रभा कितनी खुश थी। बिमल दत्त ने कहा, "कल तुम्हें निशाना लगाते देखेंगे।"

काजल दी से खबर पाकर बिमल दत्त उनके कमरे में उनसे मिला था। इस बार तीन साथी भी थे।

"अपने पिताजी से क्या कहा था, गोली चलाना क्यों सीखना चाहती हो?' आते ही बिमल दत्त ने पूछा था।

"कुछ नही कहा। सिर्फ़ क्लब में भरती होने के लिए पैसे मांगे थे," प्रभा ने कहा।

बिमल दत्त के चेहरे पर आश्वस्ति का भाव झलक आया।

तभी एक साथी बोल उठा, "आपके पिताजी तो काफ़ी पैसे वाले आदमी हैं।"

स्वर के उपहास से चौंक कर प्रभा ने उसकी तरफ़ देखा। कम-उम्र लड़का है, गोरा, शायद सुन्दर। इस वक़्त ओंठो में व्यंग्य की मुरकी है, आखों में आक्रोश की लपट। अगला चुभता वाक्य उछालने को बेक़रार चेहरा विकृत हो उठा है।

"नही तो," उसने संकुचित होकर कहा।

"क्यों, सिंघानिया मिल्स में मैनेजर नही हैं?" उसका बात खत्म होने से पहले ही वाक्य उछल आया।

"है तो," प्रभा और संकुचित हो उठी।

"हम लोग तो आपको बिल्कुल जंगली दिखलाई दे रहे होंगे," अपमान करने की नीयत से उसने कहा।

"नहीं, आप लोग नही," प्रभा ने तड़प कर कहा, "सिर्फ़ आप!"

"यहां क्या कैबरे होने वाला है जो अमीर बाप की बेटियों को निमन्त्रित किया जा रहा है," तिलमिला कर युवक ने काजल की तरफ़ रुख किया।

"नाहक क्यो गरम होते हो, कामरेड अनिल," काजल ने धीमे से कहा, "उसके बाप ने उसे पैदा किया है, उसने अपने बाप को नही।"

"मैं पूछता हूं···" अनिल ने उग्र स्वर में कहना शुरू किया।

"ज़रूरत नही है!" बिमल दत्त के वर्फ़ीले स्वर ने उसे काट दिया।

अनिल के ओंठ फड़के पर आवाज़ नही निकली।

"कल हम लोग इनकी निशानेबाज़ी देखने चलेंगे। मै और···"

प्रभा बहुत डर गई। अब वह कहेगा 'तुम' और अनिल फटाक से कह उठेगा—मैं नही जाऊंगा। फिर क्या होगा!

बिमल दत्त ने चुप्पी को खिंचने दिया। वार करने को उद्यत अनिल सिकुड़ने लगा।

"···और कामरेड कैलाश," बिमल दत्त ने दूसरे साथी का नाम लेकर वाक्य पूरा कर दिया।

कैलाश की आंखें बन्द थी। प्रभा का खयाल था, वह सो रहा है। अपना नाम सुन कर भी उसने पूरी तरह उन्हें नही खोला। बस दाई आंख की पलक कुछ उठी और झपक गई।

"सुबह दस बजे, यही मिलेंगे," बिमल ने प्रभा से कहा।

कैलाश के मुह से हां-ना सुनने की शायद जरूरत नही थी।

आज सुबह बिमल दत्त और कैलाश को देखा तो प्रभा दग रह गई। वही बिमल और कैलाश हैं जिन्हें कल देखा था या किसी नवधनिक के आलसी, उदासीन और विलास-प्रिय पुत्र!

"बहुत बढ़िया सूट पहना है," उसने हंस कर बिमल से कहा।

"थैंक्यू," बिमल ने शुद्ध अंग्रेजी लहज़े में लापरवाही से कहा, "बुरा नहीं है।"

कोट की जेब से उसने खुशबूदार रूमाल निकाला, पैन्ट की जेब से सिगरेट केस और लाइटर। रूमाल ओठो से छुआ कर, एहतियात के साथ वापिस जेब में डाला, सिगरेट केस खोला और खुद लेने से पहले प्रभा के आगे करके पूछा, "लेंगी?"

"जी नही, शुक्रिया," प्रभा ने कहा।

सुस्त अदा के साथ बिमल ने सिगरेट जलाई, केस और लाइटर जेब के हवाले किया और शिथिल भाव से खड़े होकर कहा, "शैल वी गो?"

प्रभा ठठा कर हस दी। "ओ बिमल!" उसने कहा।

"क्लब में मैं आपके मेहमान की तरह जा रहा हूं," बिमल दत्त ने बिला मुस्कराये कहा "मेरा नाम भानुसिह देव है।"

"भानुसिंह देव?"

"हां, और यह है कैलाश राव।"

"भानुसिंह देव क्यों?" प्रभा ने पूछा।

बिमल दत्त ने उत्तर नही दिया। उसकी काली पुतलियां पपोटों की ओट हो

गई।

"सॉरी," प्रभा ने कहा, "क्यों नहीं पूछना चाहिए।"

विमल चुप रहा। कैलाश तो वैसे ही बुत बना बैठा था। आंखें मुंदी थीं। बस ओठों से लगी सिगरेट बराबर धुआ बाहर फेंक रही थी, उसी से ज़ाहिर होता था कि वह सो नही, जाग रहा है।

क्लब में भानुसिंह देव और कैलाश राव की धाक जम गई।

सेक्रेटरी साहब ने खुद उन्हे पूरे क्लब का दौरा करवाया; राइफ़लों-बन्दूकों में उनकी दिलचस्पी देख कर खूब बखान करके क्लब का 'शस्त्रागार' दिखलाया और प्रभा का बार-बार शुक्रिया अदा किया कि ऐसे ऊंचे क़िस्म के मेहमानों को क्लब में लेकर आई।

राइफ़लें रखने के तालाबन्द कमरे में उन्हें ले जाकर सेक्रेटरी साहब ने तक़ल्लुफ़ के साथ कहा, "ये तो मामूली राइफ़लें है पर हमारे पास कुछ नामी बन्दूकें भी है।"

"नामी बन्दूकें ?" प्रभा ने कहा।

"मेरा मतलब नामी सदस्यो की बन्दूकें जो उन्होने क्लब को भेंट कर दी···यह महाराजा छतरपुर की बन्दूक है···"

"मामाजी की···" कैलाश ने जम्हाई लेकर कहा।

"आप उनके भांजे हैं ?"

खिड़की के पास पहुंच कर कैलाश दीवार का सहारा लेकर खड़ा हो गया। अल-साये स्वर में बोला, "मैंने सोचा था यह बन्दूक वे मुझे देंगे," और अपनी अधमुदी आंखें उसने पूरी तरह मूद लीं।

कमरे से बाहर आने पर प्रभा ने उससे पूछा था, "अगर वह महाराजा छतरपुर को जानता होता तो···?"

"तो क्या ?" कैलाश ने कहा था, "जितना आमतौर पर लोग अपने मामाओ को जानते हैं, उससे कुछ ज़्यादा ही मैं अपने मामा को जानता हूं।"

"महाराजा छतरपुर सचमुच आपके मामा है ?"

"जी।"

"तो···अमीर बाप के बेटे भी क्रांतिकारी दल में शामिल हो सकते है···"

"सुना नही था, काजल दी ने कहा था, मेरे बाप ने मुझे पैदा किया है, मैंने अपने बाप को नहीं।"

"समझ गई। काजल ने आप ही के मुह से सुना होगा।"

"आप बोर हो रहे है ?" कमरे के अन्दर कैलाश को आंखें मूदे देख कर सेक्रेटरी साहब ने पूछा था।

कैलाश पर कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई थी।

"यह डबल-बैरल किसकी है?" बिमल दत्त ने पूछा।

"यहां के अंग्रेज कमिश्नर साहब की है। बड़े मशहूर शिकारी थे।"

"थे?" प्रभा ने कहा, "अब क्या हुआ, मर गए?"

"नहीं, हिन्दुस्तान छोड़कर चले गए।"

"१९४७ में जाना पड़ा होगा।"

"हां।"

"हाऊ सैड," बिमल दत्त ने निर्लिप्त शिष्टाचार के साथ कहा, "पिताजी उनके शिकार के क़िस्से सुनाया तो करते थे।"

"अच्छा-अच्छा," सेक्रेटरी साहब का स्वर और मधुर हो गया, "क्या नाम है आपके पिताजी का?"

"खिड़की खोल दीजिए!" कैलाश की आवाज़ ने सहसा सबको चौंका दिया।

"बहुत उमस है," उसने फिर कहा।

सेक्रेटरी साहब ने लपक कर खिड़की खोल दी।

कैलाश उसकी चौखट पर बैठ गया। सिर छड़ों पर टिका कर, आंखें मूंदे-मूंदे शरीर का दबाव उन पर डाला। बिल्कुल बेकार छड़े हैं, आसानी से निकाली जा सकती हैं, फ़ौरन उसने अन्दाज़ा कर लिया।

"अगली बार झांसी गया तो पिताजी की बन्दूक आपके लिए लेता आऊंगा।" बिमल ने कहा, "मैं तो शिकार खेलता नहीं। गांधीजी नामका लेकर हिंसा छोड़ दी थी। अब ये ले आई है तो..."

"मैं तो सिर्फ़ निशाना लगाती हूं," प्रभा ने कहा।

"जहां तक निशाना लगाने का सवाल है, हम किसी से कम नहीं..."

काश, मेरा निशाना पहली बार में लगा होता, क्लब से काजल के कमरे की तरफ़ पैदल लौटते हुए, प्रभा ने एक बार फिर सोचा और कनखियों से साथ चलते बिमल को देखा। क्या सोच रहा है वह?

"तुम मुझे गोली मार सकती हो?" अचानक, बिना प्रस्तावना के, बिमल ने कहा।

प्रभा चौंक कर ठिठक गई। बिमल दत्त चलता रहा।

फ़ौरन प्रभा ने अपने को सम्भाला और तेज़ी से आगे बढ़ कर उसके साथ हो गई।

"हां," उसने कहा, "ज़रूरत पड़ने पर।"

"ज़रूरत क्यों पड़ेगी?" बिमल ने फटकार कर कहा।

"अगर कभी तुम विश्वासघात करो, तब," प्रभा ने बेधड़क कहा।

"किससे?"

"दल से। क्रांति के उसूलों से।"

"हिचकोगी नहीं ?"

"नहीं।"

"तब तक काम करो।"

प्रभा का दिल ज़ोर से धड़क उठा पर आवाज़ नहीं कांपी।

"कहो," उसने कहा।

"राइफ़ल क्लब के स्टोर की चाभी चुरा लाओ।"

"डुपलीकेट से काम चलेगा ?" प्रभा ने बिला हिचके पूछा।

"हां।"

"यह लो," प्रभा ने पर्स खोल कर चाभी निकाली और बिमल को पकड़ा दी।

बिमल का चेहरा पसीज गया।

कैलाश ने आखें पूरी खोल ली।

इससे ज़्यादा प्रभा को उम्मीद भी नहीं थी।

"महीना भर पहले ही मौक़ा देख कर चाभी का 'वैक्स इम्प्रेशन' ले लिया था और डुपलीकेट भी बनवा ली थी," उसने कहा।

क़िस्मत से महीना भर पहले अनित्य दो दिन के लिए दिल्ली आ पहुंचा था।

उसी को चाभी का 'वैक्स-इम्प्रेशन' देकर प्रभा ने कहा था, 'बहुत से चोर-डाकू आपके दोस्त होगे। मुझे एक चाभी बनवा दीजिए।' और बिला जिरह उसने चाभी बनवा कर ला दी थी।

"किसी को शक तो नहीं हुआ ?" बिमल दत्त ने पूछा।

"नहीं। महीना बीत भी चुका।"

बिमल दत्त ने हाथ बढा कर चाभी ले भी।

"थैंक्यू, कामरेड प्रभा।" उसने कहा।

कामरेड प्रभा !

"थैंक्यू-थैंक्यू-थैंक्यू !" प्रभा ने कहा।

४

आज बहुत दिनों बाद अविजित काजल से मिलने जा रहा है। प्रभा ने कहा था काजल दी ने बुलाया है, जितनी जल्दी हो सके।

उस बात को पन्द्रह दिन बीत गए। रोज़ वह अपने से कहता, काजल ने बुलाया है, जाना चाहिए पर···

काजल के सामने जाने की इच्छा नहीं है या···हिम्मत नही हैं?

आजकल कहीं जाने की इच्छा नहीं होती। घर से दफ़्तर और दफ़्तर से घर··· नहीं, वह भी नही। घर से दफ़्तर ज़रूर पहुँच जाता है पर दफ़्तर से घर लौटा नहीं जाता····भटकता हुआ क्लब पहुँच जाता है। पागल की तरह टेनिस खेलता है। एक सेट···· दूसरा···उसकी उम्र के लोग एक सेट खेल कर पस्त हो जाते हैं और अविजित है कि ···एक के बाद मशीन से इंसान बनना शुरू करता है।

बदन पसीने से लथपथ हो, सांस चलती हुई दीखने लगे तभी तो पता चलता है, यह रोबो नही आदमी है।

दो सेट खेल कर हाफ़ता हुआ कुर्सी में गिर जाता है और एक के बाद एक गिलास बीयर का, हलक में उतार लेता है। थका हुआ शरीर, सोया हुआ दिमाग़, घिरता हुआ अंधेरा···हां, अब घर जाया जा सकता है।

टेनिस कोर्ट पर तेज़ बत्तियां लगी है, अँधेरा होने पर भी खेला जा सकता है। अविजित रोशनी का मोहताज नहीं है पर···आखिर तो घर जाना ही होता है···

क्लब के अन्य खिलाड़ीपरेशान है। अच्छा खिलाडी अविजित हमेशा से रहा है पर अब तो जैसे न हारने की क़सम खाई है।

एक हारे हुए आदमी की जीत की हवस! बहुत भयानक होती है!

कल डाक्टर बख्शी पांच गेम से हार गए। नाराज हो कर बोले," आजकल बहुत आक्रामक टेनिस खेलने लगे हो बंसल। ब्लड-प्रेशर तो चेक करा लिया है न, पैतालीस की उम्र के बाद जरा होशियार रहना चाहिए।"

"आ जाऊँगा एक दिन," अविजित हँस पड़ा था, "आप ही चेक कर दीजिएगा।

"बेकार क्यों वहम डाल रहे हैं, डॉक्टर बख्शी," क्लब के सेक्रेटरी मिस्टर खोसला बोल पड़े, "मिस्टर बसल का टेनिस हमेशा से बेहतरीन रहा है, स्पीड में नौजवानों को मात करते हैं।"

"आगे मत बोलने दो, बसल भाई," छटी व्हिस्की की पिनक में मिस्टर आग़ा बोले, "कहो न ज़ोर से—अभी तो मैं जवान हूँ!"

सब लोग ठठा कर हंस पडे थे और अविजित सहसा बूढ़ा महसूस कर उठा था। शरीर से नहीं, मन से। टेनिस खेलना महज़ नाटक हो जैसे।

श्यामा इन दिनों बहुत नाराज़ रहती है।

"सारी शाम कहां रहते हो आजकल?" कल भी पूछ रही थी।

"क्लब," उसने कहा था।

"रोज़?"

"हां।"

"ताश खेलने लगे हो?"

"नहीं, टेनिस।"

"आठ बजे तक?"

"हां।"

"अंधेरे में?"

"बत्तियां है।"

अविजित को नींद आ रही थी। अनमने भाव से छोटे-छोटे जवाब दे रहा था। श्यामा अधीर होती जा रही थी। उसे डर था कि कहीं उसका ध्यान अपनी तरफ़ खींच पाना एकदम नामुमकिन न हो जाए।

"प्रभा-शुभा में से भी कोई घर पर नहीं रहता, "वह कहती गई," मैं अकेली पड़ी रहती हूँ।"

"क्यो, शुक्ल कहां गया?" अविजित ने उनीदे स्वर में पूछा।

"कहीं नहीं, पर…"

"तुम्हारी तबीयत तो ठीक रही न?"

"हां, पर…"

"शुक्ल सब जानता है। कोई बात हो तो…"

"तुम्हारी जगह शुक्ल तो नहीं ले सकता!" श्यामा की आंखों से टप-टप आसू गिरने लगे। मुँह से बोल नहीं निकला।

हतप्रभ अविजित उसे देखता रह गया। ऐसे रोते तो पहले उसे कभी नहीं देखा।

श्यामा रोती है तो ज़ोर से विलाप करके, रुलाने वाले को उसके दोष का पूरा अहसास करा के। इस तरह घुट-घुट कर सिर्फ़ अपने लिए रोते तो उसे पहले कभी

नहीं देखा। चुपचाप बैठा अविजित उसे रोते देखता रहा। पास जाकर चुप कराने की हिम्मत नहीं हुई।

"मैं तो सिर्फ़ इतना कह रहा था कि शक्ल भला आदमी है···," कहते-कहते रुक गया था अविजित।

"अनित्य कहा है आजकल, जानते हो?" काफ़ी देर बाद रुंधे गले से श्यामा ने कहा।

"अनित्य? क्यों, क्या हुआ?" अविजित ने चौक कर पूछा।

"उसे बुलाना है। बहुत दिनों से देखा नहीं।"

"तुम्हारे पास उसका पता है?"

"नही।"

"ख़त भीन हीं आया?"

"नहीं।"

"पिछली बार आया तो ढंग से बैठ कर पांच मिनट बात भी नहीं हुई," श्यामा ने कहा, "कुल एक दिन तो रहा दिल्ली में, वह भी दुपहर बाद घर में घुसा नहीं और सारी सुबह प्रभा न जाने क्या खुसर-पुसर करती रही···" श्यामा ने नाराज़गी ज़ाहिर की ही थी कि प्रभा कमरे में घुसी।

"आप काजल दी से मिल लिए," अविजित को देखते ही उसने पूछा।

"कहां गई थी तुम?"

"हां, पूछो इससे," श्यामा के गुस्से को निमित्त मिल गया, "रोज़-रोज़ इतनी देर करके क्यों आती है!"

"आप खुद जो पूछ लीजिए," प्रभा ने कहा।

"पूछ तो रही हूं।"

"जल्दी नहीं आना चाहती इसीलिए देर से आती हूं।"

"प्रभा! यह क्या तरीक़ा है बोलने का! कहां से आ रही हो, काजल के घर से?"

"हां।"

अविजित ने चाहा, पूछे रोज़ वही जाती हो पर···उसने कह दिया, नही तो आगे पूछना पड़ेगा, फिर कहां जाती हो···सवालों का एक सिलसिला···नहीं, रहने दो।

"मैं जा नहीं पाया उनके पास। कल जाऊंगा," उसने इतना ही कहा।

प्रभा कमरे से बाहर चली गई।

"प्रभा दिन-पर-दिन ढीठ होती जा रही है। तुम उसे समझाते क्यों नही। ऐसे ही चला तो देख लेना, एक दिन कुछ अनर्थ हो कर रहेगा," श्यामा ने कहा।

अविजित चुप रहा।

"एक शुभा है," श्यामा कहती गई, "नाटक के सिवाय कुछ सूझना ही नहीं। अभी तक रिहर्सल से नहीं लौटी।"

अविजित फिर भी कुछ नहीं बोला।

वह ज़बरदस्त थकान महसूस कर रहा था। नींद से पलकें बोझिल थीं। प्यास से गला सूख रहा था। बदन पसीने से चिपचिपा रहा था। एक-दो गिलास बीयर और पीनी चाहिए थी पर···पी भी लेता तो तरावट टिकती कितनी देर ? पता नहीं क्यों घर में घुसते ही प्यास लग आती है···मन हो रहा है ढेर सारा ठण्डा पानी हलक के नीचे उतार कर बिस्तर पर चित लेट जाए। पर श्यामा कुछ कह रही है और उसके बोलने-बोलते उठ जाना···

"खोखी !" श्यामा ने आवाज़ लगाई।

"हां, ममी," पानी का गिलास हाथ में लिए वह फ़ौरन सामने थी।

दरवाज़े की ओट में खड़ी वह न जाने कब से इन्तज़ार कर रही थी कि श्यामा शान्त हो और वह अन्दर आकर···

पानी का गिलास उसने अविजित के आगे बढ़ा दिया, मुंह से कुछ नहीं कहा।

"पानी में थोड़ा ग्लुकोज़ डाल कर मुझे दे दे," तभी श्यामा ने कहा, "दिल बैठा जा रहा है।"

ओठों की तरफ जाते गिलास को बीच में रोक कर, अविजित ने खोखी की तरफ बढ़ा दिया।

"यह दे दो," उसने कहा।

"आप पीजिए, मैं और ले आती हूं।"

"ओफ्फ़ोह, जल्दी कर !" श्यामा ने कहा।

असमंजस में पड़ी खोखी ने अविजित के हाथ से गिलास ले लिया और उसमें ग्लुकोज़ मिलाने लगी पर उसकी तरल आंखें अविजित पर टिकी रहीं।

अविजित की प्यास बढ़ती गई।

वह पानी पीने नहीं उठा।

श्यामा का काम निबटा कर खोखी खुद लाएगी। खोखी अब उतनी छोटी नहीं रही। खोखी···क्या नाम है उसका···सुस्मिता बड़ी हो रही है पर प्रभा की तरह अविजित से बड़ी नहीं···

प्रभा तो आजकल ऐसे दीखती है जैसे बीस बरस पहले काजल दीखती थी। वैसी, जैसी वह उस दिन लगी थी···१९३४ में···जेल में मुलाक़ात के दिन।

और शुभा ? क्या कोई हाड़-मास का इंसान धीरे-धीरे छाया में तब्दील हो सकता है···दूसरे आदमी के देखते देखते, उसकी नज़रों के सामने ?

अगर मैं अपना हाथ शुभा के कन्धे पर रखना चाहूं···मुझे डर है···आशंका नहीं विश्वास है···कन्धे को हवा की तरह भेद कर हाथ बेसहारा नीचे गिर जाएगा। बादलों के कन्धे नहीं हुआ करते।

दूसरा हाथ प्रभा के कन्धे पर रखूं···खूब ठोस है उसका कन्धा पर···वह हाथ झटक देगी···कन्धे से लुढ़क कर बेसहारा नीचे गिर जाएगा··· •

गान्धीजी दो लड़कियों के कन्धों पर अपने दोनों हाथ रख कर चला करते थे।

'बुढ़ापे की लकड़ियां' नाम दिया था उन्हे।

प्रभा-शुभा को लेकर चलते तो···

अविजित ठठाकर हंस दिया।

एक भाप बन कर उड जाती, दूसरी पत्थर बनकर जम जाती।

बेचारे गाधीजी···बेचारा अविजित !

बेचारा···? नही-नही, क्या ख़ुराफात आ गई दिमाग़ में···अभी तो मै जवान हूं। आगा का बच्चा ! बेदाल बूदम ! टेनिस के दो सेट एक साथ खेलकर तो दिखलाये।

और···मैं खामख्वाह काजल से मिलने क्यो नही जा रहा ? इतने दिन टालता क्यों रहा। बुलाया है तो कोई जरूरी काम होगा। उसका करने वाला है कौन। कल जाऊंगा···जरूर जाऊगा।

अविजित काजल के पास जा पहुंचा।

"आओ अविजित," काजल ने कहा, "जाने से पहले तुमसे मिलना जरूरी था।"

"बाहर जा रही हो ?"

"हां। कालेज से इस्तीफ़ा दे दिया।"

"क्यो ?"

"देना पड़ा। मेरे पढ़ाये इतिहास में उन्हें भविष्य की गन्ध आने लगी है।"

अविजित समझते हुए भी नही समझा, विषय बदलकर बोला, "भगतसिंह पर तुम्हारी किताब छप गई ?"

"तैयार है," काजल ने पाण्डुलिपि दिखला कर कहा, "जिन्हें पढ़ना चाहिए, वे पढ भी रहे है। छोड़ो उसे, तुमसे जो काम था, वह कहूँ। बीस हज़ार रुपया चाहिए।"

"बीस हज़ार !"

"देने को कहा था, भूल गए ?"

"नहीं भूला तो नही।"

"तो इरादा बदल गया ?"

"नही। इरादा क्यों बदलेगा ?"

"फिर ?"

"दल है ?"

"हाँ।"

"करना क्या चाहते हो तुम लोग ?"

काजल देर तक चुप रही। वह कहीं दूर देख रही थी। अविजित को लगा वह उसकी उपस्थिति भूल चुकी है।

"प्रोपोगेन्डा बाई डेथ," बहुत देर बाद उसने धीमे से कहा जैसे सिर्फ़ अपने को सुना रही हो।

"क्या ?"

"मृत्यु सस्ती भी होती है और महंगी भी। खूब महंगी हो तो प्रचार के लिए उससे अच्छा साधन दूसरा नहीं है। बिना प्रचार जनक्रान्ति कैसे होगी..."

अविजित डर गया।

"मृत्यु ?" उसने कहा, "तुम लोग आत्महत्या में विश्वास करते हो ?"

"आत्महत्या ?" काजल चौंक उठी, "इतनी सस्ती मौत !"

"तब ? मुझे समझाकर बतलाओ, काजल, क्या करना चाहते हो तुम लोग ?"

अब काजल ने उसकी तरफ़ देखा।

"याद है, अविजित," उसने कहा, "असेम्बली में बम फेंककर भगतसिंह जो परचे फेंके थे, उनमें क्या कहा गया था ?"

"नहीं, अब याद नहीं।"

"फ्रांसीसी अराजकतावादी वेला के शब्द—बहरों को सुनाने के लिए ऊंची आवाज की जरूरत होती है।"

"हां..."

"और सोई हुई जनता को जगाकर अपने अधिकारों के प्रति सचेत करने के लिए बम के धमाके काफ़ी नहीं है। बहुत जबरदस्त उफ़ान की जरूरत है उसके लिए, बहुत महंगे प्रचार की। आत्म-बलिदान से महंगा प्रचार क्या हो सकता है ?"

"तुम करना क्या चाहती हो काजल ?"

"इतिहास को दुहराना चाहती हूं। जो अधूरा रह गया उसे पूरा करना चाहती हूं।"

काजल के हाथ में किताब की पाण्डुलिपि अब भी थी। धीरे-धीरे उस पर ऐसे हाथ फेर रही थी जैसे अपने किसी अज़ीज़ का सिर सहला रही हो। उसकी आंखों की मन्त्रमुग्ध चमक से अविजित बंध गया। बिना कुछ कहे, चुपचाप बैठा उसे देखता रहा।

"याद है," कुछ पल ठहरकर काजल ने कहा, "आठ अप्रैल १९२९ को भगतसिंह ने असेम्बली पर बम फेंका था और २३ मार्च १९३१ को उन्हें फांसी हुई। इन दो सालों के दौरान एक लम्हे के लिए भी वे 'प्रोपोगेन्डा बाई डेथ' के सिद्धान्त से नहीं हटे। सैशन जज की अदालत से लाहौर हाई कोर्ट, फिर स्पेशल मैजिस्ट्रेट की अदालत, फ़ौजी ट्रिब्यूनल और अन्त में लंदन प्रिवी-कॉन्सिल को अपील, सबको उन्होंने जन-साधारण की आज़ादी के प्रचार का मंच बना डाला। एक बार भी अपने बचाव का प्रयत्न नहीं किया पर प्रचार के किसी साधन को हाथ से नहीं जाने दिया। कितने असामान्य शौर्य से हर तरीका अपनाया—एक सौ चौदह दिन की भूख हड़ताल, जेल सुधार की माँग, ब्रिटिश अदालत का बायकाट, वकीलों से बहस, आजादी से भी आगे जाकर समाजवादी क्रान्ति पर वक्तव्य...इस तरह कि हाई कोर्ट के जस्टिस फ़ोर्ड भी उन्हें अपराधी घोषित करते हुए फ़ैसले पर लिख उठे...ये लोग दिल की गहराई और पूरे आवेग के साथ वर्तमान समाज के ढांचे को बदलने की इच्छा से प्रेरित थे। भगतसिंह एक ईमानदार और सच्चे क्रान्तिकारी है। मुझे यह कहने में कोई झिझक नहीं है कि

व इस कथन को लेकर पूरी सच्चाई से खड़े हैं कि दुनिया का सुधार वर्तमान सामाजिक ढाँचे को तोड़कर ही हो सकता है···"

"सब कुछ अखबारों में छपता रहा, जनता में जोश उफ़नता रहा···अन्तिम अपील से पहले, मालूम है, उन्होंने अपने साथियो से क्या कहा था—फांसी तब हो जब देश की जनता का जोश अपने उफ़ान पर हो और उसका ध्यान पूरी तरह इसी की ओर केन्द्रित हो···अपील का उद्देश्य यह हो कि हमारी फांसी रुकी रहे और वह तब हो जब कांग्रेस का समझौता सरकार से हो और अपने परिणामों से शानदार सिद्ध न हो, युवक वर्ग में इससे असंतोष फैल रहा हो, बस उन्हीं घडियों में हमें फांसी लगे और इस प्रकार कांग्रेस की बागडोर उग्रतावादियों के हाथ में चली जाए।

"कितनी मंहगी बना ली थी उन्होंने अपनी मृत्यु, कितना व्यापक था उनका प्रचार!"

"फिर भी···" अविजित ने निराश स्वर में कहा।

"फिर भी···" काजल ने दीर्घ निश्वास छोड़कर कहा, "कुछ नही हुआ! जोश फैला, उफ़ान आया और समझौते के ठंडे छीटे खाकर बैठ गया। सोलह साल बाद आज़ादी मिली भी तो नाम मात्र को।"

"तब···"

"इसीलिए तो अविजित, उफ़ान को हवा देते रहने के लिए एक मज़बूत दल की ज़रूरत है।"

"कौन लोग है तुम्हारे दल में?" अविजित ने पूछा और पूछ कर डर गया कि कहीं काजल प्रभा का नाम न ले दे।

"देश के युवा लोग हैं," काजल ने कहा।

"तुम सब इसी में विश्वास करते हो—प्रोपोगेन्डा बाई डेथ?"

"मै करती हूं। मैं क्राति जगाना चाहती हूं। मेरे साथी क्रांति लाना चाहते हैं।"

"कैसे?"

"साधन और सत्ता पर कब्ज़ा करके। आम लोगों की हुकूमत क़ायम करके।"

"कैसे होगा?"

"होगा। साधन रहेंगे तो होगा। किसी एक गांव के भूमिहीन किसान अपने गाँव की ज़मीन पर कब्ज़ा कर लेंगे, अपनी सरकार बना लेंगे फिर प्रचार···प्रचार··· मृत्यु से रंगा प्रचार!"

"नाम क्या है तुम्हारे दल का?" उत्तेजित अविजित आगे को झुक आया।

"लोक सेना," काजल ने कहा, फिर बोली, "इतनी बाते पूछ रहे हो, तुम भी दल में शामिल होगे?"

मर्माहत अविजित झटके से पीछे हट गया।

"कब तक मुझ पर व्यंग करती रहोगी, काजल," उसने कहा, "क्रान्ति करने की

मेरी उम्र बीत गई और जब थी भी···" मोमबत्ती की लौ की तरह उसका स्वर थर-थराया और सरसरा कर बुझ गया।

काजल को लगा, उसके देखते-देखते उसके चेहरे पर असंख्य झुर्रियां खुद आई है।

अपना हाथ आगे बढ़ा कर उसने उसके हाथ पर रख दिया। मधुर स्वर में कहा, "तुम जो कर सकते थे, कर चुके, अविजित। अब बारी तुम्हारे बेटे-बेटियों की है।"

"मेरे बेटा नही है काजल, सिर्फ़ बेटियां है," अंधेरे के गर्त से अविजित का स्वर उभरा और अंधेरे में ही डूब गया।

प्रभा के मुह से काजल सुधांशु के बारे मे सुन चुकी है।

उसका स्वर कुछ और पसीजा। अंधेरे में छोटे-छोटे जुगनू उडान भरने लगे।

"मेरे कोई भी नहीं है, अविजित," उसने कहा, "मैं हाई कोर्ट मे पार्थ को हार गई।"

उसने अपना सिर अविजित की गोद मे पडे अपने हाथ पर रख दिया।

अंधेरे में टिमटिमाते जुगनू दौड़कर एक-दूसरे से लिपट गए···अविजित की उम्र बीस बरस पीछे लौट गई···करुणा और स्नेह से पिघल कर वह ठीक प्रभा की तरह बोल उठा, "कहो तो तुम्हारे बेटे को दून-स्कूल से किडनैप करके ले आऊं।"

अविजित की गोद में सिर रखकर रो लेने को तैयार काजल का दिमाग चौकन्ना हो गया।

"तुम कैसे जानते हो पार्थ दून स्कूल में है ?" सिर उठाकर उसने पूछा।

अविजित से जवाब देते नही बना।

"तुम मुकर्जी बाबू से मिले थे," काजल ने कहा।

उसका हाथ अभी भी उसकी गोद में पड़ा था। उसी को दोनों हाथों से थाम कर अविजित ने विह्वल कण्ठ से कहा, "नही, काजल···"

हाथ खींचकर कठोर स्वर में काजल कह उठी, "अब और झूठ मुझसे मत बोलना अविजित !"

सितारों की तरह झिलमिलाते इतने सारे जुगनू एक ही झटके में मृत कीड़ों की तरह धरती पर आ गिरे।

"हां, मिला था," अविजित ने कहा, "पर काम था काजल।"

"काम ?" काजल के स्वर में वितृष्णा भर गई, "हो गया ?" उसने पूछा।

"हां।"

"अब तुम जाओ, अविजित," उसने कहा, "दुबारा मुझसे मत मिलना।

क्षण-भर के लिए अविजित उसे देखता रहा, फिर बोला, "मैं मुकर्जी बाबू का दोस्त तो नहीं हूं।"

"दोस्त तुम मेरे भी नहीं हो," काजल ने कहा, "यह हमारी आखिरी मुलाक़ात है।"

"ऐसा मत कहो, काजल। मैं अपने काम से नही, सिंघानिया जी के काम से मुकर्जी बाबू से मिला था। इसमें तुम्हारी तौहीन कैसे हो गई?"

काजल चुप रही।

पार्थ को देखा था, पूछने को हृदय का एक कोना दर्द करता रहा पर चुप बनी रही।

"पार्थ को देखा था, बहुत होनहार लड़का है," अविजित ने खुद ही कहा।

काजल का चेहरा पसीज गया पर वह बोली नहीं।

"परसों मैं रुपये लेकर आऊंगा," कुछ अधिकार भाव से अविजित ने कहा, "तुम्हें लेने ही होंगे।"

काजल का चेहरा फिर सख्त हो गया।

"लेने से इन्कार कब किया मैंने? रुपया तुम्हारा नहीं, चड्ढा के दल का है। प्रभा के हाथ भेज देना," उसने कहा।

"प्रभा तुम्हारे दल में है?" आखिर अविजित पूछ ही बैठा।

"उसी से पूछना," काजल ने कहा।

"उसे गलत रास्ते पर मत डालना काजल," कांपते गले से अविजित ने कहा।

"तुमसे हो सके तो सही रास्ता दिखला कर रोक लो।"

"नहीं रोक सकता। मेरे रोकने से वह रुकेगी नहीं, तुम जानती हो।"

काजल बुत बनी खड़ी रही।

अविजित उसके क़रीब आ गया। अपने दोनों हाथ उसके कन्धों पर रख कर बोला, "मैं तुमसे झगड़ा नहीं करना चाहता, काजल, पर एक औरत को इतना कठोर नहीं होना चाहिए कि आदमी को हमेशा तराजू में तौलती रहे, उसके दु:ख को समझने की कोशिश ही न करे।"

छिटक कर काजल अलग हो गई।

"तुम···" उसने कहा, "तुम केवल पुरुष हो!"

"काजल···" धीमे से अविजित ने पुकारा।

"जाओ, तुम जाओ अविजित!" काजल ने कहा।

उसका कण्ठ रुंधा हुआ था पर आवाज जब बाहर निकली तो सर्द और साफ़ थी—झील के गहरे पानी पर जमी बर्फ़ की पहली पर्त की तरह।

ऐसी आवाज़ों से बहस नहीं की जाती।

अविजित चुपचाप बाहर निकल आया।

काजल सिर्फ़ ऐसे आदमी को प्यार कर सकती है जो तीस साल पहले मर चुका हो, गाड़ी का दरवाज़ा खोलते हुए झुंझला कर अविजित ने सोचा।

नहीं, फ़ौरन उसने अपने को टोका, यह अन्याय है। काजल सिर्फ़ ऐसे आदमी

को प्यार कर सकती है जो तीस साल पहले मर कर भी याद रखने क़ाबिल हो।

गाडी चल दी। खिडकी मे ठण्डी हवा के झोंके भीतर आने लगे। दिमाग़ से जाले उड़ने लगे। मन और अशान्त हो चला···

मै वह आदमी नही हूँ···नही हो सकता···नही था···

काजल शहादत चाहती है···

शहादत का नशा बहुत भयानक होता है। किसी लेनिन, मैजिनी, टीटो या भगतसिंह के सिर चढ़ कर बोले तो भावुकता से आगे जाकर रणकौशल बन जाता है पर तब भी कितने शहीद है जो रण में विजयी हो पाते है ?

काजल मे वह विवेक बुद्धि और यथार्थवादिता है जो आत्मबलिदान को रण-नीति बना दे ? शायद है। पर उसके और साथी ? प्रभा ?

प्रभा जानती है, वह क्या चाहती है ? अभी उसकी उम्र ही क्या है ?

भगतसिंह की उम्र सिर्फ़ तेईस साल थी जब उसे फांसी लग गई···उम्र के साथ दृढ़ता बढ़ती है या घटती चली जाती है ? या उम्र से उसका कोई ताल्लुक़ ही नही है। प्रभा नही जानती तो मै···मै जानता हूँ, मैं क्या चाहता हूँ ? जानना चाहता हूँ ? चाहा था कभी ?

अविजित की गाड़ी घर के दरवाज़े पर पहुंच गई।

नीचे क़दम रखा तो नज़र बरामदे के फ़र्श पर पसरे पड़े सुधांशु पर गई। वह ज़मीन पर पाव रगड़-रगड़ कर रो रहा है और पास खडे शुक्ल, खोखी और नया नौकर तिलक उसे मनाने की कोशिश कर रहे है। पर रोने का उफ़ान है कि कम होने के बजाय बढ़ता ही चला जा रहा है।

"क्या हुआ ?" पास पहुंच कर उसने पूछा।

"कुछ मांग रहा है।" खोखी ने कहा।

"क्या ?"

"समझ में नही आ रहा।"

"औ···ऽ···ई···ऽ या !" सुधांशु हाथ आगे बढा कर चीखा। हिचकियो ने उसकी पुकार को दो जगह से तोड़ दिया। एक के बजाय तीन चीखे अविजित को दहला गईं।

"क्या ? क्या चाहिए ?" उसने कहा।

"रसगुल्ला ? रसगुल्ला खाओगे ?" शुक्ल ने पूछा।

"नई ! औऽईऽया !" सुधाशु फिर मांग उठा।

थूक और आसुओ से लिसढ़े अपने चेहरे को ज़ोर करके उसने फ़र्श पर रगड़ डाला।

"तकिया ? तकिया लेकर सोओगे ?" तिलक ने पूछा।

"नई ! औईया-औईया !" चीख कर सुधांशु ने सिर ऊपर उठाया।

फ़र्श की मिट्टी-धूल ने चेहरे के थूक-बलग़म को अच्छी तरह सान कर कीचड़ की नालियां बहा दी थी। हाथों से उन्हें रगड़ कर वह चिल्लाया, "औईया !"

"ज़रूर कोई खाने की चीज़ है। यह सिर्फ़ खाने के लिए ही इस तरह रोता है," खोखी ने कहा।

"पकौड़ियां खाओगे ?"

"औईया ! औईया ! औईया !" बेक़ाबू हो सुधांशु ने पैरों की थाप पर रट लगा दी।

उसके बिल्कुल क़रीब जाकर अविजित ने आवाज़ ऊंची करके पूछा, "क्या है ?" क्या चाहते हो तुम !"

"औ···ऽ···ई···ऽ···या !"

"साफ़ बोलो, क्या चाहते हो तुम !" क़रीब-क़रीब सुधांशु ही की तरह अविजित भी चीख उठा।

अपनी मांग दुहराने को सुधांशु ने मुह खोला पर अविजित की रौद्र मूर्ति के भय ने आवाज़ घोंट दी।

उसका मुंह खुला-का-खुला रह गया। आंखे फट गई। फैले पर उसने समेट लिये। हाथ ठोड़ी के नीचे सिकोड़ लिये और घुटनो पर सिर देकर ऐसे बैठ गया जैसे गर्भ में भ्रूण। बस फटी आंखों से अविजित को घूरता रहा और खुले मुह से थूक बराबर बाहर गिरता रहा···

अविजित से सहा नही गया।

वह खोखी की तरफ़ मुड़ गया और दयनीय स्वर में याचना करता हुआ बोला, "हुआ क्या था ? क्या चाहता है यह ?"

"समझ में नहीं आता। पता नही यह क्या चाहता है," पास खड़े तीनों प्राणियों ने एक साथ कहा।

५

रात के नौ बज रहे है।

दिन की नर्सें ड्यूटी पूरी करके अस्पताल से जा चुकीं।

रात की नर्सें ड्यूटी पर आई हैं।

अचरज के साथ उन्होंने देखा, डाक्टर संगीता अभी तक अपने कमरे में है।

"आप गई नहीं?" एक ने पूछा।

"जाऊंगी अभी," संगीता ने कहा।

नर्स वहीं खड़ी रही।

सरकारी अस्पताल है। यहां छह बजे के बाद डाक्टर देखने को नहीं मिलता। बदक़िस्मती से किसी की रात की ड्यूटी हो तो बात अलग है। डाक्टर संगीता ज़रूर पहले भी सात बजे तक रुक जाया करती थी पर रात के नौ बजे!

जब से इनकी शादी हुई है···

"वार्ड का राउंड लेकर जाऊंगी," संगीता ने उसे खड़ा देखकर कहा।

"इस वक़्त?" नर्स के मुंह से निकला।

इस वक़्त तो कभी कोई डाक्टर राउंड पर जाता नहीं। ऐसे सब डॉक्टर रात भर वार्डों के चक्कर लगाने शुरू कर देंगे तो नर्सों की तो मुसीबत हो जाएगी।

"हां," डॉक्टर संगीता ने सख़्ती से कहा।

"कोई सीरियस केस है?"

"नहीं···हां···तुम जाओ, मैं आती हूं।"

"यस डॉक्टर।"

नर्स चली गई। संगीता बैठी रही।

कुछ वक़्त और बीत जाए तब जाएगी वार्ड में। रात को एकाध चक्कर वार्ड का लगाना ही चाहिए। मरीज़ों की देखभाल पर नज़र रहती है और···

वक़्त बीत रहा है···अंधेरा जम चुका···संगीता घर नहीं जाना चाहती···घर जाने का ख़याल ख़ौफ़ पैदा करता है···

रात के सन्नाटे में···

ऐसी ही एक रात के सन्नाटे में अस्पताल से घर लौटने पर···अविजित साथ था···अविजित का साथ! डर नहीं लगा। अविजित से भरपूर प्यार किया, उतनी ही ज़बरदस्त नफ़रत की, पर डर कभी नहीं लगा।

पर यह आदमी जो उसका पति है···

प्यार है नहीं, नफ़रत कर नहीं पा रही···बस एक डर है जो नस-नस में घुल गया है, शादी के बाद की पहली सुबह से···

"हनीमून के लिए कहां चलना चाहती हो, हांगकांग या स्विट्ज़रलैंड?" सुरेश ने पूछा था।

एक यह ज़िन्दगी है! पैसे वालों की ज़िन्दगी! संगीता ने सोचा था।

सवाल यह नही है कि आज अस्पताल बस में जाना होगा या स्कूटर के लिए पैसे है। सवाल यह है कि वह जाना कहां चाहती है—हागकांग या स्विट्ज़रलैड ?

स्विट्जरलैड ! वहा डॉक्टर मर्सर है ! गाइनोकालोजी के मशहूर स्पैशलिस्ट ! उनके नीचे रहकर छह महीने भी काम सीख सके तो कान्ट्रैक्टड पेल्विस के केस लेकर जो परेशानी रहती है···

"दोनो में से कोई जगह पसन्द नही आई ?" सुरेश ने प्यार से पूछा, "कोई और जगह बतलाओ। योरप में तो फिर पैरिस है या वियना। एक बात ज़रूर है कि योरप जाओ तो पूरा घूम कर आना चाहिए। वरना···चाहो तो हिन्दुस्तान में ही दार्जिलिग या सिक्किम···"

इतने सारे विकल्प ! यहां तो सब कुछ सम्भव है !

"ऐसा नही हो सकता," संगीता ने कहा, "मैं स्विट्ज़रलैड छह महीने रह सकूं ?" कहा क्या, अनायास मुंह से निकल गया।

"छह महीने ?" सुरेश कुछ चौका, फिर अतिरिक्त लाड़ से बोला, "और यहा के काम-धाम का क्या होगा ?"

"आप लौट आइएगा," संगीता ने कहा, "मैं डॉक्टर मर्सर के पास रहकर ट्रेनिंग लेना चाहती हूं।"

"ओह।"

"कब की मेरी तमन्ना है," संगीता कहती गई, "स्विट्जरलैड के डॉक्टर मर्सर के पास काम सीखू···पता नहीं वे मुझे साथ लेने को तैयार भी होगे या नही···हो जाएंगे, एक बार उनसे मिलू तो। छह महीने उनके साथ काम करना एफ़. आर. सी. एस. करने से भी ज़्यादा क़ीमती होगा। पता है, वे दुनिया के सबसे क़ाबिल गाइनो-कॉलोजिस्ट हैं।

सगीता के स्वर में उत्साह की ऐसी व्यंगहीन निर्मल गूज भी हो सकती है, सुरेश को मालूम नही था।

"छह महीने में काम हो जाएगा ?" उसने पूछा।

"हां···शायद···साल भर हो तो और भी अच्छा रहे पर···वह तो···बहुत महंगा पड़ेगा···वैसे कुछ दिन बाद मुझे वहां नौकरी मिल जाएगी···"

"साल भर रहना चाहती हो ?"

"हो सके तो। ओह, उससे ज्यादा कोई क्या चाह सकता है !"

"तुम अकेली जाना चाहती हो ?" सुरेश ने फंसे गले से पूछा।

"हां," चहकते कण्ठ से संगीता ने कहा और अब पहली बार स्विट्जरलैड के डाक्टर मर्सर पर से नज़रे हटाकर सुरेश को देखा।

विषाद की स्याही से पुत कर उसका काला स्थूल चेहरा और बदसूरत हो उठा था।

संगीता के मन में करुणा और विरक्ति एक साथ जाग उठी।

वह अच्छी तरह जानती है, कन्धे पर हाथ रख कर दबा देने से ही उसके चेहरे का सारा विषाद धुल जाएगा और वह खुशी-खुशी उसे वह तमाम रुपया देने को तैयार हो जाएगा जो एक साल स्विट्ज़रलैंड रहने के लिए उसे चाहिए।

इस से बहुत कम दाम पर औरतें अपना प्यार बेचा करती हैं।

मां कहती थी, प्यार चाहे खाविंद को दो चाहे महबूब को, दाम हमेशा ऊंचे लगाओ। सस्ती चीज़ की कोई क़दर नहीं करता···शादीशुदा औरत और तवायफ़ में फ़र्क क्या है, दोनो जिस्म बेचती है, दोनो प्यार का सौदा करती हैं; बस तवायफ़ एक मुश्त दाम ले कर आज़ाद हो जाती है और बीवी पेंशन की उम्मीद में ज़िन्दगी-भर का सौदा कर लेती है।

अपनी जगह से उठ कर वह सुरेश के पास आ गई। उसके बराबर में सोफ़े पर बैठ कर उसने अपना हाथ उठाया ही था कि सुरेश के चेहरे पर एक बेहद खूबसूरत मुस्कराहट खेल गई। चौक कर सगीता ने हाथ पीछे खींच लिया।

आहत हो कर भी जो आदमी अपमानित महसूस न करे, उसके साथ झूठा खेल नही खेला जा सकता।

"डाक्टर मर्सर के पास ठीक क्या सीखना चाहती हो, बतलाओ तो। देखू, कुछ मेरी समझ में भी आता है या नही," मीठे गले से उसने कहा।

संगीता कांप उठी।

कैसे आदमी से ब्याह रचा बैठी है वह ?

बलात्कार यह करेगा नही; झूठा आत्म-समर्पण सहेगा नही, फिर···

"आप डाक्टरी के बारे में क्या जानते है?" बचाव की कोशिश में आक्रमण करते हुए उसने कहा।

"कुछ नही। तभी तो तुमसे पूछ रहा हूं। अच्छा मान लो तुम्हारे सामने मैं नहा डाक्टर मर्सर बैठे है। तुम्हें साथ लेने से पहले वे पूछते है—मेरे पास रह कर तुम ठीक क्या सीखना चाहती हो ?"

सुरेश के चेहरे पर वही खूबसूरत मुस्कराहट खेलती रही।

एक बार फिर संगीता काँप उठी।

"अगर मुझे यक़ीन दिला सकी कि तुम मेरे साथ काम करने लायक़ हो तो मै तुम्हें एक साल यहां रहने की इजाज़त दे दूगा," उसने कहा।

संगीता ने ग़ौर से उसका चेहरा परखा। नहीं, व्यंग्य का नामोनिशान नही है। बस, कुरूप चेहरे पर छाया विषाद का आबनूसी बादल है। उसे चीर कर कौंधती सुनहरी मुस्कराहट है। और प्यार, सब-कुछ दे डालने को तैयार प्यार, बिना कुछ चाहे। वाक़ई यह आदमी कुछ नही मांगेगा। एक बार कह देने से ही उसे साल भर के लिए स्विट्ज़रलैंड भेज देगा।

चन्दे से पढ़ी हुई लड़किया !

नहीं, कभी नही ! संगीता और अब किसी की अनुकम्पा बर्दाश्त नही कर

सकती।

वह झटके से उठ खड़ी हुई।

"मैं मज़ाक कर रही थी," ठण्डे स्वर में उसने कहा, "स्विट्जरलैंड जाने का मेरा कोई इरादा नही है।"

आबनूसी बादल ने बिजली को दी पनाह वापिस ले ली। बडप्पन की रोशनी खोकर सुरेश का चेहरा भदेस तारीक़ी में ग़र्क़ हो गया। संगीता की नफ़रत में जुम्बिश हुई।

"कही भी जाने का मेरा इरादा नहीं है," उसने कहा, "उतने रुपयों में तो दस मरीज़ों का आपरेशन हो सकता है। इतनी औक़ात मेरी न सही। फिर भी अस्पताल में रह कर थोड़ा-बहुत इलाज तो कर ही सकती हूं। छुट्टी लेने का मेरा मन्शा कभी था नही।"

यातना से चिर कर इस आदमी का चेहरा दयनीय ही नहीं, बदसूरत भी होता जाता है, इस हद तक कि जुगुप्सा पैदा करे; अच्छा है।

है? वाक़ई अच्छा है?

ऐसी नफ़रत किस काम की जो ख़ुद को अपने दामन में समेट ले।

"मैं अस्पताल जा रही हूं," संगीता ने कहा था और उसे वही बैठा छोड़ कर तेज़ी से कमरे से बाहर निकल गई थी।

घड़ी ने दस बजाए।

संगीता चौंक कर आज रात में लौट आई।

चलूं···एक बार मरीज़ों को देख आऊं···

उस सुबह को चार महीने बीत चुके···

पर···रोज़ सुबह होती है···संगीता वक़्त से पहले अस्पताल हुंच जाती है··· रात घिर आने तक वक़्त को टालती रहती है। फिर···घर लौटना ही पड़ता है···

अकेले बिस्तर पर लेटी वह कंपकंपाते शरीर से रात भर उस घड़ी का इन्तज़ार करती है जब वह आदमी उसके बेडरूम का दरवाज़ा ठेल कर भीतर घुस आएगा और उसे यह मानने पर मजबूर कर देगा कि वह सचमुच उसका शौहर है।

उस सुबह क बाद सिर्फ़ एक रात वह उसके कमरे मे आया था···

अपनी हथेलियों मेंउसका चेहरा संजो कर एकटक देखता रहा था।

संगीता की आंखें झुकी रही थी और वह इन्तज़ार करती रही थी, उस क्षण का जब उसके हाथ उसके जिस्म पर फिसलना शुरू कर देंगे···

हाथ बढ़ा कर उसने बत्ती बुझा दी थी। उस आदमी ने बाधा नहीं दी थी। चुपचाप कुछ देर इन्तज़ार किया था और दुबारा बत्ती जला ली थी।

चेहरा उसकी हथेलियों में सजा रहा था और···

उस आदमी का इन्तजार संगीता के इन्तज़ार से ज्यादा साबिर निकला। उसके चेहरे को अंजुली में भरे वह इन्तज़ार करता रहा कि वह आखे उठा कर उसकी तरफ़ देखे—

संगीता को नजरें उठानी पड़ी। फ़ौरन ही उसने उन्हे दुबारा झुका लिया पर उस छोटे से लम्हे में वह उसकी काली आंखों की गहराई नाप चुका था। वितृष्णा का अन्धा सूखा कुआं ··पानी की बूंद तक नही कि अपनी धुंधली-सी परछाई ही दीख जाए···

धीरे से हथेलियो ने चेहरे को मुक्त कर दिया और बत्ती बुझा कर वह आदमी कमरे से बाहर निकल गया था।

संगीता बुरी तरह डर गई थी।

रोज़ उसका डर बढ़ता ही जाता है।

वह कितनी भी देर करके रात को घर पहुंचे वह उसका इन्तज़ार करता मिलता है। खाना खाते वक़्त संगीता कोशिश करके आखें झुकाये रहती है। उसकी एकटक जमी दृष्टि मजबूर कर देती है कि मन-ही-मन उसे झेलती रहे। खाने के बाद वह उसके कमरे तक आता है दरवाज़े की चौखट पर खड़े रह कर कहता है गुडनाइट—और··· संगीता को आंखें उठानी पड़ती है, बत्ती बुझाने की हिम्मत नही होती···

वह कमरे से बाहर चला जाता है।

संगीता का मन होता है, पुकार कर कहे—आओ, भीतर आओ। दरवाज़ा बन्द कर दो। बत्ती बुझा दो। मेरे क़रीब आओ। मेरे हमबिस्तर बनो। मेरी देह का इस्तेमाल करो। मुझे मौक़ा दो कि तुमसे भरपूर नफ़रत कर सकूं। ऐसा न हो कि कुछ न कर सकने की मजबूरी में मेरी हस्ती ही मिट जाए!

दीवाल पर लगी घड़ी ने ग्यारह बार संगीता को चेताया और साथ ही दरवाज़े पर दस्तक हुई।

"कौन है?" उसने चौक कर कहा।

दरवाज़ा ठेल कर नर्स भीतर आ गई।

"आप यहीं है डॉक्टर," उसने कहा, "केजुअलटी वाले आप को घर पर ढूंढ़ रहे है।"

"क्या हुआ?"

"एक्सीडेन्ट केस आया है। औरत के पेट में बच्चा है। आपकी ज़रूरत है।"

"मेरी ज़रूरत है," संगीता ने टेप की तरह दुहराया।

शब्दों को चेतना ने ग्रहण किया और उसने महसूस किया कि अलग-अलग भटक रहा उसका क्लान्त शरीर और अशान्त मन एक होकर स्फूर्ति से भर उठा है।

वह उठ कर खड़ी हो गई।

"चलो," उसने कहा, "मै दोनों को बचा लूगी।"

एक भी नहीं बचा।

सीज़ेरियन आपरेशन करके जब संगीता ने मां के पेट से बच्चे को निकाला तो वह मर चुका था।

फिर औरत को बचाने की जद्दोजहद शुरू हुई। सारी रात संगीता उसकी मौत से लड़ती रही। ग्लूकोज़, खून, आक्सीजन, कुछ काम नहीं आया। सुबह छह बजे उसने दम तोड़ दिया।

केस जब कंजुअलटी में आया तभी रात की ड्यूटी पर तैनात डाक्टर को उसके बचने की कोई उम्मीद नहीं थी। पर वह नया-नया अस्पताल में आया था, डाक्टर कम, नौजवान ज़्यादा था। यह जानते हुए भी कि उसके बचने की कोई उम्मीद नहीं है और आदमी के मर जाने के बाद बचे रहने में कोई तुक भी नहीं है; उसने डॉक्टर संगीता को तलाश करने की पूरी कोशिश की।

दुर्घटनाओं के केस अस्पताल में रोज़ आते थे और यह दुर्घटना सड़क पर घटने वाली आम दुर्घटनाओं से किसी तरह फ़र्क नहीं थी।

गर्भवती औरत पति के साथ तांगे में बैठ कर जा रही थी—शायद अस्पताल ही आ रही थी, दिन पूरे चढ़ चुके थे—कि रास्ते में तांगा ट्रक से टकरा गया। ट्रक को तेज़ रफ़्तार से चलने की आदत थी और तांगा ट्रेफ़िक के बीच अड़चन पैदा कर रहा था। घोड़ा और साईस तो इस तरह कुचले गये कि फ़ौरन ही दम तोड़ गए पर औरत और आदमी पिछली सीट से उछल कर सड़क के दो किनारों पर जा गिरे।

औरत के शरीर से खून गिरने लगा।

आदमी बेहोश हो गया।

ट्रक उसी मस्तानी रफ़्तार से धूल उड़ाता ग़ायब हो गया।

तेज़ रफ़्तार वाला यातायात पहले की तरह सड़क पर दौड़ता रहा। बस, लाशों और घायलो के पास से गुज़रते हुए स्पीड कुछ कम ज़रूर होती रही।

धीमी रफ़्तार के पाबद साइकिल सवार और पैदल यात्री वक़्त की रफ़्तार से रेस नहीं लगाते, लिहाज़ा वे ठहर गए। थोड़ी देर में अच्छी-खासी भीड़ जुट गई।

औरत का खून बहता रहा...

आदमी बेहोशी में हाथ-पांव पटकता रहा...

घोड़े और साईस की लाशों पर मक्खियां भिनभिनाने लगी...

भीड जुटती रही।

फिर औरत बेहोश हो गई।

आदमी मर गया।

लाशों पर कुत्ते जुटने लगे।

एक पुलिसवाला घटनास्थल पर आया...

भीड़ में हरकत हुई...शोर बढ़ा...पुलिसवाले ने सार्जेन्ट को खबर दी...और

एक अरसे बाद मय लाशों के, औरत को सरकारी अस्पताल पहुंचा दिया गया।

कैजुअलटी वाले डाक्टर की तलाश कारगर हुई। डॉक्टर संगीता आ पहुंची। उसे लगा उसने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया।

डॉक्टर संगीता आ गई यहां तक तो ठीक था, पर···

वह दंग था, नर्स भी कम चकित नहीं थी कि एकाध इन्जेक्शन देकर मौत का इन्तज़ार करने के बजाय, वह पागलों की तरह औरत और बच्चे को बचाने की कोशिश में क्यों जुट गई है। ऐनेस्थीसिया, इमरजेन्सी आपरेशन, खून की बोतलें, आक्सीजन, कुछ भी तो नहीं छोड़ा।

जब उसने खून की दूसरी बोतल लगाने को कहा तो नर्स ने याद भी दिलाया—इसका आदमी तो मर चुका, खून लाएगा कौन? पर डॉक्टर संगीता ने घुड़क कर कहा था—चुप! बोतल लगाओ! और फिर, हो सकता है यह नर्स का वहम रहा हो, यह भी कहा था—जानती नही, मेरे पति के पास बहुत पैसा है।

आपरेशन थियेटर में डॉक्टर संगीता अपना रोल भरसक अदा करती रही पर सुबह छह बजे परदा गिर गया। अचेत अभिनेता ने एक बार भी आंख नहीं खोली, चुपचाप बेहोशी की हालत में अंतिम प्रस्थान ले लिया और मंच खाली हो गया।

थकान से चकनाचूर संगीता बाहर निकली तो देखा बरामदे में पड़ी बेंच पर सुरेश बैठा है।

"आप?" उसके मुँह से निकला।

"रात अस्पताल से घर फ़ोन गया तो देखने चला आया। पता चला तुम आपरेशन थियेटर में हो।"

"अब दुबारा आए हैं?"

"नहीं। यहीं था।"

"क्यों?" संगीता ने तुर्शी से कहा, "जब पता चल गया था यहीं हूं, दिल्ली छोड़ कर भागी नही तो लौट क्यो न गए?"

सुरेश के चेहरे पर क्या प्रतिक्रिया हुई, आंख उठाकर उसने नहीं देखी।

"ज़्यादा रात होने से सवारी नहीं मिलती इसी से ठहर गया," उसने मधुर स्वर में कहा।

"देर-सबेर सवारी ढूँढ लेने की मुझे आदत है। सरकारी अस्पताल में नौकरी करते बरसों बीत गए। हम लोगों के दरवाज़ों पर न हाथी झूलते है न गाड़ियां।"

सुरेश चुप रहा।

"चलें?" कुछ ठहर कर उसने कहा।

"नहीं," संगीता ने कहा, "दस बजे से मेरी ड्यूटी है। छह बज चुके। अब खामख्वाह आना-जाना क्यों करूं।"

"नाश्ता करके कुछ देर सो लेती···" सुरेश ने कहा।

"यहीं कर लूंगी। आप जाइए।"

"अच्छा," कह कर सुरेश मुड़ा ही था कि संगीता ने कहा, "सौ रुपये चाहिए थे।"

"हां-हां," उसने फ़ौरन कहा।

उसके स्वर से खुशी छलक उठी।

जेब से पांच सौ रुपये निकाल कर उसने संगीता के हाथ पर रख दिये।

"सौ मांगे थे, पांच सौ नही," रूखे स्वर में संगीता ने कहा और चार नोट उसकी तरफ़ वापिस बढा दिये।

"खून की दो बोतलों का उधार चुकाना है, किसी की किरया नहीं करनी," कह कर वह तेजी से मुड़ी और अपने कमरे में जाकर फूट-फूट कर रो दी···

···कितनी देर···उफ़, कितनी देर सड़क पर खून बहता रहा होगा···सूखता रहा होगा···पपड़ाता रहा होगा···कितनी देर होश बेहोशी को परे धकेलता रहा होगा···कितनी देर आंखें पथराने से इन्कार करती रही होंगी···कितनी देर बेआवाज़ चीखें भीड़ मे मददगार तलाश करती रही होंगी···तब जाकर मरने के लिए अस्पताल का दरवाज़ा तुम्हारे लिए खुला होगा।

मां, मेरी मां! कितनी बार तुम मरोगी और कितनी बार तुम्हारे साथ मुझे मरना होगा!

नही बचा सकी मैं तुम्हें।

मरे हुए इंसानों को अस्पताल लाया जाता है; चाहें भी तो हम कैसे बचा सकते है और चाहने देता कौन है हमें? सरकारी अस्पताल है। सरकार के ताबेदार है हम। हमारी क्या ताब! जितने लोग बेइलाज अस्पताल के भीतर मरते हैं उतने तो शायद बाहर भी न मरते हों। सरकार ने अस्पताल नही, लाशघर खोल रखा है। लाशें जमा करो और···बड़े लोगों की सरकार है, पांच सौ की गड्डी जेब में रखकर घूमते हैं···लाशें जमा करो और···

उफ़, यह आदमी मुझे पागल बना कर छोड़ेगा! कुछ कहेगा नही। करेगा नहीं। पैसा जेब में डालकर घूमेगा, जब मर्ज़ी होगी मुझे पकड़ा देगा और···मै ले लूंगी?

आखिर मेरी भी कोई हस्ती है!

नही, आज फ़ैसला होकर रहेगा। आज रात···

उसके बेडरूम के दरवाज़े पर गुड-नाइट कह कर, सुरेश अपने कमरे में जा, किताब लेकर आराम कुर्सी पर बैठा ही था कि आंधी की तरह संगीता वहां आ पहुंची।

उसका ड्रेसिंग गाउन छाती पर से खुला हुआ था। खुले बालों की उलझी लटें चेहरे पर अनर्गल झूल रही थीं। काली आँखों में लाल डोरे वहशी अन्दाज़ से चमक रहे थे।

"आखिर तुम चाहते क्या हो ?" चीख कर उसने कहा।

सकपका कर सुरेश ने सिर ऊपर उठाया और देखता रह गया।

"मैं तुम्हारी बीवी हूं या नही ?" संगीता ने कर्कश स्वर में कहा।

वहुत देर तक सुरेश चुप बना रहा।

फिर एक अस्फुट-सा 'हो' उसके कण्ठ से फूटा।

"फिर तुम मुझे छूते क्यो नही ?" सगीता ने उसी खुरदुरे खुजलाये स्वर में कहा।

सुरेश उसकी तरफ़ ताकता रहा।

"शादी क्यो की थी मुझसे ?" संगीता ने फेरी लगाने वालो की तरह आवाज़ लगा कर कहा।

"मै तुम्हे प्यार करता हूं, संगीता," गहरी वेदना से थर्राते स्वर में सुरेश ने कहा।

"प्यार करते हो ? तो करो प्यार ! रोते क्यों हो ?"

सगीता उसकी कुर्सी के आगे ज़मीन पर गिर गई और अपनी बाहों से उसकी जांघे घेर लीं। उसका ड्रेसिंग गाउन वक्ष पर से पूरी तरह हट गया।

सुरेश ने उसे नही छुआ।

"तुम मुझसे प्यार करती हो ?" उत्कण्ठित आवाज़ में फुसफुसा कर उसने पूछा।

बहुत चाहने पर भी संगीता 'हां' न कह सकी।

उसने अपना चेहरा उसकी गोद में छिपा लिया।

दो बलिष्ठ हाथो ने उसका मुँह पकड़ कर ज़बरदस्ती ऊपर उठा दिया।

"मुँह क्या छिपाती हो ? जवाब दो !" कड़क कर सुरेश ने कहा।

ठोस हथेलियों में क़ैद संगीता मजबूर थी कि उसकी तरफ़ देखती रहे।

भारी काला चेहरा पसीने से लथपथ है। चौड़ा जबाड़ा भिंचा हुआ है। फैली हुई चपटी नाक के विस्फारित नथुने फड़क रहे है। छोटी, किचमिची आखें अंगारों की तरह जल रही है। मोटे-मांसल लाल ओंठ थर-थर कांप रहे है। आतुर वासना का स्पर्श पाकर कुरूप चेहरा खौफ़नाक हो उठा है।

"जवाब दो। सच ! सच कहो !" करारी मर्दानी आवाज फिर गूँजी, "मुझसे प्यार करती हो ?"

संगीता को लगा उसके पुष्ट हाथों के दबाव के नीचे उसके जबाड़े की हड्डियां चटख कर टूट जाएंगी।

डर के मारे उसका गला भिच गया।

सांस भीतर खीचकर किसी तरह उसने कहा, "नहीं !"

सुरेश जिस मुद्रा में था, उसी में जड़ हो गया।

अब वह खूंखार चेहरे वाला आदमी नहीं, पिलपिले रबड़ का वीभत्स पुतला

दीख रहा था जिसके नक़्श खींच-तान कर, बनाने वाले ने वासना की मुखाकृति में सहेज दिये थे।

उसका काला चेहरा धीरे-धीरे पीला पड़ने लगा। पसीने की लकीरें जहां-तहां सूख गईं। आंखों की आग बुझ गई। थरथराते ओंठ सब बांध तोड़कर नीचे को लटक आए। संगीता के चेहरे पर उसकी उंगलियों का कसाव ढीला पड़ चला, फिर भी··· बिना हिले-डुले सुरेश वैसे ही स्तब्ध बैठा रहा।

सहसा चीत्कार कर संगीता रो दी।

सुरेश के हाथों की गिरफ़्त और ढीली पड़ी।

संगीता ने अपना मुंह उसकी गोदी में डाल दिया।

"दोनों मर गए!" उसने कहा, "एक को भी नही बचा सकी।"

सुरेश वैसे ही जड़ बैठा रहा।

संगीता रोती गई।

सुरेश का हाथ उसके सिर पर आ टिका।

न जाने कितनी देर संगीता उसकी गोद में सिर डाले रोती रही। सुरेश का हाथ उसके सिर पर टिका रहा, क्षण भर को इधर-उधर नहीं हुआ।

अविजित, संगीता का मन चीत्कार करता रहा। ओ अविजित! काश कि यह तुम्हारा हाथ होता। काश कि मेरे प्यार के इज़हार का इन्तजार तुमने किया होता। काश··· वह जिस्म तुम्हारा क्यों न हुआ जो मेरे लिए इस तरह बिलबिला कर भी पीछे लौट गया। अविजित! एक बार, बस एक बार मुझे मौक़ा मिल जाए···तुम्हारी हस्ती अपने हाथों, ख़ाक में मिला दूं!

सुबह जब गनपत बेयरा चाय लेकर आया तो उसने देखा कि साहब के बिस्तर पर उनके बजाय संगीता सोई पड़ी है।

लगता है इन लोगों ने बेडरूम अदल-बदल लिया; गोकुल दा को खबर करनी होगी, बलराज चौकीदार के जरिये, उसने सोचा।

गनपत नही जानता, गोकुल दा का एक नाम कैलाश राव भी है।

६

मंगलवार को राइफ़ल क्लब बन्द रहता है।

बुधवार की शाम को प्रभा वहां पहुंची तो ज़बरदस्त हंगामा मचा हुआ था। तालेबन्द कमरे का दरवाज़ा बन्द का बन्द था और सभी राइफ़लें चोरी जा चुकी थीं।

क्लब के सदस्य सेक्रेटरी को घेर कर खड़े थे और उसके पास किसी सवाल का जवाब नहीं था।

"जनाब," एक आदमी कह रहा था, "चाभी आपके पास से चोरी चली गई क्या ?"

"नहीं, चाभी तो सलामत है, कुछ समझ में नहीं आता···" वे परेशान थे।

"लीजिए साहब, हम आज मेम्बर बनने आए तो बन्दूकें ही चोरी चली गयी," कैलाश ने कहा।

प्रभा ने देखा, सबके बीच अपने खास अलसाए अन्दाज़ में कैलाश भी खड़ा है।

"है ज़रूर किसी भीतरी आदमी का काम। चाभी घर की घर में और सामान ग़ायब," एक आवाज़ और उभरी।

"पर राइफ़लें भला कोई क्यों लेगा ?"

"क्यों ? क़ीमती चीज़ है।"

"हां। पर खुले बाज़ार में तो बन्दूकें बेची नहीं जा सकतीं। लाइसेन्स बिना दिखलाये···"

"फिर भला कौन···"

"आज़ादी के पहले का ज़माना होता तो मैं कहता विजयसिंह पथिक ले गए," कैलाश ने कहा।

"कौन ? कौन ले गए ?" तीन चार आवाज़ें एक साथ उभरी।

"थे एक क्रान्तिकारी। नाम नहीं सुना कभी ?"

"नहीं।"

"रास बिहारी बोस का ?"

"नहीं।"

"चन्द्रशेखर आज़ाद का भी नहीं सुना ?"

"आज़ाद···"

"नाम तो सुना है पर···वह तो मर चुके शायद···"

"जी हां।

"फिर उनका क्या ज़िक्र ?" सेक्रेटरी ने खीज कर कहा।

"नही, अब क्या ज़िक्र। अब तो आज़ादी मिल चुकी। मै तो यू ही निशानेबाज़ों के नाम गिना रहा था···महाराजा छतरपुर का नाम तो सुना है आप लोगों ने ?"

"हां।"

"उन्हें नाम गिनाने का बड़ा शौक़ है," कैलाश ने कहा और टहलता-टहलता प्रभा के पास जा पहुचा।

"प्रभा जी," उसने कहा, "हम तो रह गए मेम्बर बनने से।"

प्रभा हस पड़ी। बोली, "हम तो चलें।"

"अरे ठहरिये," कैलाश ने कहा, "पुलिस वाले क्या कहते है, वह तो सुन ले। पुलिस को इत्तिला तो कर दी होगी।"

फिर प्रभा की तरफ देखकर उनीदी-सी आवाज़ में, रोमाटिक अन्दाज़ में बोला, "आपको कब काटेक्ट करूं ?"

"जब आप चाहें," प्रभा ने भी रोमानी ढग से कहा।

"मिस्टर भूपसिहदेव तो हैं नही, झांसी चले गये। सुना है विलायत जाने वाले है।"

तो बिमल 'अन्डरग्राउंड' हो गया। चार दिन पहले काजल दी भी दिल्ली छोड़ कर जा चुकी हैं। कालेज से इस्तीफ़ा तो महीना-भर पहले ही दे दिया था। अविजित से बीस हज़ार रुपया लेकर प्रभा ही उन्हें दे आई थी।

"तब तो आप ही हैं," प्रभा ने मुस्करा कर कहा और उससे नज़र बचाने का अभिनय करते हुए उसका हाथ दबा दिया।

क्लब के सदस्यों ने देखा। कुछ की दिलचस्पी इस नाटक में हुई, कुछ की नही भी हुई पर सभी ने एक बात नोट ज़रूर की कि अविजित बंसल की लड़की शादी लायक़ हो चुकी।

तभी पुलिस आ गई। दृश्य बदल गया। एस. पी. साहब ख़ुद तशरीफ़ लाए थे, यानी पुलिस की निगाह में मामला मामूली नही था।

क्लब के कुछ सदस्यों की एस. पी. साहब से जान-पहचान थी, सभी ऊंची सोसाइटी के लोग थे। उन्होंने अपना सवाल दुहराया—आख़िर बन्दूकें कोई क्यों चुराएगा, बिक तो सकती नही।

"डाकुओं का गिरोह ले जाए तो बात दूसरी है," एक साहब बोले।

"या क्रांतिकारी," दूसरे सदस्य ठठा कर हंस पड़े, "यह साहब फरमा रहे थे कि कोई विजयसिंह पथिक ले गये होंगे।"

"आप कौन हैं ?" एस. पी. हंसने के बजाय गम्भीर हो गया।

"कैलाश राव," कैलाश ने अनमने भाव से जवाब दिया।

"विजयसिंह पथिक कौन है ?"

कैलाश ने मुंह पर हाथ रख कर जम्हाई तोडी और कहा, "थे।"

"यानी ?"

"मर चुके।"

"कब ?"

"राइफ़लों की चोरी से पहले।"

"थे कौन ?"

"क्रांतिकारी। १९४७ से पहले।"

"आप उन्हें कैसे जानते हैं ?"

"राजस्थान के पुलिस कमीशनर साहब उनके किस्से मामाजी को सुनाया करते थे; तभी उनका नाम सुना," कैलाश ने एक जम्हाई और तोडी।

"कौन मामाजी ?"

"ये महाराजा छतरपुर के भांजे हैं," सेक्रेटरी ने कहा।

"ओह," एस. पी. ढीला पड गया, बोला, "महाराजाओं के भाजे क्रांतिकारियों की बातें कबसे करने लगे। क्यों साहब, आपने यह क्यों कहा कि विजयसिंह पथिक राइफ़लें ले गए होंगे ?"

"मैंने कहा ?" कैलाश हक्का-बक्का उनकी तरफ़ देखता रहा, फिर हंस पड़ा और हंसते-हसते बेंच पर बैठ गया।

"हद हो गई ! मैंने कहा था—आज़ादी से पहले का ज़माना होता तो मैं कहता विजयसिह पथिक ले गए। कमीशनर जॉन साहब हर डकैती के बाद यही कहा करते थे। अब इस ज़माने में···" वह ज़ोर से हंसा, "कहना पड़ेगा डाकू मानसिह ले गया।"

एस. पी. साहब हंस तो दिये पर साथ देने भर को।

प्रभा और कैलाश दोनों समझ गए कि नये क्रातिकारी दलों की गतिविधियों से पुलिस बिल्कुल अनजान नहीं है।

"चुप रहिए न," प्रभा ने हंस कर कहा, "कही आपका नाम डाकू मानसिंह के साथ न जुड़ जाए।"

लोग हंस दिये।

"अजी साहब," एक साहब बोले, "यह तो हमारे देश की ख़ासियत है कि यहां डकैतियां एक से एक रोमांचक हो सकती है पर क्रांति···नामुमकिन !"

"हां, क्रांति के लिए सगठन और नेतृत्व की ज़रूरत होती है। वह अपने देश में है कहां," एक आदमी जो अब तक चुप था, बोल उठा।

औरो के मुक़ाबले वह गम्भीर लगा। चेहरा बदशक्ल होते हुए भी पहनावा और रख-रखाव दूसरी पीढ़ी के अमीरो का था।

"क्या बात करते हो।" फ़ौरन किसी ने विरोध किया, "ब्रिटेन जैसी बड़ी ताक़त को हमने खदेड़ बाहर किया···"

"हमने किया ? विश्व-युद्ध में पस्त होकर खुद भाग गये वरना आज भी यहीं डटे होते।"

"तो बुरा क्या होता," कैलाश ने आराम से कहा, "उनके राज में डिमोक्रेसी तो क़ायम हुई।"

"हां," प्रभा ने कहा, "हिन्दुस्तान को एक सूत्र में बांध कर नेशन बनाने का श्रेय उन्हीं को है और डिमोक्रेसी के सिद्धांत सिखलाने का भी। हम लोगों को उनका शुक्रगुज़ार होना चाहिए कि उन्होंने आतंककारियों से हमारी रक्षा की वरना अराजकता फैल जाती···तब हम लोगों का क्या होता ?"

"आप पॉलिटिक्स की स्टूडेंट हैं ?" एस. पी. साहब ने पूछा।

"नहीं, इतिहास की," प्रभा ने लजा कर कहा।

"जी हां," पहले वाले सज्जन बोले, "यह हमारे लिये फ़ख्र की बात है कि सरकार बदल गई पर व्यवस्था नही टूटी।"

"अब टूटेगी। कांग्रेस देश में समाजवाद लाना चाहती है।"

"डिमोक्रेसी के तहत समाजवाद आ ही नहीं सकता," बदशक्ल पर गम्भीर सज्जन ने दृढता से कहा, "असली रद्दोबदल तभी हो सकती है जब डिक्टेटरशिप हो। सशस्त्र क्रांति हो। रूस को देखिए। चीन को देखिये। पार्टी के अधिवेशन में रेजोल्यूशन पास करने से रेवोल्यूशन नहीं हो सकता। मैं कहता हूं···" कहते-कहते वह उत्तेजित हो उठा।

"लगता है, राइफ़लें आप ही ने चुराई हैं," कैलाश ने कहा।

लोग फिर हंस दिये।

"होशियार रहना सुरेश," एक साहब क़हक़हा लगा कर बोले, "कहीं तुम्हारी ये बातें तुम्हें ले न डूबें।"

सुरेश। सुरेश मंडालिया ! शहर का सबसे अमीर व्यापारी। मालदार सेठ का बेटा। कैलाश ने नोट किया।

"अच्छा, अब आप लोग जाएं," एस. पी. ने कहा, "बस, सेक्रेटरी साहब हमारी मदद को रहें।"

"आपको छोड़ दूं ?" कैलाश ने प्रभा से पूछा।

"हां।"

"टैक्सी यहीं मंगवाऊं या कुछ दूर पैदल चलना पसंद करेंगी ?"

"चलिए, टहलते हुए चलें। रास्ते में टैक्सी ले लेंगे," प्रभा ने कहा।

रिज पार करते हुए कैलाश ने सहसा पूछा, "कामरेड प्रभा, आप क्या सचमुच यह सोचती हैं कि डिमोक्रेसी के सिद्धांत अंग्रेज़ों की देन हैं ?"

"नहीं," प्रभा ने कहा, "मैं जानती हूं, गणराज्य का विकास भारत में प्राचीन काल में हो चुका था। सिकंदर जैसे विजेता की सेना, पंजाब के दो-तीन गणो की युद्ध-कला के भय से ही विद्रोह कर उठी थी। असल में पूंजीवाद और गणतंत्र परस्पर विरोधी व्यवस्थाए हैं। गणराज्य की मुख्य विशेषता यह है कि उसमें वर्ग या वर्ग व्यवस्था का कोई स्थान नहीं है, सारी व्यवस्था सहयोग पद्धति पर आश्रित है जब कि पूंजीवाद वर्ग व्यवस्था और प्रतिद्वन्द्वी पद्धति पर आश्रित है। गांधीजी भी 'अराजकतावाद' के विरोधी नही थे। दरअसल अराजकतावाद नाम इस शैली के विरोधियों का दिया हुआ है, इसलिए नेगेटिव है। पॉज़िटिव शब्द है 'विराज' यानी विराट जनता का सुगठित शासन। गांधीजी का खयाल था कि क्योंकि ब्रिटिश सरकार पूंजीवादी सरकार है इसलिये वह समझौते से जब भी सत्ता छोड़ेगी तो पूंजीवादी राजनैतिक दल को ही देगी। बलपूर्वक सत्ता लेने को वह असम्भव मानते थे पर साथ ही विश्वास करते थे कि एक बार अग्रेजों से सत्ता छीन लेने पर वे पूंजीवाद मे भी निबट लेंगे। बस इसी फंतासी की सज़ा भुगत रहे हैं हम लोग ! पूंजीवाद बाजी जीत गया, गांधीजी हार गये। वे ग्राम स्वराज्य पर लिखते रहे और उनके तथाकथित अनुयायी अपने शासन की प्रतिष्ठा क़ायम रखने के लिए ब्रिटिश सरकार को भी मात दे गए। नौकरशाही और पूजीवाद घुन की तरह गणराज्य में लग गए..." प्रभा अपनी बात के प्रवाह में बह गई थी। अब सहसा कैलाश को देखा तो लगा वह सो रहा है।

वह ठीक किसी स्लीप-वॉकर की तरह मन्थर गति से सड़क पर चला जा रहा था।

"सो गए क्या ?" प्रभा ने उसकी बाह छूकर पूछा।

"नही, बदन ढीला कर रहा था। बातें आपकी सुन रहा हूं। ठीक कहा आपने। क्रान्ति का पॉजिटिव रूप लाने के लिए ही तो हम काम कर रहे है।"

"पर," प्रभा ने कहा, "इतनी-सी राइफ़लों से भला क्या होगा ?"

"यह तो शुरुआत है। अभी तो न जाने कितने छापे मारे जाएंगे। एक बात और याद रखनी चाहिए, गुरिल्ला युद्ध में राइफ़लों पर निर्भर नहीं रहा जा सकता। गांव-जंगल की जनता आमतौर पर जो हथियार इस्तेमाल करती है—बर्छी, भाला, लाठी, उन्हीं को लेकर लड़ाई लडनी होती है।"

"इस तरह सफलता मिलेगी ?"

"लौट जाना चाहती हो ?"

"नहीं ! कभी नही !"

"तो मैं चला।"

"मुझे कब बुलाया जाएगा ?"

"जब कामरेड दत्त तय करेंगे।"

हाथ हिलाकर कैलाश अंधेरे में एकदम ग़ायब हो गया।

"इन्तज़ार करूंगी," प्रभा ने कहा।

कोई जवाब नहीं मिला।

इन्तज़ार···

अभी तो सिर्फ़ एक दिन बीता है···

"अरे, प्रभा, तेरे राइफ़ल क्लब से राइफ़लें चोरी हो गई, तूने बतलाया नही ?"

सुबह-सुबह शुभा ने कहा।

"इतनी जल्दी पूरा अखबार चाट डाला, " प्रभा ने शुभा के हाथों से अखबार ले लिया।

दिल्ली राइफ़ल क्लब में चोरी।

तालेबन्द कमरे से राइफ़लें ग़ायब।

"तुझे तो कल ही पता चल गया होगा," शुभा ने कहा।

"हां।"

"लौट कर तूने बतलाया नहीं ?"

"किसे बतलाती ?"

"मुझे। पिताजी को। ममी को। किसी को भी।"

"जब मैं क्लब से लौटी तो पिताजी टेनिस खेलने गए हुए थे, तू नाटक करने। घर पर ममी और शुक्ल जी थे। शुक्लजी से मैं बात नही करती, ममी मुझसे नहीं करतीं, लिहाज़ा···"

"चल छोड। यह बतला, चोरी कैसे हुई ?"

पुलिस का ख़याल है चोर ले गए।"

शुभा हंसी, फिर गम्भीर हो गई। "और तेरा ?" उसने पूछा।

"जिन्हें ज़रूरत थी वे ले गए।"

"प्रभा," शुभा ने फुसफुसा कर कहा, "तेरा इससे क्या सम्बन्ध है ?"

"तू किसकी तरफ़ है ?" प्रभा ने पूछा।

"मैं ? प्रभा···इस सबसे कुछ नही होगा।"

"किससे होगा ?"

"विचार बदलते हैं तभी सामाजिक व्यवस्था बदलती है। बन्दूक की नली इंसान को खत्म कर सकती है, बदल नही सकती।"

"बेयोनेट की नोक पर फंसा कागज़ पढ़ने में लोग देर नही करते। हमारे शुक्ल जी कहते है न—भय बिन होत न प्रीत गोसाईं।"

"बन्दूक के जोर पर हुआ परिवर्तन अल्पजीवी होता है। फ़्रान्स मे क्रान्ति हुई···"

"वह मध्यवर्ग की क्रान्ति थी।"

"रूस में क्रान्ति हुई···"

"सबकुछ बदल गया।"

"पर इंसान नहीं बदला। वही दमन, वही शासन करने की भूख, वही कमज़ोर देशों पर आक्रमण, वही···"

"कम-अज़-कम रूसी रूसी का शोषण तो नही करता।"

"करता है। पार्टी का सहारा लेकर, बन्दूक के ज़ोर पर।"

"वे सफ़र की दिक़्क़तें हैं। मंज़िल पर पहुच जाने पर पार्टी की जरूरत नहीं रहेगी और न हुकूमत की।"

"मज़िल मिलेगी, इसका क्या भरोसा है?"

चुप रहकर प्रभा दूर ताकती रही और शुभा प्रभा को। उसने देखा···प्रभा का चेहरा फ़ौलाद की तरह सख्त पड़ गया है। आँखों से अलौकिक प्रकाश की तरंगें कौंध रही है। उसके पैरो के नीचे की धरती ऊपर उठने लगी है। वह शुभा के सिर के ऊपर की ऊचाई पर बने मच पर खड़ी मीलों-बरसों दूर का दृश्य देख रही है।

"भरोसा यह है कि मंज़िल है!" प्रभा ने दृढ़ आवाज़ मे कहा।

शुभा की निगाह अब भी मंच पर थी, मन्त्रमुग्ध वह भविष्य का रूप देख रही थी जो मंच पर कही पहले घट जाया करता है।

सहसा उसके ओठो से शब्द फूट पड़े।

"एक दिन ऐसा आएगा···ज़रूर!
जब आदमी आदमी से जुड़ा होगा
इस तरह कि हर आदमी हुक्म मानेगा
सिर्फ़ अपना!
एक दिन समाज वह बनेगा···ज़रूर!
जहाँ हर आदमी भरोसे के लायक़ होगा
कि खुद पर हुकूमत खुद कर ले।
हर आदमी लड़ेगा खुद अपने से
कि आदमी से आदमी आज़ाद रह सके।
एक दिन व्यवस्था यह होगी···जरूर!
जब आदमी से आदमी का पैदाइशी फ़र्क
किसी बड़े विधान के तहत
आपस में इस तरह बंट जाएगा
कि आदमी आदमी से फ़र्क होगा ज़रूर
पर बराबर भी···"

"वाह! मुक़र्रर!" चौंककर शुभा और प्रभा ने देखा, अनित्य सामने खड़ा है। दोनों में से किसी ने नहीं पूछा वह कब आया।

"उम्दा डिलीवरी है," अनित्य ने कहा, "नाटक का रिहर्सल?"

"नही, सिर्फ एक संवाद।"

"आदमी अपने को फ़र्क मानने से सबसे ज़्यादा घबराता है। एक बार जो अपने को फ़र्क मान ले उसकी बराबरी कोई नही कर सकता। तानाशाह का जन्म ऐसे ही होता है और···" अनित्य ने अंगड़ाई ले कर बदन तोड़ा, "···और आवारा का भी," उसने कहा।

"प्रभा के राइफ़ल क्लब से राइफ़लें चोरी हो गई," सहसा शुभा के मुह से निकला।

अनित्य प्रभा की तरफ़ मुड़ गया।

"अब क्या करने का इरादा है?" बिल्कुल सहज भाव से उसने पूछा।

"इन्तज़ार···"प्रभा ने धीमे से कहा।

"ठीक है। आधी ज़िन्दगी आदमी इन्तज़ार करता है और बाक़ी आधी पछताता है कि इन्तज़ार क्यों किया। ज़िन्दगी आसानी से कट जाती है।"

"हर इन्तजार पर पछताया नही जाता," प्रभा ने कहा।

"सिर्फ़ एक इन्तज़ार पर पछताया नही जाता···वक़्त नही मिलता···मौत का इन्तज़ार।"

"अगर किसी को वही इन्तज़ार हो?"

"प्रभा?" शुभा चीख उठी, "तू करना क्या चाहती है?"

प्रभा और अनित्य की दृष्टि मिली। अनित्य की दृष्टि में उपहास नही था, जिज्ञासा नही थी पर उदासीन भी वह नहीं था। प्रभा को उससे ढाढस मिला।

"तो वह इन्तज़ार के अलावा भी कुछ करेगा," अनित्य ने कहा।

"चाचाजी, आप भी···" शुभा बोल पड़ी।

"जिस आदमी ने कभी इन्तज़ार नहीं किया, वह जिया ही कहां?"

"पर आप···"

"शुभा तुम नाटक कर रही हो न?"

"हां।"

"क्या नाम है?"

"पहाड़ की दूसरी तरफ़।"

"कैसा है?"

"पावरफुल! इतना स्पंदन, इतना पैशन, इतना पैना···"

"व्यंग्य," अनित्य ने बात पूरी कर दी, "नाटक का सबसे दिलचस्प दृश्य कौन-सा होगा?"

"अन्त। क्लाइमैक्स! और क्या?"

"बस यही समझो कि मैं हर नाटक के क्लाइमैक्स का इन्तज़ार कर रहा हूं।"

"तब···"

"इसीलिए···"

"इसीलिए?"

"इसीलिए···इसीलिए प्रभा बी. ए. करेगी!"

"बी. ए.!" शुभा ने भौचक स्वर में कहा।

"हां," प्रभा खिलखिलाकर हंस दी, "अगले महीने इम्तिहान हैं न।"

शुभा चुप रही। किसे बेवकूफ़ बना रहे है ये लोग। बी. ए. का प्रभा के लिए कितना महत्व है, शुभा क्या जानती नहीं।

"तेरे भी तो हैं," प्रभा कहती जा रही थी, "पर तू तो अभी सैकण्ड इयर में जाएगी। पूरे दो साल रगड़ाई होगी तब जाकर बी. ए. की डिग्री मिलेगी।"

मुझसे ये सब कहने का फ़ायदा। प्रभा क्या सोच रही है, मैं जानती हू। बिमल दत्त जैसे ही बुलाएगा, चली जाएगी। बी. ए. तो महज़ एक दिखावा है···एक मुखौटा। शुभा को मुखौटो की अच्छी पहचान है। ये लोग···जानते है ये लोग, मैं क्या सोचती हूं। जानना चाहते भी हैं। नही, बस अपने में मस्त है।

वह चुप्पी साधे बैठी रही।

अब अनित्य ने उसकी तरफ़ देखा···यह किस इन्तज़ार मे है ?

हाँ, शुभा ने ज़रा-सी ग़लती कर डाली। प्रभा सिर्फ़ बिमल दत्त के बारे में नही सोच रही थी। बारी-बारी से सभी का नाम उसके ज़ेहन मे आया था—काजल दी, अनिल, कैलाश राव, गनपत। इन्तज़ार मैं करूगी, खुद से वह कह रही थी, क्योकि मुझे यक़ीन है तुम लोग मुझे छोड़ोगे नही।

"अनित्य ! अनित्य है क्या ?" श्यामा के कमरे से आवाज़ आई।

"हां, भाभी," कहता अनित्य उधर चल दिया।

रास्ते में शुक्ल जी से भेंट हो गई।

"अरे अनित्य भाई, आइए-आइए," उन्होंने ऐसे कहा जैसे घर आए मेहमान का स्वागत करना खास उनका कर्त्तव्य हो।

"आप अभी तक यही हैं ?" अनित्य ने पूछा।

"जी हां।"

"क्यो ?" उसने सीधा प्रश्न किया।

"बस···हूं। भाई साहब-भाभी की सेवा में बहुत आनन्द मिलता है।"

"और आपके बीवी-बच्चे ?"

"ईश्वर मालिक है।"

"अच्छा ! सब मर गए !"

"नही-नहीं, भाई अनित्य, ईश्वर की कृपा से सब भले चंगे हैं।"

"ओह। ईश्वर की कृपा खाना-पीना भी जुटाती है।"

"आप तो भाई मज़ाक करते हैं। महीने में तीन-चार सौ रुपये भेज ही देता हूं। भाई साहब ने इन्श्योरेन्स एजेन्ट का काम दिलवा दिया है।"

"उससे तीन-चार सौ की कमाई हो जाती है ?"

"नही, सिर्फ़ उससे नही। और भी छोटे-मोटे काम निकल आते है···भाई साहब के इतने बिज़नेस कान्टेक्ट हैं···लोगों को संदेश वग़ैरह पहुंचाना हो···यू ही कई तरह के काम···"

"देखिए शुक्ल जी," अनित्य ने कहा, "आदमी तीन ग़लतियो से छुटकारा पाने

के लिए चौथी ग़लती करे, यह ज़िन्दगी का रवैया ज़रूर है पर बेहतर होगा कि आप यह जगह छोड़ दें।"

"क्या मतलब, अनित्य भाई, मुझसे क्या ग़लती हुई ?" विनीत स्वर में शुक्ल जी ने पूछा।

"पहली ग़लती—आपने शादी की। दूसरी ग़लती—आठ बच्चे पैदा किये। तीसरी ग़लती—उन्हें भगवान के भरोसे छोड़ा और चौथी ग़लती, खुदा के फ़ज़ल से आप करेंगे ज़रूर !"

"अनित्य !" श्यामा ने फिर पुकारा।

"भाभी बुला रही है," शुक्ल जी ने ऐसे कहा जैसे श्यामा की आवाज़ सिर्फ़ वे सुन सकते हों, "जरा ध्यान रखियेगा, उनकी तबीयत···"

"जी। सुनाई दे रहा है," बात काट कर अनित्य कमरे में घुस गया।

पीछे-पीछे शुक्ल जी भी पहुंच गये।

"अनित्य," श्यामा ने उसके दोनों हाथ थाम कर कहा, "मेरी ज़िन्दगी की सिर्फ़ एक साध बाक़ी थी कि एक बार तुमसे मिल लूं।"

"अरे," अनित्य विमूढ़-सा खड़ा रह गया।

"क्या हो गया भाभी तुम्हें ?" सम्भलने की कोशिश करते हुए उसने कुछ देर बाद कहा।

"अनित्य। यह घर टूट रहा है। टूट चुका है। छत गिर चुकी, फ़र्श फट कर रहेगा। कोई नहीं बचेगा यहां, कोई नहीं। तुम खुद देख लेना, अनित्य। यहां इतने ज़लज़ले आएंगे कि टूट कर यह घर गिरेगा नहीं, भाप बनकर उड़ जाएगा। हस्ती मिट जाएगी इसकी !"

"भाभी !"

"यह दे दीजिए," शुक्ल जी ने एक गोली आगे बढ़ाते हुए कहा।

"क्या है ?"

"सिडेटिव। मैं कह रहा था न, ध्यान रखिएगा, इनकी तबीयत ठीक नहीं है। आपको देख कर अप्सेट हो गई हैं इसी से···

"शट-अप," निहायत शालीनता से अनित्य ने कहा।

"जी ?"

"शट-अप। गोली समेत आप बाहर चले जाइये। शुक्रिया।"

"अनित्य, मेरा एक काम करोगे ?" शुक्ल जी के बाहर जाते ही श्यामा ने फुस-फुसा कर अनित्य से कहा।

"कहो।"

"सुधांशु को मार दो।"

"क्या !"

"हां, अनित्य। उसका कुछ नहीं बनेगा। इनकी···तुम्हारे भाई साहब की··· अविजित की यह सबसे बड़ी हार है, और यह हार मैंने बख्शी है।" श्यामा की सूखी आंखों में उन्माद था पर आवाज़ में हिस्टीरिया बिल्कुल नहीं।

"भाभी," बहुत स्नेह से अनित्य ने पुकारा।

"सिर्फ़ तुम यह काम कर सकते हो, अनित्य। कोई और नहीं समझेगा।"

"आदमी खुद अपनी ज़िन्दगी ज़रूर ले सकता है पर दूसरे की ज़िन्दगी···"

"और जिस आदमी की खुदी न हो?"

अनित्य चुप रहा।

"सुधांशु यह तय नहीं कर सकता कि उसे ज़िन्दा रहना चाहिए या मर जाना चाहिए। न अब, न बीस साल बाद।"

"मैं भी तो···" अनित्य कह उठा।

श्यामा ने ठीक से अनित्य का चेहरा निगाहों में फोकस किया। उसकी आंखों का उन्माद पिघला, फिर जम गया।

दोनों हाथों से अनित्य का चेहरा पकड़ कर वह उसे अपने चेहरे के क़रीब खींच लाई, इस तरह कि उसके ओंठ उसके कान पर ठहर गए।

"कौन उन पर ज़्यादा भारी पड़ता है, सुधांशु या मैं?" उसने फुसफुसा कर कहा।

अनित्य ने महसूस किया, उसके हाथ और—शायद पूरा बदन—थर-थर कांप रहे हैं।

अपना चेहरा उसके हाथों से छुड़ा कर उसने उसके कन्धे कस कर थाम लिये।

"लखनऊ चलोगी!" उसने कहा।

श्यामा हकबकाई-सी उसे देखती रही, क्या कह रहा है अनित्य···

"तुम लखनऊ की सबसे खूबसूरत लड़की मशहूर थी, याद है?"

श्यामा के बौखलाए चेहरे पर हल्की-सी मुस्कराहट दौड़ गई।

"याद है न?" अनित्य ने छेड़ते हुए कहा।

श्यामा का चेहरा कुछ और खिला।

"ठीक है तब। चलो, कुछ दिन लखनऊ घूम आएँ," अनित्य ने कहा।

अनित्य के आने की खबर सुन कर अविजित दफ़्तर से टेनिस खेलने नहीं गया, सीधा घर लौट आया। प्रभा घर पर थी ही, राइफ़ल क्लब बन्द था। शुभा एक दिन के लिए रिहर्सल छोड़ने को तैयार हो गई। अनित्य का सहारा ले कर श्यामा बैठक में चली आई। खोखी सबके लिए चाय ले आई और आज महीनों बाद सब इकट्ठा बैठ कर चाय पीने लगे।

अनित्य ने लखनऊ का ज़िक्र छेड़ दिया।

"तुम्हें दयाल याद है भाभी? वही जिसने स्कूल की ग्रुप फ़ोटो में से तुम्हारी

फ़ोटो निकलवा कर बड़ी करवा ली थी और तुम्हारी सगाई के बाद भाई साहब को यह लिख कर भेज दी थी कि, मेरे ख़ूने जिगर की तोहमत आपके सिर है।"

श्यामा खिलखिला कर हंस दी।

"हां," उसने कहा और चहक कर अविजित से बोली, "तुम्हें याद है?"

बहुत दिनों बाद अविजित के चेहरे पर वह मोहक मुस्कराहट खिल उठी जिसे उसके साथी 'वशीकरण मन्त्र' कहकर पुकारा करते थे।

"हा, याद है." उसने कहा," मैने सोचा था, चलो इस बहाने फ़ोटो तो हाथ लगी वरना तुम्हारे वालिद जज साहब से मांगने की हिम्मत तो हमारी कभी होती नहीं।"

''मैने फ़ौरन भाई साहब की तरफ से शुक्रिया अदा करते हुए उसे खत डाल दिया था कि और जो हो हम इस बात की दाद देते हैं कि आपके ख़ूनेजिगर का सबब है लाजवाब,'' अनित्य बोला।

"क्या?" अविजित ने कहा, "यह तो तुमने मुझसे पहले कभी कहा नहीं।"

"कहना क्या था, यह तो मेरा फ़र्ज था," अनित्य ने इस अदा के साथ कहा कि सब लोग ठठा कर हस दिये।

"एक कोई रस्तौगी भी तो हुआ करता था?" शुभा ने कहा।

"हाँ·· बेचारा···" अनित्य ने ठंडी सांस भर कर कहा।

"क्यों, क्या हुआ उन्हें?"

"खुदकुशी कर ली।"

"नही तो," श्यामा ने टोका, "क्या बेसिर-पैर की उड़ा रहे हो। अभी पिछले साल तो तुमसे मिलने आया था।"

"मैने कहा खुदकुशी कर ली, यह नही कि मर गया।"

"क्या मतलब?"

"शेर कहने शुरू कर दिये। इस क़दर घटिया अशआर कहता था कि मैने कई बार कहा, भई इससे तो बेहतर है तू गले में फन्दा डाल कर लटक जा, तेरी रूह भी निजात पाए और हमारी भी।"

एक बार फिर कमरे में ठहाका गूंजा।

"और सुनाइए चाचाजी," खोखी ने कहा, "और कौन-कौन थे?"

"चुप!" श्यामा ने हंसते हुए घुडका, "यह क्या शुरू कर दिया अनित्य।"

"एक था करीमबख्श···" अनित्य ने कहा।

"चुप!" श्यामा ने टोका।

"मुहर्रम की औलाद। हर चीज का स्याह पहलू देखा करता था पर इन्हें देखा तो···" अविजित ने कहा।

"चुप रहो न-" श्यामा ने फिर बाधा दी।

"बारात में आया तो ओढ़नी-घूंघट में लिपटी दुलहिन के सिर्फ़ पांव देख पाया।

दिल पर हाथ रख कर बोला, 'यार, नूरजहां के पाव ऐसे ही रहे होंगे'। मैंने कहा, और तू ज़रूर पापोश रहा होगा," अनित्य बोला।

"क्या बच्चों के सामने···" श्यामा ने नाराज़ होने का नाटक किया पर बीच ही में हंसी खनक उठी। चेहरे के मोतिया रंग पर निखार आया। गालों पर गुलाल बिखर गया। आंखों में गुलाबी मस्ती छलक उठी। कमान की तरह खिचे ओंठ फिर-फिर हंसी से थिरकते रहे।

कमरे में बैठे सभी प्राणियों ने रश्क के साथ सोचा, कोई इतना खूबसूरत भी हो सकता है।

"पता नहीं हममें से कोई ममी की तरह खूबसूरत क्यों नहीं हुआ," शुभा ने ललक के साथ कहा।

"तू अपनी बात कर!" फ़ौरन प्रभा ने टोका।

"क्यों," खोखी ने मासूमियत से कहा, "प्रभा से तो शुभा सुन्दर है।"

प्रभा जोर से हंस दी। बाकी लोग भी।

"चल इसी बात पर मिर्च के पकौड़े तलवा दे," अविजित ने हंसते-हंसते खोखी की पीठ पर प्यार भरा धौल जमा कर कहा।

खोखी बाहर निकली ही थी कि हाथ में अटैची लिये शुक्ल जी ने कमरे में प्रवेश किया।

"आज्ञा लेने आया हूं, भाई साहब," विनीत स्वर में उन्होंने कहा।

"किस बात की?" अचरज से अविजित ने पूछा।

"इतने दिन आपने आश्रय दिया, आभारी हूं। अब विदा लूंगा।"

"यह क्या मज़ाक है।"

शुक्ल जी ने आगे बढ़कर अविजित के पैर छुए।

"मज़ाक नहीं, भाई साहब, सच है। अनित्य भाई का कहना ठीक है, मुझे बहुत पहले चले जाना चाहिए था। इस मोह-माया के जाल में···" उनका गला रुंध गया, "कभी किसी सेवा के लायक समझें तो याद कीजिएगा।"

"यह सब क्या है, अनित्य?" अविजित ने पूछा।

"बात एकदम साफ़ है, भाई साहब। शुक्ल जी को अपना घर-परिवार याद आ रहा है। वे जाना चाहते हैं।'

"नहीं-नहीं," श्यामा ने त्रस्त भाव से कहा, "आप ऐसे चले जाएंगे तो···"

अविजित का चेहरा बदल गया। स्निग्ध मुस्कराहट गायब हो गई। आंखों में चालाकी उभर आई।

"देख लो···जाना ही है तो दूसरी बात है वरना मैंने सिंघानिया जी से बात चलाई है···इस वक़्त दिल्ली छोड़कर चले जाओगे तो बाद में नौकरी मिलना··· नामुमकिन नहीं तो मुश्किल ज़रूर होगा," उसने नपे-तुले शब्दों में कहा।

"आपकी कृपा है भाई साहब, पर मैं नहीं चाहता आप पर बोझ बनूं। सांसारिक

चीज़ों पर आप जानते ही हैं, मेरा मोह नहीं है," भाव-विह्वल कण्ठ से शुक्ल जी ने उच्चारित किया, "त्रिविधं नरकस्येद द्वारं नाशनमात्मनः ।

काम: क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत ।।"

"काम और क्रोध का त्याग कर देने से नरक का द्वार संकरा ज़रूर हो जाएगा, शुक्ल जी," प्रभा ने कहा, "पर आप दुबले-पतले आदमी है, सिर्फ़ लोभ के सहारे ही भीतर पहुंच जाएंगे।"

अविजित काप उठा।

"प्रभा!" श्यामा ने फटकारा।

प्रभा उठी और कमरे से बाहर चली गई।

"बच्चे भी मेरा···" शुक्ल जी उसी विह्वल कण्ठ में कहते गए।

"नहीं-नही, शुक्ल जी," श्यामा ने कहा, "वह तो है ही बदतमीज़। हम लोग तो आपको घर के आदमी से भी बढ़ कर मानते है।"

अविजित के माथे की शिकन और गहरी हुई।

"नौकरी करनी न हो तो मुझे अभी बतला दो," उसने कहा, "खामख्वाह मैं कोशिश करता फिरूं।"

शुभा ने चाय की केतली उठाकर बची पड़ी ठण्डी चाय प्याले में डाली और सिर झुका कर जल्दी-जल्दी घूंट भरने लगी, जैसे ऐसा करने से उसे आस-पास का सुनाई देना बन्द हो जाएगा।

"मेरे लिए आपका हुक्म ही सबकुछ है," शुक्ल जी ने कहा।

उनकी दृष्टि अनित्य की तरफ़ घूम गई।

"ठीक है," अनित्य ने कहा, "आप जीत गए। अटैची भीतर रख आइए।"

उसकी बात पूरी नहीं हुई। सुधांशु की चीखों ने आखिरी शब्दों को सोख लिया।

"उल-ई! उल-ई!" चीखता सुधांशु कमरे के दरवाज़े पर दिखलाई दिया और ज़मीन पर पेर घसीटता हुआ शुक्ल जी की तरफ़ बढ़ा।

"यह पैर उठाकर क्यों नही चलता?" अविजित ने कहा।

सुधांशु के पीछे-पीछे खोखी अन्दर आई। दौड़कर उसने सुधांशु को पकड़ा और शुक्ल जी के पास पहुंचा दिया।

शुक्ल जी ने हाथ का अटैची नीचे नही रखा और न दूसरा हाथ बढ़ाकर सुधांशु को थामा।

सुधांशु फ़र्श पर लोट गया।

"उल-ई! उल-ई!" चीखता वह चकरघिन्नी खाकर शुक्ल जी के पैरों के पास आ गिरा।

झपट कर अविजित कुर्सी से उठ खड़ा हुआ।

"क्या उलई !" वह ज़ोर से चिल्लाया।

श्यामा ने अनित्य का हाथ अपनी मुट्ठी में कस लिया।

शुभा के हाथ से प्याला फिसल गया और चाय छलक कर कालीन पर फैल गई।

"कर क्या रही हो तुम !" अविजित दहाड़ा।

डर कर सुधांशु शुक्ल जी के पैरों के बीच दुबक गया।

अनित्य ने उठने की कोशिश की पर श्यामा की मुट्ठी मुर्दा हाथ की तरह उसके हाथ पर जकड़ी हुई थी। वह हाथ छुड़ा नहीं पाया।

"ताय-ताय-ताय !" सुधांशु ने कहा।

"चाय ! चाय माग रहा है, चाय !" उसकी बात समझ लेने की खुशी में खोखी किलक उठी।

"तो दे दो चाय !" अविजित उसी पर बरस पड़ा।

घबरा कर खोखी बाहर जाने लगी तो वह फिर चीखा, "उसे साथ लेकर जाओ।"

खोखी ने खींच कर उसे शुक्ल जी के पैरों के पास से निकालने की कोशिश की पर सुधांशु टस से मस नहीं हुआ। खोखी ने पूरा ज़ोर लगा कर उसे घसीटा तो थूक से भरा मुंह आगे बढ़ा कर उसने उसके हाथ पर दांत गड़ा दिये। खून और थूक से उसका हाथ सन गया। खोखी चीख मार कर अलग छिटक गई और ज़ोर से रो पड़ी।

यन्त्रचालित अविजित आगे बढ़ा और सड़ाक से एक तमाचा सुधांशु के गाल पर जड़ दिया।

सुधांशु चीखा नहीं। उसकी आंख से आंसू नहीं गिरा। बस, वह अपने में और सिमट गया और खुल आए मुह से थूक के लेवड़े गिरने लगे।

अनित्य का हाथ श्यामा की मुट्ठी की जकड़न से छूट गया।

शुभा इतनी ज़ोर से चीखी कि खोखी का रोना थम गया।

अनित्य उठकर शुक्ल जी के पास आ गया। उसके हाथ से अटैची लेकर धीमी पर दृढ़ आवाज़ में कहा, "उसे उठाइए !"

शुक्ल जी ने सुधांशु को उठा लिया।

"जाइए," अनित्य ने कहा।

शुक्ल जी सुधांशु को गोद में लिये भीतर चले गए।

अनित्य वापिस पलटा ही था कि खोखी की ज़ोरदार चीख सुनाई दी, "ममी बेहोश हो गई !"

अनित्य श्यामा के पास न जाकर अविजित के पास चला आया।

शर्म से गड़ा अविजित, बेसहारा हाथ रोबो की तरह हवा में ताने, अपनी जगह स्तब्ध खड़ा था।

"वह ठीक है," अनित्य ने कहा, "एकाध थप्पड़ मारने से कुछ नहीं बिगड़ता।"

अविजित के भीतर आंसुओं का सैलाब उमड़ आया।

एक बार उसकी नज़र अनित्य से मिली और वह तेज़ी से कमरे से बाहर भाग गया।

७

"शुभा!" हाथ में चिट्ठी पकड़ कर अविजित ने ज़ोर से आवाज़ लगाई।

"जी?" शुभा बरामदे में चली आई।

"कैलाश राव कौन है?" अविजित ने सवाल दाग़ा।

"कैलाश राव? कैलाश···राव···? जी, पता नही।"

"यूनिवर्सिटी में पढ़ता है?"

"मालूम नहीं।"

"तुम उसे नही जानती?"

"जी नही।"

"यह कैसे मुमकिन है। प्रभा ने तुमसे उसका जिक्र नही किया?"

"नहीं तो। क्या हुआ?"

"प्रभा ने उससे शादी कर ली।"

"शादी! प्रभा ने? कैलाश राव से!"

"हा। यह लो उसकी चिट्ठी।"

अविजित ने चिट्ठी उसके पास फेंक दी। तब देखा प्याले में उंडेली चाय बिल्कुल ठडी हो चुकी है। दो घूट पीकर सिगरेट जलाई ही थी कि ऐश-ट्रे के नीचे रखे खत पर नजर पड़ गई। फिर···

एक सांस में शुभा पूरी चिट्ठी पढ़ गई।

पूज्य पिताजी,

मैने कैलाश राव से शादी कर ली है। हम दिल्ली छोड़ कर जा रहे हैं। उनके मां-बाप को शादी से ऐतराज़ था इसलिए अचानक यह क़दम उठाना पड़ा। क्षमा। पर आप नाराज़ नही होगे। मैने आपकी ज़िम्मेवारी खुद निभा दी। कैलाश राव हर दृष्टि

से योग्य वर है। महाराजा छतरपुर के भांजे और जो कुछ होना होना है, वह सब भी।

आपकी बेटी, प्रभा।

शुभा ने देखा, लिफ़ाफ़े पर डाक की मुहर नही है।

"अब बतलाओ, कैलाश राव कौन है?" अविजित ने फिर सवाल किया।

"इसमें लिखा है महाराजा छतरपुर के भाजे है." शुभा ने कहा।

"वह मैंने पढ़ लिया। दिल्ली में कहा था? क्या करना था? प्रभा से कैसे मिला?"

"मैं कुछ नहीं जानती, पिताजी। सच मानिए, मुझे तो यह चिट्ठी एक मज़ाक मज़ाक लग रही है।"

"क्यों?"

"प्रभा और···कैलाश राव? कौन कैलाश राव? प्रभा उससे कैसे प्यार कर सकती है?"

"क्यों?"

"वह तो···"

बिमल दत्त से प्यार करती है, शुभा ने कह ही दिया होता अगर आखिरी क्षण ज़बान काट कर शब्द भीतर न घोंट लिए होते। बिमल दत्त का नाम ऐसा नही है जो यूही ज़बान से फिसल जाने दिया जाए।

बिमल दत्त का नाम।

बिमल दत्त···प्रभा···कैलाश राव···राइफ़ल क्लब···यह चिट्ठी···राइफ़ल क्लब में चोरी···प्रभा का इन्तज़ार···बिमल दत्त···काजल बनर्जी ··ओह प्रभा!

"तुमसे कुछ कहा था उसने!" अधीर होकर अविजित ने पूछा।

"नहीं," शुभा ने सम्भल कर कहा।

"फिर तुम कैसे कह सकती हो, प्रभा कैलाश राव से···प्रभा ग़लत क्यों लिखेगी? कल शाम छह बजे उसका फ़ोन आया था—रात को घर नही आएगी, तोषी के घर सोएगी। असल में वह कैलाश राव के साथ···मेरी समझ मे नही आता हमसे कहने में उसे डर क्या था? हमसे कहती, हम धूमधाम से उसकी शादी करते। कैलाश के मां-बाप को ऐतराज़ है तो क्या हुआ। अब भी क्या बिगड़ा है···शादी कर ली तो कर ली···मै फ़ौरन महाराजा छतरपुर से मिलता हूं ··"

शुभा ने अचरज के साथ अविजित को देखा। ये तो दिलोजान से चाहते है कि प्रभा ने कैलाश राव से शादी कर ली हो। तो क्या इन्हे भी वही डर है? घर प्रभा को छोड़ना ही था। शादी के लिए नहीं छोड़ा तो·· नही, दूसरा विकल्प बहुत भयानक है।

"सोचता हूं, महाराजा छतरपुर को फ़ोन कर लूं···या हो आऊ···क्यो?"

"फ़ोन करना शायद ठीक न रहे," शुभा ने कहा।

"हां-हां, हो ही आऊंगा," अविजित ने कहा, "पगली है प्रभा भी। हम लोगों को भला क्या ऐतराज़ होता। लड़का-लड़की एक दूसरे को पसन्द करें, इससे अच्छी बात और क्या हो सकती है···"

अविजित अपनी कह रहा था, शुभा अपना सोच रही थी।

···काजल बनर्जी दिल्ली छोड़कर चली गई है। बिमल दत्त का पता ठिकाना कोई जानता नही। अब प्रभा चली गई, अजनबी कैलाश राव के साथ। क्या बात हो सकती है? नहीं, जानने की कोशिश मत करो। अनजान, एकदम अनजान बने रहो। इसी में सबकी सुरक्षा है। खत में जो लिखा है वही सच है, उसके सिवाय सच और कुछ नहीं है।

···जी···जी हा···प्रभा और कैलाश राव का प्यार चल रहा था···जी हां, मैं पहले से जानती थी···जी नही, मुझे उसने उनसे कभी नही मिलवाया···क्यो नही मिलवाया? कमाल है जनाब, छोटी बहनों को भावी वर से मिलवाने का क़ायदा कहां देखा आपने? क़ानूनन साली बन जाओ तब बात दूसरी है···घर पर बतलाये बिना शादी क्यो की? कर ली···प्रभा, आप जानते तो है, आज़ाद खयाल लडकी है···दहेज वगैरह के सख्त खिलाफ़···कैलाश के मां-बाप को ऐतराज था ही···अजी, बडी शैतान लड़की है प्रभा, लोगों को चौकाने में बड़ा मज़ा आता है उसे···इसी को लीजिए, खत पहले दिन ही लिख कर बरामदे में चाय की मेज पर पड़े ऐश-ट्रे के नीचे दबा गई। जानती थी, सुबह चाय के साथ पिता जी सिगरेट पिएगे और नज़र सीधी खत पर पड़ेगी। अभी देखिए, दो-चार दिन में कैलाश को साथ लिए अचानक घर पर आ धमकेगी और सबको चौंका देगी···नही, दो-चार दिन ग़लत निकल गया मेरे मुंह से···आएगी महीना बाद, हनीमून मना कर···हां, उससे पहले मेरे नाम खत जरूर आएगा, खूब लम्बा, खबरों से भरा···

शुभा अपने संवादों का अभ्यास कर रही है। आवाज नही निकल रही पर चेहरे पर भाव आ जा रहे है। अविजित उसे घूर रहा है।

"राइफ़ल क्लब!" सहसा अविजित ने कहा, "ज़रूर वह कैलाश राव से क्लब में मिली होगी। मैं सोचता था शाम को वह काजल के पास जाती है पर···" सहसा अविजित मुक्त कण्ठ से हंस पड़ा, "वह कैलाश था," उसने कहा, "वह कैलाश के साथ होती थी!"

"पर," शुभा ने टोका, "तीन-चार महीनों से तो वह घर पर ही रहती···"

"इम्तिहान थे न।"

"इम्तिहान निबटे तो ढाई महीने हो गए। पिछले महीने नतीजा भी निकल चुका···"

प्रभा की थर्ड डिवीज़न आई थी। भारतीय इतिहास के ब्रिटिश युग में फ़ेल हो गई थी।

"यह कैसे हुआ ?" चकित अविजित ने पूछा था।

प्रभा और थर्ड डिवीजन ! शुभा रो ही दी थी।

पर खुद प्रभा ठठा कर हंस पड़ी थी।

"ब्रिटिश इण्डिया में फ़ेल यानी वास्तविक इतिहास की जानकारी में शत-प्रतिशत अंकों से पास।"

शुभा को सब अच्छी तरह याद है, अविजित, लगता है, भूल गया, या···

"कैलाश दिल्ली में नहीं होगा, कहीं बाहर गया होगा, इसी से घर पर रहती होगी और···अब समझ में आया रिज़ल्ट क्यों बिगड़ गया" अविजित ने इतने में एक हल और ढूंढ लिया।

शुभा का ध्यान उस तरफ़ नहीं था···

परसों···अनित्य आया था···हमेशा की तरह, अचानक।

"पढाई का खात्मा मुबारक," प्रभा से कहा था "अब क्या इरादा है ?"

"हाथ मिलाइए चाचाजी," प्रभा ने गम्भीर होकर कहा था 'मैं शुरुआत के लिए तैयार हूं। कहिए—विश यू द बेस्ट ऑफ़ लक।"

अनित्य ने हाथ मिलाया था, कहा था, "विश यू द बेस्ट ऑफ़ योरसेल्फ।"

कैलाश का नाम तो उस दिन भी नहीं लिया था उसने।

फिर···

"अनित्य, प्रभा ने शादी कर ली ! अविजित की आवाज़ सुनकर शुभा चौंकी।

देखा, अनित्य घर में घुसा है।

"मालूम है," उसने कहा।

"मालूम है ? तुम···तुम थे वहां।"

"नहीं !"

"फिर···तुमसे कहा था कुछ उसने ?"

"हां।"

"कब ?"

"कल रात···सड़क पर हवाखोरी करते मिले थे दोनों।"

"तुम्हें मिले थे ? कैसा लड़का है कैलाश ?"

"लड़का ? आदमी है।"

"उम्र ज़्यादा है ?"

"नहीं, उम्र तो कम है।"

"तुम उन्हे साथ लेकर घर क्यों नहीं आ गए ?" अविजित ने कुछ नाराज़गी के साथ कहा।

"वे मेरे साथ नहीं थे।"

"उन्होंने तुम्हें बतलाया, कहां जा रहे हैं ?"

"नहीं।"
"तुमने पूछा ही नहीं होगा।
"जी,"
"अजीब आदमी हो।"
"जी।"
"अच्छा छोड़ो, मैं सोचता हूं महाराजा छतरपुर से मिल आऊं।"
"क्यों ?"
"प्रभा ने लिखा है वे कैलाश के मामा है।"
"तो ?"
"उन्हें शायद मालूम हो वे दोनों कहाँ है ?"
"मालूम करके आप क्या कीजिएगा ?"
"क्या मतलब, मेरी लडकी कहाँ है, जानने की कोशिश भी न करूं ?"
"आपकी लडकी जहाँ भी है अपनी मर्ज़ी से गई है, मर्जी के खिलाफ़ नहीं।"
"ठीक है पर मैं उसे बतलाना चाहता हूं कि मैं···कि हम ··अनित्य, तुम समझते क्यों नही, हमें प्रभा की शादी की ख़ुशी है, दुख नही।"
"समझता हूं, भाई साहब, और इसीलिए कहता हूं, ज्यादा जानने की कोशिश मत कीजिए। जितनी देर हो सके खुश रहिए क्योंकि ··"
पास रखे फ़ोन की घण्टी ज़ोर से घनघना उठी।
अविजित उसकी तरफ़ लपका।
"अनित्य !" श्यामा के कमरे से आवाज़ आई।
अनित्य उधर चल दिया।

"हलो," अविजित ने फ़ोन पर कहा।
"अविजित !" दूसरी तरफ़ से आवाज़ आई।
अविजित ? यह कौन है जो उसे सिर्फ़ अविजित कह कर पुकार रही है।
काजल ? पर वह तो दिल्ली से चली गई।
रंजना ? काश, रंजना···पर रंजना ने तो आज तक कभी उसे फ़ोन नहीं किया। न अविजित कह कर पुकारा ··नही, यह रंजना नही है।
"अविजित !" आवाज़ फिर गूंजी।
दहशत पैदा करने वाली ख़ूबसूरत आवाज़ है। सिर्फ़ एक आवाज़ है जिसका सोज़ ख़ौफ़नाक से ख़ौफ़नाक मौक़े पर भी बरक़रार रहता है···एक आवाज़ जिसकी लय ख़ुद ख़ौफ़ पैदा करती है।
पर उसने तो कभी उसे सिर्फ़ अविजित कहकर नहीं पुकारा···
"हां, अविजित बंसल बोल रहा हूं," उसने कहा।
"पहचाना नहीं, अविजित ?"

"कौन···कौन है ?"

"पहचानने से डर रहे हो ?"

"संगीता !" अविजित का स्वर वाक़ई थर्रा गया।

"हां, संगीता !"

यह कैसी आवाज़ है। जैसे बम फटा हो। आश्चर्य कि फ़ोन के टुकड़े-टुकड़े नहीं हो गए।

"कैसी हो ?" अविजित के मुंह से निकला और खुद उसके कानों में खटक गया।

"अविजित," संगीता ने कहा, "मैंने अपने पति का खून कर दिया।"

"क्या ? क्या !"

"हां, अविजित। मैंने सुरेश को गोली मार दी।"

"संगीता ! होश में तो हो ?"

"बिल्कुल होश में हूं।"

"मुझसे क्या चाहती हो ?" अविजित के मुह से निकला।

संगीता अट्टहास कर उठी।

अविजित को लगा, बदन के कपड़े ही नही, खाल तक नुचकर अलग हो गई है। नंगा ककाल फ़ोन पकड़े खड़ा है।

"क्यों," संगीता ने कहा, "पुलिस को नही बुलाओगे ?"

"मैं···मैं क्यों···?"

"घबराओ मत। पुलिस को मैंने खुद इत्तिला कर दी है। उनके आने से पहले तुमसे मिलना चाहती हूं।"

"मुझसे ? क्यों ?"

"क्यों ?" सगीता फिर हंस पड़ी, "तुम वकील हो, मेरा केस नही लड़ोगे ?"

"मैं···वकालत नही करता," अविजित कैसे बच्चों जैसे जवाब देता चला जा रहा है।

"डिग्री तो है। कर लो न एक बार मेरी खातिर। कितना दिलचस्प केस है। मैं कहूंगी मैंने सुरेश मन्डालिया को मारा है। तुम कहोगे, नही, इसने नहीं मारा। देखें कौन जीतता है।"

"यह क्या भद्दा मज़ाक है। सच-सच कहो, हुआ क्या है ?"

"वही जो मैंने कहा। पुलिस के आने से पहले तुम यहा आ जाओ। मैं तुम्हें अपना वकील चुन लूगी। वे लोग सिर्फ़ किसी वकील को ही मुझसे मिलने की इजाज़त देंगे। इस तरह मै आखिरी दिनों तक तुमसे मिल सकूंगी।"

कंकाल की हड्डियां चटख गईं। अविजित को फ़ांसी के फन्दे पर झूलती अपनी देह नज़र आने लगी।

"यह सब क्या है ? साफ़-साफ़ बतलाओ···"

"आना तो तुम्हें पड़ेगा, अविजित !" कह कर संगीता ने फ़ोन काट दिया।

अविजित पसीना-पसीना हो गया। क्या वाक़ई संगीता ने उस आदमी का खून कर दिया? कर दिया होगा। संगीता जैसी लड़की कुछ भी कर सकती है। पर··· मुझे किस लिए बुला रही है? कहीं खून मेरे सिर···हो सकती है, यह मुझे फंसाने की साजिश हो सकती है।

अविजित ने देखा···

अदालत के कठघरे में खड़ी संगीता कह रही है—अविजित बंसल से मेरे अवैध सम्बन्ध थे। उस रात अविजित मेरे कमरे में था। सुरेश अचानक घर लौट आया। सामना होने पर अविजित ने उसका खून कर दिया···

"अनित्य!" वह पुकार उठा।

"भाभी, मुबारक हो," श्यामा के कमरे में पहुँच कर अनित्य ने कहा।

"क्या?" श्यामा ने अचरज से पूछा।

"प्रभा की शादी हो गई।"

"क्या! क्या कह रहे हो?"

"हां। नाम है कैलाश राव! बढिया आदमी है।"

"प्रभा ने शादी कर ली! हमें बिना बतलाये! तुम्हारे भाई साहब कहां हैं? मेरा दिल··"

"तुम्हारा दिल दुरुस्त है भाभी। भाई साहब को बुलाने का फ़ायदा नहीं है। वे इसमें कुछ नही कर सकते। ज़रूरत भी नहीं है। लड़की बालिग़ है। अपनी खुशी से शादी की है। खुशी की बात है। खुशी मनाओ। जहाँ तक तुम्हारे दिल का सवाल है, इससे कही बड़ा सदमा···"

अनित्य की बात पूरी नही हुई।

पागलों की तरह अविजित कमरे में घुस आया और चीख पड़ा, "अनित्य! संगीता ने अपने पति का खून कर दिया।"

"क्या!" श्यामा कूद कर बिस्तर से उठ खड़ी हुई, "पागल तो नही हो गए," उसने कहा।

"उसने खुद मुझसे कहा है, अभी···फ़ोन पर।"

"नामुमकिन!"

"उसने खुद कहा है।"

"संगीता ऐसा नही कर सकती।"

"संगीता कुछ भी कर सकती है।"

"हां। पर सुरेश को नही मार सकती। जो आदमी···" उसने दहशत के साथ अविजित को देखा, "जो इन्सान तुमसे इतना प्यार करता हो···नहीं हो सकता।" श्यामा रो दी।

"उसने मुझे बुलाया है। तुम मेरे साथ चलो।"

"मैं...?"

"शायद तुम सच का पता लगा सको।"

"सच क्या है, मैं जानती हूं—संगीता ने उन्हें नहीं मारा।"

"और वह कहती है..."

"वह कहती है तो सच करके दिखलाएगी।"

अविजित का शरीर सुन्न पड़ गया।

"हर आदमी अपने तरीके से ख़ुदकुशी करता है भाई साहब," अनित्य ने कहा "आइए, चलें।"

"नही।"

"नही ?"

"मुझे डर है कही इस सब में वह मुझे न लपेट ले," अविजित ने कहा।

"आप जाएंगे नही ?" अनित्य ने कोमल स्वर में पूछा।

"मेरा इस सबसे क्या ताल्लुक़ है। मैं वहाँ क्यो जाऊ ?" अविजित ने कहा।

क्षण-भर अनित्य चुप रहा, फिर धीमे से बोला," आपका अपना तरीक़ा कम कारगर तो नहीं।"

वह अकेला घर से निकल गया।

श्यामा अविजित के पास आकर उससे सट कर खड़ी हो गई।

मुश्किल से वह उसके कन्धों तक पहुंचती है पर आज उसे लग रहा है, अविजित क़द में उसके बराबर है।

"हो आते तो अच्छा था," उसने फुसफुसाकर कहा।

"तुम वाक़ई यह सोचती हो ?" अविजित ने भी फुसफुसा कर पूछा।

"एक बार मिल, लो तो शायद वह तुम्हारा नाम कीचड़ में न घसीटे।"

"तो...हो आऊं ?"

"हां।"

"अच्छा...तुम नहीं चलोगी ?"

"एक बार तुम अकेले मिल लो, फिर मैं चलूंगी...बाद में...।"

श्यामा को डर है कि एक बार वह संगीता से मिल ली तो कही अविजित का क़द इतना छोटा न हो जाए कि उसके बराबर खड़े होने में संकोच होने लगे...

"तो...मैं चलूं..." अविजित फुसफुसाया।

"भाई साहब !" तभी शुक्ल जी ने दरवाज़े से पुकारा।

चौंक कर अविजित और श्यामा अलग हो गए।

आज अपने ही घर में वे लोग फुसफुसा रहे हैं, कल क्या पता इस लायक़ भी न रहें।

"क्या है ?" अविजित ने घबराहट से सने स्वर में पूछा।

"कलकत्ते से सिंघानिया जी का फ़ोन है।"

अविजित ने दयनीय नज़र से श्यामा की तरफ़ देखा।

"आपने उनसे कह दिया क्या कि ये घर पर है?" श्यामा ने शुक्ल जी से पूछा।

"जी हा। ग़लती हो गई क्या?"

"नही-नही, ठीक है," श्यामा ने कहा।

"बात कर लू···" अविजित बोला।

"आ रहे है," श्यामा ने शुक्ल जी से कह दिया।

शुक्ल जी लौट गए।

"या पहले वहां जाऊं···" अविजित की आवाज़ फिर फुसफुसाहट में बदल गई।

"सिघानिया जी फ़ोन पर हैं," श्यामा ने याद दिलाया।

"हा···बात कर लू···करनी ही पड़ेगी···फिर जाऊंगा···"

अविजित फ़ोन पर चला गया।

सड़क के मुहाने पर पहुंच कर अनित्य ने स्कूटर छोड़ दिया। रात ठीक इसी जगह से उस ने प्रभा और कैलाश को सामने से आते देखा था···उन्होंने उसे बाद में देखा···एक बार अन्धेरी सड़कों की आदत पड़ जाए तो नज़र बिल्ली की तरह तेज़ हो जाती है।

उसने देखा सतर्क धीमी चाल से चला आ रहा जोड़ा उसे देख कर और धीमा पड़ गया है। मर्द ने औरत के कन्धो को बांह से घेर लिया है। औरत ने उसके कन्धे पर सिर रख दिया है। सुस्त रोमानी अदा से वे लोग आगे बढ़ रहे है और उसे देखने का नाटक करते हुए चौक उठे है।

"चाचाजी," प्रभा ने कहा है, "आप है!"

"हा।"

"मैने कैलाश से शादी कर ली। ये कैलाश है," प्रभा ने कहा है।

"मैं अनित्य हूं।"

"मैं पिताजी के नाम खत छोड़ आई हूं," प्रभा ने रुक कर कहा है।

"अच्छा···"

तो हम चलें···" प्रभा ने कहा और तभी पास कही ज़ोरदार धमाका हुआ।

अनित्य को लगा गोली चली है।

कैलाश और प्रभा चौके नही, बस सावधान हो गए। कैलाश का हाथ पैन्ट की जेब पर चला गया।

"लगता है किसी मोटर गाड़ी का इन्जन बैकफ़ायर कर रहा है," उसने कहा।

उसकी आवाज़ एकदम लापरवाह थी—जैसी होनी चाहिए थी, ठीक वैसी।

सड़क पर कुछ दूर अनित्य को एक जीप नज़र आई। हां, धमाका उसी के पास हुआ था। फिर भी···

धमाके की गूज ख़त्म हुई ही थी कि सुनसान रात को चीरती हुई एक थर्राती

चीख उभरी और उनके सिरों पर से गुज़र गई। अनित्य को घुरघुरी आ गई।

एक औरत की चीख!

प्रभा ज़ोर से चीख उठी!

क्षण-भर को कैलाश चौक उठा।

"क्या है?" उसने कहा।

"बिच्छू!" प्रभा फिर चीखी और पागलों की तरह अपने कपड़े झाड़ने लगी।

कैलाश सम्भल गया।

"नानसेन्स!" उसने प्यार से लताड़ा और वह भी उसके कपड़े झाड़ने लगा।

"सॉरी," प्रभा हंस दी, "बिच्छू नहीं, झींगुर था।"

"पगली," लाड से कैलाश ने कहा।

पर आखें उसकी सतर्क रहीं। एक हाथ जेब पर बना रहा।

रात के अन्धेरे में डूबी स्याह सड़क पर सन्नाटा छा गया।

कौन चीखा था? प्रभा चीख से चीख़ मिलाकर चीखी थी। पहले कौन चीखा था? कोई औरत। कौन?

सन्नाटे को झिंझोड़ती हुई एक जीप फर्राटे से पास से निकल गई।

अनित्य को लगा उनके पास आने पर, उनकी बत्ती एक बार बुझ कर फिर जल उठी है।

कैलाश और प्रभा में बारीक पर गहरा फर्क महसूस हुआ। किसी घने टेंशन से राहत पाकर दोनों के बदन जैसे एक तरफ को ढुलक आए। वे एक-दूसरे से अलग, अकेले, आराम से खड़े थे। ढीले, पर लापरवाह नहीं।

"तो हम चलें···" प्रभा ने फिर कहा और दोनों मुहाने से परे संकरी गली में घुस गए जिधर से जीप न आई थी, न गई थी।

अनित्य ने देखा, उनकी चाल अब भी धीमी और लापरवाह है जैसी हवाखोरी पर निकले प्रेमियों की होनी चाहिए।

पर यह ओढ़ी हुई सुस्ती···सब कुछ वैसा ही था जैसा होना चाहिए···वही शायद खटक रहा था···सब के साथ कुछ अलग···प्रेमियों की नज़रें इतनी सतर्क तो नहीं होतीं!

अन्धेरे में देखने की आदा बिल्लियों और आवारा घुमक्कडों की बान और है। पर प्रेमी? जिन्हें रोशनी में दुनिया नहीं दीखती, वे भला अन्धेरे में···

बिल्लियों की तरह देखने की सिफ़त सिर्फ खानाबदोशों में नहीं होती, चोर और क्रान्तिकारी भी···

क्रान्तिकारी उन्नीस सौ बियालीस में काफ़ी देखे थे और चोरों से ता ख़ैर उसका साबक़ा पड़ता ही रहा है···अन्धेरी सड़कों की तरह।

अनित्य चुपचाप उधर बढ़ गया था जिधर से पहले धमाका और फिर चीख गूंजी थी।

एक कोठी छोड़ कर दूसरी कोठी के दरवाज़े पर आते ही उसने घर पहचान लिया था। संगीता की शादी अपने नहीं, पति के घर से हुई थी। अपना घर तो उसका कोई था नहीं…

यह दिल्ली के मशहूर रईस सुरेश मन्डालिया की कोठी है।

अन्दर-बाहर मौत का-सा सन्नाटा था। लोहे के उंचे फाटक के बाहर बैठा चौकीदार अपने खोल की दीवार का सहारा लिये ऊंघ रहा था।

कुछ देर अनित्य चुपचाप खड़ा रहा था। रात के श्मशानी सुकूत को तोड़ने में झिझक महसूस हो रही थी। पर पांच मिनट पहले के शोर-शराबे को याद करके उसने सोये चौकीदार को कन्धे से पकड कर हिला ही दिया।

आंखें खोल कर उसने अनित्य को देखा और झपट कर कहा, "कौन हो तुम!"

"अभी यहां कोई चीखा था।"

"यहां कौन चीखेगा—हमारे रहते।"

"कोठी के भीतर कोई चीखा था।"

"कौन?"

"कोई औरत।"

"कोठी के भीतर की चीखों से हमारा सरोकार नही है, समझे! और जहां तक औरतों का सवाल है…" चौकीदार खी-खी कर हंस दिया, "चलो, आगे बढ़ो," उसने कहा।

अनित्य आगे बढ गया था।

अब सुबह के वक़्त सुरेश मन्डालिया की कोठी रात के मुक़ाबले छोटी लग रही है। अन्दर-बाहर तेरहवीं की-सी चहल-पहल है। बन्द फाटक पर वही रात वाला चौकीदार खड़ा है—मुस्तैद और चौकस। साथ में दो पुलिस के सिपाही है।

"कौन हो तुम? अन्दर जाना माना है," उसे देखते ही तीनों एक साथ गरजे।

"मैं डाक्टर संगीता का वकील हूं," अनित्य ने कहा।

"वकील हो तो अदालत में जाओ," एक सिपाही ने कहा।

"यहां किसी को अन्दर जाने की इजाज़त नही है," दूसरे ने कहा।

तीनो बन्द फाटक की दूसरी तरफ़ लोहे की नुकीली बाड़ की तरह पंक्तिवार खड़े हो गए।

अनित्य बाहर रह गया।

तभी एक पुलिस महिला और ए. एस. पी. के बीच सगीता बाहर निकली। फाटक खोला जाने लगा। ब्लाक मारिया ठीक फाटक पर आ लगी।

"संगीता!" अनित्य ने आवाज़ लगाई।

"अविजित नही आए!" संगीता ने चिल्ला कर कहा।

फाटक पर खड़े सिपाहियों ने अनित्य को बाहर खदेड़ना शुरू कर दिया और फाटक के भीतर के पुलिस वाले संगीता को ब्लाक मारिया की तरफ़ धकियाने लगे।

"चुप ! चुप !" सब एक साथ चीख रहे थे।

"मैं तुम्हारा वकील हूं, संगीता," शोर के ऊपर चीख कर अनित्य ने कहा।

जवाब में धूल उड़ाती ब्लाक मारिया के भीतर से गूंजता संगीता का अट्टहास सुनाई दिया जो धूल के बैठ जाने पर भी देर तक हवा में मंडराता रहा।

अविजित संगीता के घर पहुचा तो देखा फाटक पर मोटा ताला लटक रहा है। अन्दर-बाहर पुलिस के सिपाही तैनात है···यानी लाश अब पुलिस के कब्जे में है···और दूर सड़क के मुहाने के नाले पर बनी पुलिया पर अनित्य बैठा है।

"तुम यहां क्या कर रहे हो ?" उसने पूछा।

"आपका इन्तज़ार।"

"कब पहुंचे ?"

"जब वे लोग संगीता को गिरफ्तार करके ले जा रहे थे।"

"उसने मेरे बारे में तो कुछ नही कहा।"

"जब मैं पहुंचा वे उसे ले जा रहे थे। उनसे उसने क्या कहा, मैं नहीं जानता।"

"तो···जो उसने कहा था···सच है ?"

अनित्य ने उसका जवाब नही दिया, अपनी बात कही।

"कल रात मैं यहां से गुज़रा था।"

"उफ़ भगवान, अब क्या होगा," अविजित बड़बड़ा रहा था।

"रात मैंने संगीता को चीखते सुना था, भाई साहब," अनित्य ने कहा।

अपने में ग़र्क़ अविजित तक सिर्फ़ शब्द पहुँचे, उनका मतलब नहीं।

"पहले मैंने गोली का धमाका सुना, फिर चीख," अनित्य ने आगे कहा।

"ओह," अविजित बस इतना ही समझा, "तो रात ही मार डाला था।"

"भाई साहब, ज़रा समझने की कोशिश कीजिए। आप लॉ पढ़े हुए हैं। मैंने संगीता को चीखते सुना था, सुरेश को नहीं।"

"तो ? तुम कहना क्या चाहते हो ?"

"औरत कब चीखेगी ! पति का खून करने से पहले या बाद में ?"

"दोनों हालात में चीख सकती है।"

"पहले चीखी होती तो खुद को बचाने के लिए खून कर सकती थी पर संगीता बाद में चीखी थी—लाश को गिरता देख कर। खून किसी और ने किया होगा।"

"क्यों ? कैसे ?"

"आपने सुना नहीं, मैंने कहा, गोली के धमाके के बाद मैंने चीख संगीता की सुनी थी, सुरेश की नहीं।"

"मरा तो सुरेश है।"

"वही तो। मरा सुरेश है पर चीखी संगीता थी। गोली चलने पर शॉक सुरेश को नहीं, संगीता को लगा। सुरेश जानता था गोली चलने वाली है, जानता था गोली चल चुकी, जानता था गोली को चलना चाहिए। ज़रूर सुरेश ने खुद अपने हाथ से गोली मारी है। खुदक़शी करते हुए आदमी चीखता नहीं," अनित्य ने कहा।

फिर कुछ ठहर कर बोला, "संगीता भी तो पुलिस की गाड़ी में सवार होते हुए चीखी नही, हंसी थी।"

"तुम्हारे कहने से क्या होता है?" अविजित ने कहा, "संगीता खुद अपने जुर्म का इक़बाल कर रही है।"

"सिर्फ़ मैंने नहीं, यह चीख पड़ोसियों ने भी सुनी होगी। वे लोग मेरी बात का···" कहते-कहते अनित्य रुक गया।

उसे रात फाटक पर ऊँघता चौकीदार याद आ गया। चीख उसने नही सुनी तो···

प्रभा का चीख से चीख मिला कर चीख़ना याद आ गया। उसने जानबूझकर नहीं सुनी···क्यों···

सड़क के नुक्कड़ पर जहां अनित्य बैठा है वहां तक सुरेश मन्डालिया की कोठी के कम्पाउंड की पहुंच है। दूसरी कोठी इस आलीशान बंगले से इतनी दूरी पर है कि बन्द खिड़की-दरवाजों के भीतर एयरकन्डीशनर चला कर सोने वाले लोगों का कुछ भी सुन पाना···

वह चुप हो गया।

"चलो, यहां से चलें," अविजित ने कहा," कोई देखेगा तो···"

"भाई साहब, आप संगीता से मिलेंगे नहीं?" अनित्य ने ठण्डे स्वर में पूछा।

"वह है नहीं तो कैसे मिलूं?"

"जेल में। अर्ज़ी दे देते है, जेल में मिलने की इजाज़त मिल जाएगी।"

"पता नहीं कितने दिन लगेंगे।"

"कोई बात नही।"

"मुझे बरनी जाना है," अविजित ज़ोर दे कर कह उठा।

"बरनी?"

"हां, जरूरी काम है। सिंघानिया जी का वहां एक फ़ार्म है। वे चाहते है मैं फ़ौरन, कल ही, चला जाऊँ। अभी कलकत्ते से उनका ट्रंक-कॉल आया था। बहुत गड़बड़ है वहां। उनका···"

'भाई साहब," अनित्य ने बात काट कर कहा, "आप जानते हैं न, अगर एक बार संगीता ने जुर्म का इक़बाल कर लिया तो पुलिस आगे तहकीक़ात करने की ज़हमत ही नहीं उठाएगी। केस उस पर एकदम फ़िट बैठता है। आप एक बार उससे मिल लें तो हो सकता है···"

"नहीं-नहीं, मुझे कल ही बरनी जाना है," अविजित सुनना नहीं चाहता।

"संगीता पूछ रही थी, अविजित नहीं आए?"

"क्या! पूछ रही थी? किससे? तुमसे?"

"हां।"

"फिर···तुमने क्या कहा?"

"मैं कुछ कहता इससे पहले ही वे लोग उसे ले गए।"

"अनित्य!" सहसा अविजित ने उसका हाथ पकड़ लिया और याचना करता हुआ कह उठा, "मुझसे कहीं अच्छी तरह तुम संगीता को समझा सकते हो। तुम्हारी वह इज्जत करती है। तुम···उससे कहो, इस सब में मुझे न घसीटे···"

"भाई साहब," अनित्य ने बेहद कोमल स्वर में कहा, "सवाल आपका नहीं, संगीता का है। बिना खून किये वह खून की सज़ा क्यों पाए···"

अविजित ने ग़ौर से अनित्य को देखा। उसका चेहरा बदल गया। आंखों में खुदगर्ज़ चालाकी उभर आई।

"हर आदमी अपने तरीक़े से खुदकुशी करता है," उसने कहा, "अगर वह जीना ही नहीं चाहती···"

अविजित की बात पूरी भी नहीं हुई थी कि अनित्य उठा और उसे अकेला छोड़ कर तेज़ी से सड़क पार कर गया।

अविजित को सम्भलने में वक़्त लगा। उसने अनित्य का पीछा किया जरूर पर उसकी रफ़्तार का मुकाबला न कर सका। वह बराबर पीछे छूटता चला गया और आखिर कोठियों के पिछवाड़े एक संकरी गली में घुसने पर उसने पाया कि वह उसे खो चुका है।

८

"गोली अनिल ने नहीं मारी तो किसने मारी?" प्रभा कैलाश से सवाल कर रही है।

दैनिक अखबारों का ढेर सामने पड़ा है।

"अनिल ने नहीं मारी," कैलाश पहले ही कह चुका है, "वह बराबर जीप में था। गनपत ने बैग उसे पकड़ाया और वह जीप स्टार्ट करके फ़ौरन चला आया। भीतर गया ही नहीं।"

"तो फिर गनपत या बलराज"

"नही उन्होंने भी नहीं मारी।"

हां, बलराज बाहर मेन गेट पर कोठी में घुसने वालों की हिफ़ाज़त कर रहा था और गनपत उनके हाथ से बैग ले कर पिछवाड़े जीप में बैठे अनिल के पास चला गया था।

रुपयों से भरा बैग ले कर जब प्रभा और कैलाश कमरे से बाहर निकले तो सुरेश मन्डालिया ज़िन्दा था। कमरे में उसके और डाक्टर संगीता के सिवाय तीसरा आदमी नही था।

फिर···

गोली का धमाका, जीप की घड़घड़ाहट और एक चीख़!

उस चीख़ में भी सोज़ था!

एक ज़माना था जब डाक्टर सगीता से बेहद रश्क होता था···वाक़ई···जिस औरत की चीख़ तक इतनी सुरीली हो!

नही-नहीं, अब कहां?

रात उस कोठी के अन्दर प्रभा अच्छी तरह पहचान गई थी कि वह बहुत दिनों से जानती रही है कि डाक्टर संगीता से किसी हालत में भी रश्क नहीं किया जा सकता।

रात उस कोठी के अन्दर डाक्टर संगीता को देख कर क्षण-भर को प्रभा की सारी दिलेरी हवा हो गई थी···

उसे सिर्फ़ इतना बतलाया गया था कि कैलाश के साथ एक बड़े रईस के घर छापा मारना है और कुछ नही। रईस का नाम-पता कुछ नही वरना शायद उसे याद आ जाता कि सुरेश मन्डालिया की बीवी वही डाक्टर संगीता है जो···

याद आ भी जाता तो क्या होता? बस इतना कि टार्च की रोशनी में डाक्टर संगीता को देख कर वह इस क़दर चौंक न उठती।

"हैंड्स-अप!" चादर में लिपटी, बिस्तर पर सोई पड़ी काया की छाती पर पिस्तौल तान कर प्रभा ने कहा था और भौचक देखा था कि चादर फेंक कर जब वह उठ कर बैठी है तो पुरुष नहीं, स्त्री है।

फिर भी···"सेफ़ की चाभी!" उसने ललकार कर कहा था और पिस्तौल ताने रही थी।

"चाभी मेरे नहीं, मालिक के पास है," एक बेहद सुरीली आवाज़ ने कहा था और···यह कैसे हो सकता है, तब भी प्रभा ने चकित भाव से सोचा था···आवाज़ में भय की नहीं हंसी की खनक है। ऐसी खनक तो सिर्फ़ विद्रोहियों के स्वर में हुआ करती

है, उसने सोचा था और टार्च की रोशनी के घेरे में देखा था···इतनी सुरीली आवाज़ सिर्फ़ इसी औरत की हो सकती थी जो उसके सामने बैठी है···

"डाक्टर संगीता !" फुसफुसाहट ओठों से निकल ही गई थी।

कैलाश के हाथ का दबाव उसके कन्धे पर पड़ा था और उसने सम्भल कर कहा था, "तो चलिए मालिक के पास।"

सहसा वह औरत खिलखिला कर हंस पड़ी थी।

प्रभा के बदन के रोंगटे खड़े हो गए थे।

"पर क्यों प्रभा ? तुम्हें पैसे की कमी कैसे हो गई ?" उसने कहा था।

प्रभा !

खट से प्रभा ने टार्च बुझा दी। यह औरत···डाक्टर संगीता उसे पहचान कैसे गई ? उसका चेहरा तो पूरी तरह कपड़े से ढका हुआ है और अन्धेरे में है।

वह भूल कैसे गई थी; आवाज़ पर संगीता का अधिकार···आवाज़ से उसका मोह···आवाज़ की उसकी गहरी पहचान !

एक दिन श्यामा कह उठी थी···

"आह, कितना पुरसोज़ गाती है संगीता। प्रभा तुम इनसे गाना क्यों नही सीख लेतीं ?"

"गाने-वाने में मुझे दिलचस्पी नही है," प्रभा ने रुखाई से जवाब दिया था।"

"दिलचस्पी होने से ही गाना आ तो नही जाता," संगीता ने मीठी आवाज़ में कहा था।

"आपका क्या खयाल है, चाहूं तो सीख नहीं सकती," प्रभा ने तड़पकर कहा था।

"नही," संगीता ने कहा था, "फिर भी चाहो तो कोशिश करके देख लो।"

"यह फ़िज़ूल के काम आप ही को मुबारक हैं।"

"प्रभा ! तमीज़ से बात करो," श्यामा ने नाराज़ हो कर कहा था पर संगीता हंस पड़ी थी, इतनी लतीफ़ हंसी कि प्रभा जल कर राख हो गई थी। इस हिसाब से तो हंसना भी इन्हीं से सीखना पड़ेगा !

"इतना फ़िज़ूल का काम भी नही है, प्रभा," ठुमरी के अन्दाज़ में संगीता ने कहा था, "बहुतों की रोज़ी-रोटी इसी के सहारे चलती है।"

कह कर सहसा उसका चेहरा जले फफोले की तरह काला पड़ गया था।

कमरे में सहमी-सी चुप्पी छा गई थी। प्रभा कुछ समझ नही पाई थी पर आगे मुंहतोड़ जवाब देने की इच्छा मर गई थी।

बाद में···अब याद करके प्रभा शर्म से सिकुड़ उठी है। उन दिनों तो बस अकेले कमरे में बन्द होकर काफ़ी अरसे तक खुद को गाना सिखलाने की कोशिश करती रही थी और संगीता से ईर्ष्या कर-कर के अपने को जलाती रही थी···

बहुत धीमे से कैलाश हंस दिया था।

प्रभा एकदम चौकन्नी हो गई थी।

कैलाश ने सब कुछ सुना होगा। उसका नाम—प्रभा। हंसी की खिलखिलाहट। व्यंग्य से सना सवाल।

"चाभी दिलवाइए!" सम्भल कर प्रभा ने कहा था।

पैसा अपने लिए नहीं, मुझे देश के लिए चाहिए, दर्प के साथ उसने जोड़ना चाहा पर शब्द ज़बान से नहीं निकले।

आज संगीता दे रही है और अविजित की बेटी लेने आई है।

अच्छी लग रही है न संगीता, यह नई भूमिका?

पर कैसी विडम्बना है। मैं पैसा मांग रही हूं फिर भी मुझे लज्जा नहीं, गर्व है; तुम दे रही हो, देना ही पड़ेगा और लज्जित भी तुम्हीं को होना है। मैं मांग नहीं रही, संगीता छीन कर ले रही हूं। अपने लिए नहीं, तुम्ही लोगों के लिए। तुम्ही लोगों का प्राप्य तुम से ले रही हूं।

पर नहीं, संगीता, तुम से यह सब नही कहूंगी।

मुझे माफ़ करना, संगीता। ज़रूरत के दबाव में पैसे के लिए सिर झुकाने में कैसा महसूस होता है मैं नही जानती, जानने की ज़रूरत नही पड़ी। जानने की कोशिश नहीं की कभी, उसके लिए मुझे माफ़ करना। आज तुम दे सकती हो न, लो, मैं हाथ फैलाकर मांगती हूं। तुम्हारा आहत अभिमान मेरा हो गया। तुम्हारी लज्जा मेरी है।

कभी तुमसे रश्क किया था। उम्र की एक देहरी पर आकर नफ़रत की थी। अपने चारों तरफ़ खिची ऊंची चारदीवारी के हर बुर्ज पर स्थापित अपने पिता की कद्दावर मूर्ति को खंडित होते देखा था और तुम्हारे प्रति जुगुप्सा से भर उठी थी। पर नही, संगीता, वह जुगुप्सा नही, लज्जा थी। देखो तो, संगीता, मैं अपने वर्ग-अपराध का प्रायश्चित्त कर रही हूं।

हंसना चाहो तो हंसो। इतने से भला क्या होगा। फिर भी···

तुमसे कह कुछ नहीं सकती, संगीता, कैलाश सुनेगा तो···

पर तुम दो, पैसा मुझे दान दो। मैं सिर नीचा किये लेती हू, हाथ फैला देती हूं···एक वक़्त आएगा, ज़रूर आएगा जब किसी को किसी के आगे अपनी आवाज़ का सोज़ बेचना नहीं पडेगा···

हाथ बढ़ाकर कैलाश ने प्रभा के हाथ से टार्च ले ली। जलाकर संगीता के हाथ में पकड़ा दी।

"रास्ता आप दिखलाएं, चाभी हम मांग लेंगे," उसने ऐसे कहा जैसे किसी दावत में चलने का निमन्त्रण दे रहा हो पर पिस्तौल पूरी तैयारी के साथ संगीता की छाती पर तनी रही।

डाक्टर संगीता का चेहरा गम्भीर हो गया। फिर धीरे-धीरे कठोर पड़ गया। पर उसके बावजूद विद्रूप की छाप हट जाने से एक फक्कड़ भोलापन वहां उभर आया।

"ओह, संगीता, संगीता, संगीता !" मोहित प्रभा ने सोचा, तुम तो उस वक़्त सिर्फ़ सोलह बरस की थी। तुम्हारे चेहरे पर सब कुछ था—शोख़ी···लताफ़त···नज़ाकत··· पिताजी की ज़बान से ये अल्फ़ाज़ इत्र की तरह फिसला करते थे···सबकुछ था, बस··· मासूमियत नहीं थी···ओह संगीता !

क़रीब-करीब कैलाश ही की तरह धीमे से संगीता हंस दी थी और एक विक्षिप्त-सी मस्ती उस पर छा गई थी।

"आओ न, प्रभा," घुंघरुओं की झंकार से अल्फ़ाज़ बजे। नर्तकी की तरह झूम कर वह बिस्तर पर से उठी और थिरकती हुई आगे बढ़ गई।

प्रभा और कैलाश के पिस्तौल उस पर निशाना साधे पीछे हो लिये।

सुरेश के कमरे के दरवाज़े पर आकर वह ठिठक गई। फिर···बदन को तीर कमान की तरह तान कर दरवाज़े को ऐसे धक्का दिया जैसे किसी नुमाइश का उद्घाटन कर रही हो।

कैलाश ने अपनी पिस्तौल सुरेश की तरफ़ घुमा ली···प्रभा संगीता को निशाना बनाए रही।

पर···शायद दरवाज़े की भड़भड़ाहट से पहले ही सुरेश जग चुका था।

बिजली की तेज़ी से पासा पलट गया था।

प्रभा ने देखा था—कैलाश का पिस्तौल हाथ से छूट कर ज़मीन पर पड़ा है··· सुरेश मन्डालिया चौकस-चौकन्ने गुरिल्ला की तरह उसके सिर पर खड़ा है और उसके हाथ की पिस्तौल कैलाश की कनपटी से सिर्फ़ चार इंच दूर है···

एक क्षण को दृश्य जड़ रहा। दम साधे सब अपनी-अपनी जगह स्थिर थे कि संगीता की बेरहम बौराई हंसी ने सब को चौंका दिया।

टार्च वाला हाथ बढ़ाकर उसने कमरे की बत्ती जलाई, जमीन पर पड़ा कैलाश का पिस्तौल उठाया और मधुर-मस्त आवाज़ में कह उठी, "सेफ़ की चाभी दे दो, सुरेश।"

सुरेश मंडालिया एकटक संगीता को देखता रह गया था···

कमरे में मुर्दनी छा गई थी। बस संगीता पिस्तौल को गुड़िया की तरह एक हाथ से दूसरे हाथ में उछाल कर, उससे खेलती रही थी···

प्रभा सुरेश को देख रही थी और कैलाश प्रभा की पिस्तौल को, जो अब संगीता से हट कर सुरेश की तरफ़ घूम गई थी।

प्रभा को लगा था, सब लोग अपनी-अपनी जगह फ़्रीज़ हो गए हैं।

किस ज्वालामुखी का लावा उन पर आ गिरा कि वे जहां थे, बुत से जड़ खड़े रह गए ? हज़ारों बरस बाद एक दिन यहाँ खुदाई होगी···इन्ही मुद्राओं में मूर्तियों से गढ़ ये चार प्राणी मिलेंगे—कैलाश, प्रभा, संगीता और सुरेश मन्डालिया। पर···यह क्या हुआ। देखते-देखते कितने बरस बीत गए ! उसकी आंखो के सामने सुरेश मंडालिया

बूढ़ा—बेबस कैसे होता जा रहा है? अभी-अभी तो गुरिल्ला जैसे उसके पुष्ट-गठीले जिस्म को देख कर प्रभा ख़ौफ़ खाकर चुकी है!

वह जड़ खड़ा है।

उसकी आंखें एकटक संगीता को ताक रही है और···फ़ौलाद-सा सख्त उसका लम्बा-चौड़ा बदन धुले कपड़े की तरह निचुड़ कर सिकुड़ता चला जा रहा है। चेहरे की चिकनी-काली खाल धूल जमे थैलों की तरह जगह-जगह से नीचे लटकती आ रही है। उसकी आंखें···उफ़, उसकी आखें!

बरसों तक सूखा पड़ने से खुश्क जमीन में दरारें आ जाएं तो बूंद-दो बूंद पानी का अस्तित्व क्या हो सकता है!

संगीता की आंखें बरबस सुरेश की तरफ़ खिच गई थीं और वह उससे नज़र मिलाने पर मजबूर हो गई थी।

आखिरी सांस की गिनती पूरी करके जिन्दा औरत जैसे मौत के हवाले हो गई। ऊपर उठा उसका हाथ सुन्न होकर नीचे लटक गया। दूसरे हाथ की मुट्ठी का पिस्तौल क्लोरोफार्म सूघे मेंढक की तरह बेदम-लाचार पड़ रहा। प्रभा ने पिस्तौल उसकी तरफ घुमा लिया।

क्षण भर के लिए मोम-मढ़ी लाश-सी वह निस्पंद खड़ी रही फिर···

एक ज़लज़ला उसके बदन पर से होकर गुज़र गया। मिर्गी के दौरे की-सी तड़फ़ड़ाहट के साथ उसने कुछ कहना चाहा कि···

पिस्तौल नीची करके सुरेश धम से बिस्तर पर बैठ गया। तकिये के नीचे से चाभी निकाल कर उसने संगीता की तरफ़ फेंक दी।

उछल कर कैलाश ने बीच हवा से चाभी लपक ली।

एक बार फिर संगीता की देह ने घुमेर खाई और पिस्तौल उसके हाथ से फिसल गया। सतर्क कैलाश ने वह भी झपट लिया।

प्रभा अपना पिस्तौल संगीता के सिर पर ताने रही थी···कैलाश ने सेफ़ खाली कर लिया था···गनपत दरवाज़े के बाहर मिल गया था·· उनके हाथ से रुपयों से भरा बैग ले लिया था···नम्बर दो के रुपयों की चोरी पुलिस में दर्ज नहीं कराई जाती, गोकुल दा, गनपत ने कहा था, ले जाने वाला भले ही बतला दे, खोने वाला मुंह नहीं खोलता, है न···

प्रभा और कैलाश जब रुपयों का बैग लेकर कमरे से बाहर निकले तो बिस्तर पर स्तब्ध बैठे सुरेश के सामने संगीता जड़ खड़ी थी और कमरे में तीसरा व्यक्ति नहीं था। फिर···

अगले दिन का अखबार कैलाश ने प्रभा के सामने डाल दिया। कहा, "गोली मारना इस योजना में शामिल नहीं था।"

खबर छपी है कि दिल्ली के प्रसिद्ध उद्योगपति श्री सुरेश मन्डालिया की पत्नी डॉक्टर संगीता ने स्वीकार कर लिया है कि अपने पति का खून पिस्तौल से गोली मार कर उसने किया है। घर का सब सामान सुरक्षित है और किसी बाहरी आदमी के घर में घुसने का कोई चिन्ह भी नही मिला है···

पर···

जब प्रभा और कैलाश संगीता और सुरेश को कमरे में छोड़कर बाहर निकले तो भरा हुआ पिस्तौल सुरेश के हाथ में था, संगीता के नहीं।

"यक़ीन नही होता कि गोली डॉक्टर संगीता ने मारी है," उसके मुह से निकला।

"क्यों।" कैलाश के 'क्यो' में सवाल नहीं था।

···क्योंकि एक ज़लज़ला था जो बार-बार उसके बदन को झकझोड़ रहा था···उड़ जड़ खड़े क्षणों में वह बहुत हद तक संगीता को पीछे खदेड़ चुका था···प्रभा ठीक-ठीक समझ रही थी कि वह जुर्माना लेने से देने की मन:स्थिति में आ चुकी है··· तभी न प्रभा क्षण-भर को भी चूकी नही थी। पिस्तौल सीधा संगीता पर ताने रही थी —डर था कि कही आखिरी लम्हों में वह दुश्मन से न जा मिले। इसीलिए···

"बस···उन्होंने नहीं मारी," उसने कहा।

कैलाश ने आंखें खोल कर उसकी तरफ़ नही देखा। अंगड़ाई लेकर बदन तोड़ा और बोला, "शायद नहीं·· या शायद मारी हो···हो सकता है वह हममें से एक हो।"

"तब हमें उनकी मदद करनी चाहिए," प्रभा कह उठी।

"हमें आज ही दिल्ली छोड़ देनी है," कैलाश ने कहा।

"आज ही ?"

कैलाश धीमे से हंस दिया। बोला, "शादी करके लड़का-लड़की अमूमन शहर छोड़ कर भागा करते हैं।"

"यानी लोगों को दिखलाने भर को भागना है, जाना कही नहीं है।"

"जाना है। पहले कलकत्ता, फिर गांव।"

"कौन से गांव ?"

"नाम का महत्व नहीं है।"

"बिमल दत्त···"

"वही हैं।"

"काजल दी ?"

"वे भी।"

"हमारे साथ और कौन जाएगा ?"

"अनिल पहले ही जा चुका।"

"लड़ाई शुरू हो गई।"

"होने वाली है।"

"और डॉक्टर संगीता···" प्रभा ने धीमे से कहा और खुद ही वाक्य पूरा कर

दिया, "···नहीं, वह हमारी लड़ाई में शामिल नहीं है।"

अनित्य नहीं मिला तो अविजित वापिस अपनी गाड़ी की तरफ़ चल दिया।

ठीक है, अनित्य, जाओ तुम। सब चले जाओ मुझे छोड़ कर। मेरा किसी से कोई सम्बन्ध नही है। बहुत हुआ। बहुत भोग चुका मैं। अब और भूत का बोझ नहीं ढो सकता। संगीता···काजल···श्यामा···जाओ, निकल जाओ मेरे दिमाग़ से। विगत से उठते धूल के ग़ुबार से ज़्यादा कुछ नही हो तुम! लोगों की ज़िन्दगी बरबाद हो तो हर बार क़सूरवार मै क्यों? तुम सब आगे निकल गए, मुझे ही क्यों हरदम पीछे लौटते रहना होगा? नही, मै आगे बढ़ूगा ·· आगे···आगे···नई ज़िन्दगी की तरफ़···पीछे मुड़ कर एक बार देखूंगा तक नही।

मै जा रहा हूँ। सीधा रंजना के पास जाऊंगा। उसकी गोदी में सिर रख कर सब कन्फ़ेस कर दूंगा। रजना, रजना, मुझे पनाह दो! भूत के शिकंजे से मुक्ति दिलवाओ। मुझे और कुछ नहीं चाहिए। तुमसे भी कुछ नही चाहिए, बस यह कि तुम हो। और जिस काल और समय मे तुम हो उसी में मै हूं। यह नहीं कि तुम दूर भविष्य में टिमटिमाती रहो और मै भुतहा सड़कों पर भटकता फिरूं।

अविजित ने गाड़ी को अपने घर से ठीक उल्टी दिशा में घुमा लिया।

दुनिया मे मै क्या अकेला पापी हूं! मुझसे पहले क्या किसी को माफ़ नहीं किया गया? मै कुछ चाहता भी तो नही। मैंने कब कहा, रंजना, तुम मुझसे प्यार करो। बहुत प्यार मिल चुका मुझे। मै बस इतना चाहता हूं कि तुम्हारे सामने क़ुबूल कर सकूं, में इस क़ाबिल हू कि तुम्हें प्यार करूं।

किसी और की मुझे परवाह कहां है। तुमसे कुछ छिपाऊंगा नहीं, सब स्वीकार कर लूंगा। अपने विगत पर मुझे कम ग्लानि तो नहीं। एक बार तुम्हारे सामने कन्फ़ेस कर लूं तो बरी हो जाऊं।

···कन्फ़ेस करने का यह मतलब नही होता भाई साहब, कि आदमी सज़ा से बच जाए। संगीता भी तो···

चुप! तुम चुप रहो अनित्य! मेरा तुमसे कोई सम्बन्ध नही है। तुम मेरे कल के साथी थे। यह मेरा आज है और आने वाला कल। मेरे पीछे आने की कोशिश मत करो। मैं तुम्हें नही पहचानता। जाओ, तुम जाओ! मेरे पास वक़्त बहुत कम है।

एक्सलरेटर को पाव से कुचल कर अविजित ने गाड़ी पूरे वेग से आगे दौड़ा दी।

कहां···अनित्य यहां कहां है? वह तो पहले ही···

···यह मत समझो, अनित्य, कि तुम मेरे दिमाग़ पर कब्ज़ा जमाये रह सकते हो। रंजना के घर पहुंच जाऊ, मैं तुम्हे चुटकी से पकड़ कर बाहर फेंक दूंगा। धूल के नन्हें कण हो तुम, और कुछ नही।

कुछ नही सुनूंगा मै आज, किसी के लिए नही रुकूंगा।

नही, लाल बत्ती के लिए भी नही, चौराहे पर हरी से लाल होती ट्रैफ़िक लाइट को देख कर अविजित ने कहा। लाल हो चाहे हरी, मैं रुकूंगा नही, सीधा निकल जाऊंगा। एक पल भी और जाया नही करूंगा अब···एक···पल···भी···नहीं···

जाने दो मुझे, संगीता। आज तुम मुझे नही रोक सकती। हटाओ, ब्रेक पर मे पैर हटाओ!

ठीक लाल बत्ती के सामने चौराहे पर आकर गाड़ी खड़ी हो गई है।

बिल्कुल मेरे कल की तरह है यह लाल बत्ती! आगे बढने के लिए रफ़्तार तेज़ की नही कि जलते अंगार की तरह दहकने लगी। पर आज मैं डर कर भागूंगा नही।

"हटाओ, संगीता! मैं कहता हूं ब्रेक पर से पैर हटाओ!" अविजित चीख उठा।

माथे से चू कर पसीने की बूंदे चक्के पर कसे उसके हाथों पर आ गिरी। चौक कर उसने रूमाल निकालने को जेब में हाथ डाला। सड़क से हट कर नज़र गाड़ी मे घूम गई। चली कहा गई संगीता? ब्रेक पर तो यह खुद उसका अपना पैर है!

हरी बत्ती का इन्तज़ार···

चाभी घुमा कर उसने गाड़ी का इन्जन बन्द कर दिया।

तभी लाल से पीली होती हुई ट्रैफ़िक लाइट हरी हो गई।

हड़बड़ा कर अविजित ने तेज़ी से चाभी घुमाई और झटके से स्टार्टर खीच लिया। इन्जन फट-फट करके शान्त हो गया। गाड़ी स्टार्ट नही हुई। उसके आगे-पीछे खड़ी गाड़ियां हार्न बजाती, फ़र्राटे से उसके बराबर से निकलती रही।

बेरहमी से अविजित स्टार्टर और चोक पर हाथ मारता रहा, एक्सलरेटर को पैर से रौंदता रहा पर गाड़ी नही चली···

बत्ती लाल हुई फिर हरी हो गई।

गाड़ियों की क़तारें थमती-बढ़ती बदलती रही।

अविजित ने गाड़ी का दरवाज़ा खोला और सड़क पर उतर पड़ा।

ठीक है, टैक्सी ले लूंगा। नही मिली तो पैदल जाऊंगा। पर आज जाऊंगा ज़रूर।

तेज़-तेज़ कदम उठाता वह उधर मुड़ गया जिधर सड़क रंजना के घर की तरफ़ जाती है।

रंजना, तुम देखना, मैं कुछ नही छिपाऊंगा तुमसे। मैं सज़ा से नही डरता, बस हर किसी को यह अधिकार नही देना चाहता कि मुझे सज़ा दे ले। तुम, रंजना, सिर्फ़ तुम मेरा न्याय करना। फिर जो सज़ा तुम दोगी, मैं स्वीकार कर लूंगा। एक बार भी विरोध नहीं करूगा। हिचकना मत, रंजना···मै तुम्हें जानता हूं···तुम मुझे माफ़ कर दोगी। कर दोगी न? हां, ज़रूर कर दोगी। मेरे सिर से भूत उतर जाएगा। मैं वर्तमान में जी सकूंगा। आने वाले कल मे हिस्सा ले पाऊगा। है न?

···कुछ भी करने की मेरी उम्र बीत गई और जब थी भी···

तुम गई नही काजल! शहर छोड़ कर जाने वाली थी न। मेरी उम्र क्या करने

की है, तुमसे नहीं पूछा मैंने। मैं जो कुछ कर सकता था मैंने किया। तुम्हीं ने क्या कर दिखलाया। एक सनसनी खेज़ मौत, बस ! और कुछ नहीं ! कुछ नही !

जाओ, काजल, तुम जाओ ! तुमसे मुझे कुछ नहीं कहना…

देखो रजना, आखिर मैं पुरुष हूँ…

तुम केवल पुरुष हो, अविजित !

झूठ ! झूठ है ! तुम विश्वास मत करना रंजना। सुनो, मैं एक इन्सान हूं। हर इन्सान ग़लती करता है। ग़लती पर ग्लानि महसूस कर ले तो उसे माफ़ कर देना चाहिए। तुम रंजना, मुझे माफ़ कर दोगी। कर दोगी न ?

और…अगर…न किया तो ?

माफ़ी पाने के लिए कन्फ़ेस नही किया जाता, भाई साहब, कन्फ़ेस वह करता है जो सज़ा का मुन्तज़िर हो।

अनित्य ! फिर तुम ! मेरे पीछे यहां तक चले आए।

अविजित ने देखा, वह ठीक रंजना के घर के सामने खड़ा है।

बाहर का फाटक बन्द है। दरवाज़े पर परदा पड़ा है। भीतर कहीं शायद रंजना है। बीच में घण्टी की छोटी-सी टनटनाहट की देर है। पलाश की दूरी।

तुम कुछ मत कहना, अनित्य, अविजित ने फुसफुसा कर कहा। देखो, कभी तुम मुझे प्यार करते थे। तुम बस चुप रहना। मैं हीरो बनने की कोशिश नही कर रहा। मैं कन्फ़ेस नहीं करूंगा। बस कहूंगा, रंजना मैं तुमसे प्यार करता हूं। मैं इस क़ाबिल हूं कि तुम्हें प्यार करूं। तुम अनित्य, बस कुछ कहना मत…

…अभी मैं घण्टी बजाऊंगा…रंजना आकर दरवाजा खोलेगी…मुझे देख कर अचरज से मुस्करा उठेगी—इस वक़्त आप। मैं बस कुछ देर बैठूगा उसके पास…कहूंगा, खास कुछ कहूंगा भी नही…बस बैठूंगा और ··चला आऊंगा…

अभी बजाता हूं घण्टी…·अभी…·ज़रा देर बाद·…बस, थोड़ी-सी देर और… और…और…

"अरे, मिस्टर बंसल, आप यहाँ—पैदल ! गाड़ी क्या हुई ?" चौककर अविजित ने देखा उसके बराबर में एक नीली एम्बैसेडर गाड़ी खड़ी है। खिड़की से मुंह निकाल कर कोई कह रहा है, "…गाड़ी क्या हुई ? कहिए, कहां पहुंचा दू !"

कौन है यह ? भट्ट ? बख्शी ? खोसला ? आग़ा ? पता नहीं चल रहा…

वह नीचे उतर आया है। गाड़ी का दूसरी तरफ़ का दरवाज़ा खोल दिया है। शालीनता से कह रहा है, "आइए न।"

अविजित चुपचाप जाकर गाड़ी में बैठ गया।

"कहां जाएंगे ?" गाड़ी स्टार्ट करके उसने पूछा।

"घर," अविजित के मुंह से निकला।

उसके बाद…सिर को हाथों से दबा कर अविजित ने आंखें बन्द कर लीं।

गाड़ी की दिशा का चुनाव हो चुका था। वह बिला हिचक दौड़ती रही।

देर से शुभा ज़मीन पर बैठी सामने खुले सूटकेस को देख रही है। खाली सूटकेस।

एक-एक कपड़ा तहा कर वह उसमें लगा रही है। रुक-रुक कर, खालीपन से चौंक-चौंक कर। फिर भी खालीपन भर नहीं रहा। अजीब-सा अहसास मन में पनप आया है कि सूटकेस में चाहे कितने भी कपड़े क्यों न भर दिये जाएं, वह खाली ही रहेगा।

ऐसी बेमानी खयालात कहां से आकर मेरे दिमाग़ में भर जाते हैं।

बेमानी? गहरे मानी रखने वाले खयालों को हम बेमानी कह कर उड़ा क्यों देते हैं? इसलिये कि उनसे खौफ़ लगता है। बुर्कों और चादरों में लपेट कर हम उन्हें नजरों से दूर करते रहते हैं, तभी वे आकार बदल कर सूक्ष्म देह धारण कर, दिमाग के किसी कोने में प्रवेश कर जाते है और फिर अमीबा के कीटाणु की तरह एक से दो होते-होते पूरे अस्तित्व पर हावी हो जाते हैं।

रात अविजित के सिर पर पर गीली पट्टी रखते हुए भी यही अहसास उसे घेरे रहा था कि पट्टी वह हाड़-मांस के तपते माथे पर नहीं, गर्म हवा के ऊपर उठते बगूलों पर रख रही है।

कठफोड़वा की चोंच की तरह चलती सिर की नसें भी उस अहसास से छुटकारा दिलवाने में सफल नहीं हो सकी थीं।

सुबह का निकला अविजित शाम को भयानक सिरदर्द लिये घर लौटा था।

कुट-कुट तड़पती कनपटी की नस; आग-सा भभकता माथा और···बर्फ़ की पट्टियां थीं कि हवा में टंगी रही थीं···

रात-भर शुभा उसके सिरहाने बैठी उसकी छटपटाहट देखती रही थी और उसमें यह अहसास घर करता चला गया था कि कोई भी डाक्टर इस गैर-जिस्मानी दर्द का इलाज नहीं कर सकता···

सुबह होने को आई थी जब अविजित बेहोशी जैसी नींद में डूब गया था।

सूरज सिर पर चढ़ आया तो आंख खोल कर उसने शुभा से कहा, बरनी जाने के लिए उसके कपड़े सूटकेस में लगा दे।

शुभा का अहसास और गहरा हो गया था।

आखिरी कोशिश करते हुए उसने कहा था, "आप बरनी जा रहे हैं?"

"हां।"

"पर आपकी तबीयत ठीक नहीं है।"

"जाना पड़ेगा।"

"क्यों?"

"काम है।"

"किसका ?"

"हमारा। सिंघानिया जी का। दफ़्तर का।"

"सिंघानिया जी को मना नही किया जा सकता ?" शुभा ने कहा था।

जिरह करने की उसकी ग्रादत नही है, ग्रविजित जानता है।

उस ग्रप्रत्याशित तर्क-ग्राक्रमण से चौक कर उसने कुछ ग्रतिरिक्त रुखाई से कहा, "नहीं, छोटी-मोटी बीमारी के लिए काम नहीं छोड़ा जाता। तुम जाग्रो, मेरे कपड़े लगा दो।"

शुभा चली ग्राई थी। प्रभा होती तो शायद कह डालती, "तर्क ग्रच्छा है। हर किसी के पास मैदान छोड़कर भागने की इतनी बढ़िया वजह नहीं होती।"

शुभा नही कह पाई थी। एक खालीपन मन में लिए उसके पास से उठ गई थी। लोचा था, शायद कपड़े लगाते-लगाते यह ग्रहसास मिट जाए कि ग्रविजित नाम का कोई आदमी ग्रब उसके इर्द-गिर्द बचा नहीं रहा है।

पर···सूटकेस भर कर भी खाली लग रहा है···उसका ग्रहसास कोहरे की तरह हर ठोस चीज़ पर हावी होता जा रहा है···

क्या उसमें इतनी हिम्मत है कि पिता के सामने खड़ी होकर पूछ सके, आप डाक्टरसंगीता से बिना मिले तो नही जा रहे है, कितनी बार वह खुद से पूछ चुकी। जवाब हर बार एक है। नही, उस ग्लानि को वह सह नही सकेगी जो 'नही' कहते-कहते अविजित को सिर से पैर तक डुबा देगी।

प्रभा होती तो···पर प्रभा जा चुकी। ग्रविजित जा रहा है···शुभा भी···

वह जानती है, ग्रविजित संगीता से बिना मिले जा रहा है। संगीता, उसने याद किया, कितना ग्रच्छा गाती थी संगीता।

एक दिन उसका गाना सुनकर शुभा कह उठी थी, बेसारूता, "काश, मैं अपकी तरह गा सकती।"

संगीता ने टक लगा कर उसे देखा था ग्रौर बोली थी, "काश, "मेरी तरह तुम कुछ भी न कर सको।"

शुभा को ठेस पहुची थी फिर भी उसने कहा था, "हां, डाक्टर बनने लायक़ बुद्धि मेरे पास नहीं है। पर आप डाक्टर क्यों बन रही है ? ग्रापको तो संगीतज्ञ होना चाहिए।"

"ग्रपनी मां की तरह ?" संगीता ने कहा था।

"ग्रापकी मां भी इतना ग्रच्छा गाती हैं ?" शुभा पूछ बैठी थी।

संगीता ने तड़प कर अविजित को देखा था। श्यामा ने निगाहें झुका ली थीं।

"शुभा, जाग्रो ग्रपनी पढ़ाई करो," ग्रविजित ने कहा था।

बिना कुछ समझे शुभा उठ गई थी। हमें माफ़ करना संगीता, ग्रब वह बुदबुदा उठी।

"लाओ कपड़े मैं लगा दूं," शुक्लजी ने कमरे में आकर कहा, "तुम जाकर भाई-साहब के माथे पर पट्टी रख दो। दर्द कम होने में ही नहीं आ रहा।"

"नही!" शुभा ने इतनी तेजी से कहा कि शुक्लजी सकपका गए।

शुभा ने अपने को सम्भाला और कहा, "कपड़े मैं लगा रही हूं। पट्टी आप रख दीजिए।"

"पता नहीं ऐसी हालत में बरनी कैसे जायेंगे," शुक्लजी ने कहा।

शुभा चुप रही।

"आग्रह तो कर रहा हूं मुझे साथ ले चलें। अपरिचित स्थान है अपरिचित लोग, ऊपर से रोगी देह," शुक्लजी कहते गए, "अपना आदमी साथ हो तो कुछ सुविधा तो रहे। तुम कहो न उनसे, मुझे साथ ले लें।"

शुभा ने चुप्पी नही तोड़ी।

"चलूं, भाभी से कह देखूं। उनके सिवाय दूसरा समझने वाला कौन है। मुझे तो लगता है भाई साहब प्रभा की हरकत से चोट खाकर बीमार पड़े है। हे प्रभु, क्या दिन दिखलाया है।"

"प्रभा को बीच में मत घसीटिए," शुभा ने तड़प कर कहा, "उसके कारण कुछ नहीं हुआ है।"

"फिर किसके कारण हुआ है?" शुक्लजी ने लालायित स्वर में पूछा।

शुभा की गरदन झुक गई।

"कारण···भला क्या होता···बीमारी है···आ जाती है यूंही···," खालीपन में हाथ-पांव मारते हुए उसने कहा।

"प्रभु-प्रभु," शुक्लजी ने हाथ जोड़कर भक्ति-भाव से कहा, "सब प्रभु की माया है। वही देता है, वही लेता है। हम तो सेवा कर सकते है या प्रार्थना। हे प्रभु, जिस वृक्ष की छांव में इतने लोग आश्रय पाए हुए है, उसकी रक्षा करना।"

हाथ जोड़े-जोड़े शुक्लजी ने श्यामा के कमरे की तरफ़ प्रस्थान किया।

शुभा ने सूटकेस का ढक्कन बन्द कर दिया।

धीमे-धीमे, समाधि-की-सी अवस्था में वह उठ कर खड़ी हो गई और सामने छत की तरफ़ ताकती हुई बोल उठी···

बहुत धीमे-धीमे गिरा करते हैं देवदार के दरख्त
हवा हैरान-सी चुप रहती है
चोटी की शाख धंस जाती है धरती के भीतर
धूल का बगूला सिर्फ़ चार फ़ुट ऊपर उठता है।
बवंडर नहीं उठा करते हर क़ब्र की गहराई से
कुछ ऊंचे दरख़्त खुद ज़मीन में समा जाते हैं
जड़ों की मिट्टी में कभी-कभी रेत मिली रहती है···

अपनी आवाज़ सुनकर उसने सुकून महसूस किया। वही सुकून जो कभी संगीता

की तरह गाकर महसूस करना चाहा था।

पाँव उठाकर वह सूटकेस पर खड़ी हो गई। हाथ आगे बढ़ा कर अपने स्वर के उतार-चढ़ाव को सम्बल की तरह थाम लिया। पहले से अधिक नाटकीय भावात्मकता के साथ वही पंक्तियाँ दुहरायीं। लगा उसके पैरों के नीचे की धरती धीरे-धीरे ऊपर उठ रही है। उसकी आवाज के दबाव से खालीपन नीचे बैठ रहा है और एक नई धरती उभर कर ऊपर आ रही है, जिस पर खड़े रह कर हर शून्य को भरा जा सकता है।

आत्म-विभोर होकर एक बार फिर उसने नाटक की पंक्तियां गुनगुनाई और उसी धरती पर खड़े-खड़े अलमारी के उपर से एक और खाली सूटकेस नीचे उतार लिया।

डाक्टर जैन ने उसे बम्बई नाट्य-फ़िल्म विद्यालय में दाखिला दिलवाने का आश्वासन दिवा है। उनका कहना है उसके अन्दर एक महान कलाकार छिपा हुआ है।

वह तो बस इतना जानती है कि उसके अन्दर एक ज़ेहनी कायर छिपा हुआ है। ऐसा कायर जो अपनी ज़ेहनियत के दबाव से हर सफ़ेद सतह का स्याह पहलू और हर स्याह ज़मीन का सफ़ेद पहलू देखते रहने पर मजबूर है।

हर ज़ेहनी कायर होता है और···कलाकार भी ? हां···शायद···कभी-कभी···

आदमी या धरती पर जी सकता है या पर्दे पर। कलाकार के नक़ाब से बेहतर पर्दा कहां मिलेगा ?

शुभा ने सूटकेस खोल लिया। एक-एक करके अपने कपड़े उसमें सहेजने लगी। सहेजते-सहेजते, हाथ रोक कर वह फिर बुदबुदा उठी···

बहुत धीमे-धीमे गिरा करते हैं देवदार के दरख्त
और कभी-कभी पर्दों से उलझ कर साये बन जाते हैं···

९

"शुभा ! शुभा !" पुकारता अविजित घर में घुसा और बाहर बरामदे में ठिठक कर रह गया।

गहरे पानी में डूब रहे आदमी को तैरना न भी आता हो तब भी किसी अन्चीन्ही

इच्छा-शक्ति के सहारे वह सतह के ऊपर बह जाता है। एक बार, दो बार; तीन बार। सिर पानी से बाहर निकालता है और अनायास चिल्ला उठता है—बचाओ ! मुझे बचाओ ! मेरी इच्छाशक्ति का ह्रास हो चुका है ! फिर भी आग···बुझते-बुझते बुझती है। धधकती भट्टी को पानी डाल कर बुझाने की कोशिश करो, कुछ लपटें इधर-उधर कोनों में दुबक जाएगी। मौक़ा मिलते ही, ऑक्सीजन का छोटे-से-छोटा भभका पाते ही, लपकप ड़ेगी···जी ले जितनी देर हो सके···पांच-दस मिनट ही सही···गैस का गुब्बारा छू कर गुज़रे तो चिंदी-चिदी उड़ा कर ऊपर उछाल दें—बम के धमाके की तरह ···आवाज़ तो करेगा एक बार !

पानी की तलहटी में कही आग लगी थी, उसी ने मुझे ऊपर उछाल दिया है··· पर मैं हाथ-पांव नहीं मार सकता। पानी के उच्छृंखल बहाव के आगे समर्पण कर शांतचित्त बह भी नही सकता। बस सिर ऊपर निकाल कर चीख सकता हूं--बचाओ ! मुझे बचाओ ! मेरा हाथ थाम कर बाहर खींच लो। ज़ोर तुम्हें लगाना होगा। मैं नहीं लगा पाऊंगा। ज़ोर मुझमें बचा नहीं। फिर भी आग बुझते-बुझते बुझती है···तुम खीच कर देखो तो एक बार, मैं खिचा चला आऊंगा। मेरी इच्छा शक्ति का ह्रास हो चुका। फिर भी···

"शुभा ! शुभा !" आर्त कण्ठ से अविजित ने पुकारा और बरामदे में खड़ा इन्तजार करता रहा कि अभी शुभा बाहर आकर देखेगी, वह बरनी से लौट आया। सहारा देकर वह उसे भीतर ले जाएगी···

"अरे तुम ! इतनी जल्दी कैसे लौट आए।"

शुभा नहीं, यह श्यामा है।

ये शब्द श्यामा के हैं पर यह काया ? भीतर से दौड़ कर जो बाहर आई है, यह क्या श्यामा है ? पर श्यामा तो आज तक कभी दौड़ी नहीं।

कोई और दिन होता तो अविजित आगे बढ़ कर उसे थाम लेता; लड़खड़ा कर कहीं गिर न पड़े। अविजित का सहारा लिये बिना वह कब चली है ? और इतनी तेज़ तो सहारे से भी नहीं चली। सहारे से चलो तो गति नहीं, सिर्फ़ संतुलन हाथ लगता है, जो सहारा छूटते ही पहले से भी ज़्यादा बुरी तरह बिगड़ जाता है।

दौड़ती हुई श्यामा आगे बढ़ी है और उसने अविजित की बांह थाम ली है।

"तुम्हारा बदन तो तवे की तरह जल रहा है," घबराए स्वर में उसने कहा, "बुखार है क्या ?"

"शुभा से कहो मैं लौट आया," अविजित ने कहा है।

"चलो, भीतर चलो।" श्यामा उसे ठेल रही है।

"शुभा को बुलाओ !" हठीले बच्चे की तरह अविजित जड़ खड़ा है।

"बुलाती हूं···भीतर तो चलो।"

"शुभा को बुलाओ !" बार-बार वह दुहरा रहा है।

श्यामा समझ गई कुछ भी कहना बेकार है, उसकी आवाज़ अविजित के कानों

तक पहुंच नहीं रही ।

"शुक्लजी !" घबरा कर श्यामा ने आवाज़ लगाई और याद आया कि शुक्लजी है कहां, वह तो अविजित के साथ बरनी गए थे ।

"शुभा···को···बुलाओ···" कहता अविजित धम से वहीं फ़र्श पर बैठ गया।

"शुक्लजी नहीं आए तुम्हारे साथ ?" श्यामा ने पूछा ज़रूर पर साथ ही जोर से आवाज़ भी लगा उठी—"खोखी ! ओ खोखी ! जल्दी बाहर आ !"

हां, अविजित से इस वक़्त कुछ भी पूछना बेकार है । वह सुन नही रहा, एक बड़बड़ाए जा रहा है—शुभा को बुलाओ···शुभा···को···बुलाओ···

पल भर में खोखी बाहर आ गई ।

"देख तो तेरे पिता जी को क्या हो गया। तिलक को बुला। सहारा देकर भीतर ले चल । डाक्टर माचवे को फ़ोन कर । जल्दी-जल्दी !" श्यामा एक-के-बाद-एक आदेश देती चली गई ।

खोखी घबरा गई । "शुक्लजी," उसने कहा, "शुक्लजी कहां है ?"

"उल-ई ! उल-ई !" उसके पीछे खड़ा सुधांशु भी पुकार उठा ।

"मर गए शुक्लजी ! मैं जो कह रही हूं इन्हें अन्दर ले चल । तिलक को बुला न !" श्यामा ने बेकाबू होकर कहा ।

तिलक की मदद से खोखी किसी तरह अविजित को उठाकर भीतर लिवा ले गई और बिस्तर पर लिटा दिया ।

"शुभा !" उसने पुकारा ।

"पिताजी," खोखी ने मधुर स्वर में कहा ।

"शुभा, मैं लौट आया !"

"हां, पिताजी, मैं जानती थी आप लौट आएंगे," खोखी ने कहा ।

"शुभा !" अविजित कहता गया, "मैं संगीता से मिलने जाऊंगा ।"

"हां, पिताजी ।"

"कौन हो तुम ?" सहसा उसके चेहरे हर आंखें गड़ा कर अविजित ने डपट कर पूछा ।

"मैं शुभा हूं पिताजी," डरते-डरते खोखी ने कहा ।

"नहीं, तू खोखी है । शुभा को क्यों नहीं बुलाते तुम लोग ।"

"शुभा घर पर नहीं है । अभी आ जाएगी," श्यामा ने कहा, "सोने की कोशिश करो । डाक्टर माचवे आते ही होंगे ।"

क्षण भर को उभरी वर्तमान की पहचान फिर मिट गई ।

"शुभा !" अविजित ने पुकारा और हर पल पुकारता ही चला गया ।

"घर पर नहीं है," कह-कह कर श्यामा थक गई और आखिर सच बतलाने

पर मजबूर हो गई।

"शुभा को डाक्टर जैन बम्बई ले गये हैं। वहां नाटक और फिल्म…"

"शुभा डाक्टर जैन के साथ भाग गई!" तूफ़ान में टूट कर गिरने पेड़ की तरह तड़प कर अविजित ने कहा।

"क्या कह रहे हो!" स्तम्भित श्यामा ने बाधा दी, "डाक्टर जैन उसके पिता समान हैं।"

"पिता समान!" अविजित ठठा कर हंस दिया, "पुरुष और पिता समान!"

वह इतनी देर तक हंसता रहा कि श्यामा के शरीर के रोंगटे खड़े हो गए।

"ऐसे हंस क्या रहे हो?" उसने कहा, "डाक्टर जैन की उम्र…"

"मेरी उम्र से कम नही।"

"हां।"

"मेरी उम्र…" अविजित की हंसी रुक गई। वह मुर्दे की तरह निष्प्राण पड़ा रहा। नेपथ्य से आती आवाज में फिर उसने धीमे से कहा. "संगीता के बाप की क्या उम्र रही होगी?"

"प्लीज़," श्यामा ने कहा, "वह सब मत सोचो।"

"मत सोचो कहने से कैसे चलेगा। सोचना होगा। तुम कहो, वह सब कहो मत, सिर्फ़ सोचो।"

"प्लीज, इतना बोलो मत। बुखार तेज है। खोखी, बर्फ़ ले कर आ। सिर पर पट्टी रखनी है।"

"सोचने से दिमाग़ में मवाद बनती है," अविजित कहता गया, "दिमाग़… आदमी का दिमाग़…जानती हो क्या होता है दिमाग़? फोड़ा। धीरे-धीरे पकता, अहिस्ता-अहिस्ता सड़ता फोड़ा। जितना सोचोगे उतनी सड़ांध उठेगी। पूरा पकेगा नही तो फोड़ा फूटेगा कैसे?"

श्यामा ने चुपचाप उसके सिर पर बर्फ़ की थैली रख दी है।

"मवाद पलता है तो गिल्टियां निकलती हैं। शुक्ल जी ने कहा, नहीं-नहीं भाई साहब, यह प्लेग नही है…"

"क्या कह रहे हो?"

"मै रात के अंधेरे में उठा…घुप! तीन अंगुल चौड़ा अंधेरा…गले में निकली गिल्टियों जैसी ठोकरें…डाक्टर जिस तरफ़ था मैं ठीक उसकी उल्टी तरफ़ चला… शुक्ल जी बोले, नहीं-नही, भाई साहब, बहम मत पालिए, यह प्लेग नहीं है…कहो मत… सिर्फ़ सोचो…एक बार कह दिया तो बचाव के सब रास्ते बन्द! मैंने नही कहा…एक बार भी नही कहा, बोलो, कब कहा?"

"क्या हो गया है तुम्हे!"

"बहम। सिर्फ़ बहम। मैं कह रहा हूं, जिधर डाक्टर था मैं उसके ठीक उल्टी तरफ़ जंगल में बढ़ा। जगल का अन्धेरा, उफ़, भूख से भी गहरा! हां…भूख कहां

लगती है, जानती हो न संगीता।"

"चुप रहो। प्लीज चुप रहो।"

"भूख आंतों में नही लगती, आदमी के···"

"प्लीज़ कुछ मत कहो। चुप रहो!" श्यामा चीख़ पड़ी।

"यह डिलीरियम नहीं, सच है, संगीता।"

"मैं संगीता नही हूं।"

"संगीता!" फिर भी अविजित ने कहा।

"नहीं! मै श्यामा हूं, श्यामा, श्यामा···"

"चुप रहो, मम्मी," खोखी ने डपट कर कहा, "बार-बार दुहराओ मत।"

वह डर रही थी, कहीं अविजित के साथ श्यामा भी डिलीरियम में न पहुंच जाए।

"मुझसे बोलिए पिताजी," अविजित के ऊपर झुक कर उसने कहा, "मैं शुभा हूं।"

"संगीता!" अविजित ने पुकारा।

"शुभा! आप शुभा को पुकार रहे थे। मैं शुभा हूं," खोखो ने ज़ोर दे कर कहा।

"संगीता!" अविजित ने पुकारा।

असमंजस में पड़ी खोखी चुप हो गई। एक बार सोचा, कह दे, हां, मैं संगीता हूं। पर···अभी जो अविजित ने कहा था···नही···नही कह सकती···

उसने नहीं देखा, उसके पीछे छिपा खड़ा सुधांशु धीरे-धीरे आगे बढ रहा है···

"संगीता!" अवितिज पुकार रहा है।

सुधांशु अविजित के पास पहुंच गया।

"ईता," सुधांशु ने कहा।

"ईता," अविजित ने दुहराया।

"ईता," सुधांशु ने किलक कर कहा और उसका हाथ अविजित के तपते हाथ पर जा टिका।

"ईता," अविजित ने सुधांशु की आवाज़ में आवाज़ मिला कर कहा।

झटके के साथ खोखी अपनी जगह से उठी और दौड़ती हुई कमरे से बाहर निकल गई। बरामदे की दीवार मे बनी अविजित की अलमारी से सिर टिकाकर ज़ोर से रो दी।

अविजित के माथे पर बर्फ़ की थैली रखे बैठी श्यामा, निर्वाक-निस्पंद उन दोनों को देखती रही···

क्षण भर के लिए उसकी आंखो को वही भय मथ गया जिससे खौफ़ खाकर खोखी बाहर भागी थी पर···धीरे-धीरे···

"ईता···" सुधाशु कह रहा है।

"ईता···" अविजित दुहरा रहा है।

सुधांशु का हाथ अविजित के हाथ में है···

सुधांशु, अविजित, श्यामा, तीनों एक दायरे में हैं, एक साथ···

श्यामा के ओठों पर ममता भरी मुस्कराहट उभरी और खिलती चली गई। ऐसी मुस्कराहट शायद ही पहले कभी किसी ने उसके चेहरे पर देखी थी।

डॉक्टर माचवे वहा पहुंचे तो हैरत-भरी नज़र से श्यामा को देखते रह गए··· अविजित का परीक्षण उसके कहने पर शुरू किया।

काफ़ी झिझक के बाद, डॉक्टर माचवे ने अपना मत ज़ाहिर किया था—सेग्बेरल मलेरिया!

पहले पूछा था, "घर पर और कौन है?"

"मैं और खोखी," श्यामा का उत्तर सुनकर विमूढ़-से रह गये थे।

"बस। और लोग कहां हैं? प्रभा, शुभा और वह जो आपके साथ रहते हैं··· शुक्लजी?"

"सब बाहर गए हैं।"

"तब ऐसा करते हैं, श्यामा जी, देखिए घबराने की कोई बात नहीं है पर आप खुद बीमार रहती है, घर पर दूसरा आदमी कोई है नहीं तो···मेरे ख़याल से बेहतर यह रहेगा कि हम इन्हें अस्पताल में दाखिल कर ले। वहां देखभाल ज्यादा आसानी से हो सकेगी," डाक्टर माचवे ने बात को खूब सम्भालकर श्यामा से कहा था।

श्यामा जानती है, अविजित को अस्पतालों से सख्त नफ़रत है। उसने मना कर दिया।

"पर इन्हें पूरी नर्सिंग की जरूरत है," डाक्टर माचवे ने विरोध किया।

"मैं कर लूंगी।" खोखी बोली।

"पर···अकेली तुम···"

"मैं भी हूं," श्यामा ने कहा।

डॉक्टर माचवे चकित भाव से उसे देखते रहे, "पर आप तो खुद···" उन्होंने कहा।

"मैं ठीक हूं, डॉक्टर माचवे। आप इन्हें देखिए, क्या हुआ है?"

"देखिए श्यामा जी, यूं तो मलेरिया है पर तेज़ बुखार में सफ़र करने की वजह से बीमारी बढ़ गई है और···"

"दिमाग़ी हालत बहुत खराब है," श्यामा ने वाक्य पूरा कर दिया। "और उसका इलाज अस्पताल से बेहतर घर पर हो सकता है, नहीं?"

"आपकी बात ठीक है पर जब गर पर कोई ज़िम्मेदार आदमी नहीं है तो···"

"मैं हूं न, डाक्टर माचवे, आप बार-बार मुझे क्यों भूल जाते है।"

डॉक्टर माचवे लज्जित हो उठे थे। "नहीं-नहीं, भूल नही रहा," उन्होंने कहा था, "मैं तो सिर्फ़ आपकी परेशानी कम करने के लिए एक साथी खोज रहा था। ऐसा करते हैं, दिन में आप देख लें, रात के लिए मैं नर्स का इन्तज़ाम कर देता हूं।"

श्यामा राज़ी हो गई।

तीन दिन बीत चले···

"इतनी बीमारी में तुम वहां से चल क्यो पड़े?" श्यामा अविजित से पूछ रही है। कई बार पहले भी पूछ चुकी। अविजित ने जवाब नही दिया। पता नहीं उसकी बात सुनी भी या नहीं। उसके पास अपने से कहने को इतना कुछ है कि दूसरों की बातें शोर को चीर कर उस तक पहुंच नही पाती।

"शुक्लजी तुम्हारे साथ क्यों नहीं आए?" श्यामा पूछ रही है।

अविजित जवाब नहीं दे रहा।

एक दिन और बीत रहा है···

"तुम्हें पता है बरनी के जंगल में कितने बड़े-बड़े मच्छर होते हैं?" अविजित कह रहा है।

"कितने?"

"शुक्ल जी से भी बड़े···इतने," दोनों हाथों में दूरी बना कर वह बतला रहा है।

"शुक्ल जी हैं कहां?" श्यामा नाम को थामे ले रही है।

"मैं जंगल में भटक गया। मैंने कहा जब तक यहां का एक-एक मच्छर मारा नहीं जाता, मैं घर नहीं लौटूंगा। शुक्ल जी बोले, नहीं-नहीं, भाई साहब, यहां कोई डाक्टर नहीं है, आप घर लौट जाइए···"

"शुक्ल जी वहीं बरनी में हैं?" श्यामा ने बात का सिरा पकड़ना चाहा।

"बरनी? बरनी फ़ार्म···सौ बीघा ज़मीन···सौ बीघा ज़मीन कितनी होती है?"

"बहुत," श्यामा ने कहा।

"एक बीघा से सौ गुना। दो बीघे से पचास गुना···तीन बीघे···"

"हां, बिल्कुल ठीक कह रहे हो तुम। अब आराम करो।"

"सिंघानिया जी जमीन बेचना चाहते हैं।"

"ठीक तो है। यहां बैठे देखभाल जो नहीं होती।"

"दस रुपये बीघे के हिसाब से किसी परदादा ने खरीदी थी।"

"अच्छा।"

"काजल कहती थी, जो खेती करेगा, ज़मीन उसी को मिलेगी।"

"मिलनी तो चाहिए। पर जिसकी ज़मीन है वह भला क्यों देगा।"

"सिंघानिया जी ने कहा था, सौदा खूब ऊंचा पटाना।"

"बिक गया फ़ार्म ?"

"हजार की चीज़ लाख में बिके, कैसा लगता है।"

श्यामा चुप रही।

सहसा अविजित ने उसका हाथ पकड़ कर मसल डाला। शायद वह उसे दीख गई थी।

"बोलो, कैसा लगता है ?" उसने कहा।

"मेरी चीज तो है नहीं," श्यामा ने मधुर स्वर मे कहा, "जिसकी है, उसे अच्छा ही लगेगा।"

"सिंघानिया जी खुश हो जाएंगे।"

"हाँ।"

अविजित कुछ देर चुप रहा, फिर बोला, "मेरी ज़िन्दगी का मक़सद क्या है ?"

श्यामा को उसकी बात में फिर खतरे की गन्ध आने लगी।

"इतना बोलो मत," उसने कहा, "डाक्टर ने आराम करने को कहा है।"

"आराम !" अविजित पहले दिन वाली उन्मत्त हसी हंस दिया।

"मेरी जिन्दगी का मक़सद है···" उसने कहा, "···मकसद है कि सिंघानिया जी खुश रहें।"

"प्लीज़।"

"मैं जान की बाजी लगा दूंगा। जो कुछ आज तक पाया है होम कर दूगा पर सिंघानिया जी को खुश रखूंगा···क्योंकि यही मेरी जिन्दगी का अकेला मकसद है," कह कर अविजित अट्टहास कर उठा।

"तो फ़ार्म बिक गया ?" श्यामा ने चिल्ला कर पूछा।

"शुक्ल जी बहुत भले आदमी हैं," हंसी रोक कर अविजित ने कहा।

"इतनी बीमारी में तुम्हें अकेले कैसे आने दिया. साथ क्यों नही आए ?"

"सचमुच भले आदमी हैं, बोले, भाई साहब आप फ़िक्र न करें मैं सब सम्भाल लूंगा।"

"अब और वहां क्या सम्भालना है ?"

"नम्बर दो का पैसा है, कैश मिलेगा।"

"बिक गया फ़ार्म ?"

"एक लाख रुपया कैश।"

"एक लाख रुपया कैश है तुम्हारे पास ? कहां रखा है।"

"बिल्ली का स्वधर्म है चूहे को खाए," अविजित ने कहा।

"रुपया कहां है, ब्रीफ़केस में ?" श्यामा व्यग्र हो उठी।

"स्वधर्म है इसीलिए जायज़ है ?"

"खोखी, ग्रो खोखी !" श्यामा ने आवाज़ लगाई, "पिताजी का ब्रीफ़केस देख कहां रखा है, लेकर ग्रा मेरे पास।"

उसकी ग्रावाज से चौक कर ग्रविजित ने उसकी तरफ़ देखा।

"मै तुमसे पूछ रहा हूं," सख्ती से उसने कहा, "जायज़ है ?"

खोखी आकर पास खड़ी हो गई। खाली हाथ।

"पिताजी का ब्रीफ़केस ला जल्दी," श्यामा ने कहा।

"जवाब क्यों नहीं देतीं तुम मेरी बात का ?" ग्रविजित ने चीख कर कहा।

"किस बात का ?"

"बिल्ली चूहे को खाए यह जायज है ?"

खोखी ने ब्रीफ़केस लाकर श्यामा की गोद में रख दिया। तत्परता से उसने उसे खोला ग्रौर भौंचक बोल पड़ी, "कहां···इसमें तो सिर्फ़ कागज है। रुपया कहां रखा है?" परेशानी में उसने ग्रविजित का हाथ पकड़ कर हिला दिया।

"क्या है ?" ग्रविजित ने चौक कर कहा।

"रुपया ! रुपया कहां रखा ?"

"रुपया ! रुपया ! रुपया !" ग्रविजित भनक कर उठ बैठा ग्रौर बेक़ाबू हो चीख दिया, 'जो मैं पूछ रहा हूं उसका जवाब दो।"

"क्या ?" श्यामा घबरा गई।

"जायज़ है ?"

"क्या जायज़ है ?" श्यामा ने उस सब पर ध्यान ही नहीं दिया था।

"बिल्ली का चूहे को खाना," खोखी ने जल्दी से उसके कान में फुसफुसा कर कहा।

श्यामा की समभ में कुछ नहीं ग्राया फिर भी जवाब जरूरी था। "वह तो खाएगी ही," उसने कहा।

"क्यों खाएगी ?" ग्रविजित इतनी ज़ोर से चीखा कि श्यामा रोने-रोने की हो गई।

"मुझे नही मालूम," उसने कहा।

"तो मालूम करो," ग्रविजित फिर चीखा ग्रौर निढाल बिस्तर पर गिर पड़ा।

कुछ देर की चुप्पी के बाद, ग्रत्यन्त धीमे ग्रौर थके स्वर में उसने कहा, "काजल से पूछना।" ग्रौर ग्रांखें बन्द कर ली।

श्यामा ने कुछ सुकून महसूस किया। ग्रनर्गल बोलना तो रुका। सो सकें तो खुद को भी ग्राराम मिले, घर वालों को भी। कुछ देर वह दम साधे चुपचाप बैठी रही, नींद में खलल डालने के डर से, पर खाली ब्रीफ़केस का खयाल बराबर परेशान करता रहा। ग्राखिर उससे नही रहा गया। फुसफुसा कर खोखी से पूछा, "तुझे पता है पिताजी ने

ब्रीफकेस में से रुपया निकाल कर कहां रखा है···कहां रख सकते हैं···जब से आए हैं बिस्तर पर तो पड़े हैं···अच्छा सुन, ब्रीफकेस तिलक के हाथ में तो नहीं दिया था।"

"नहीं," खोखी ने कहा, "मैंने खुद अलमारी में टिका दिया था।"

"खोल कर देखा था ?"

"नहीं।"

"फिर···कहां गया रुपया ?" श्यामा की आवाज़ अनायास ऊंची उठ गई।

अविजित ने आंखें खोल लीं। इस वक्त उसकी दृष्टि साफ़ थी।

"कैसा रुपया ?" उसने पूछा।

"वही जो बरनी फ़ार्म बेच कर मिला है—एक लाख रुपया।"

"फार्म बिक गया ?" अविजित ने हैरान होकर पूछा।

"तुम्हीं ने तो कहा था···"

"शुक्ल जी आ गए ?"

"नहीं। तुमने कहा था न फार्म बिक गया ?"

"अभी नहीं बिका। शुक्लजी बेच कर आएंगे।"

"शुक्ल जी ? वह कैसे···"

"मैं उन्हें पावर ऑफ़ अटॉर्नी दे आया हूँ।"

"यह क्या किया तुमने ?" आतंकित स्वर में श्यामा ने कहा, "किसी आदमी पर इतना भरोसा नहीं किया जा सकता !"

"किसी आदमी पर या गरीब आदमी पर ?" अविजित ने कड़वे स्वर में पूछा।

"इतना रुपया देख कर किसी की भी नीयत बदल सकती है।"

"तब तो सिघानिया जी ने मुझ पर भरोसा करके बहुत गलती की।"

"वह···बात···और है।"

"क्यों ? और बात क्यों है ?"

श्यामा चुप रही।

"बोलती क्यों नहीं। और बात क्यों है ?" अविजित की आवाज़ ऊंची हुई तो श्यामा उसे बहलाने को मधुर स्वर में कह उठी, "जाने दो। इतना परेशान मत हो। भगवान ने चाहा तो सब ठीक ही होगा।"

"भगवान !" अविजित हँस दिया, "वाह, जज सिघल ! आपका धार्मिक ज्ञान तो बहुत ऊंचे दर्जे का है। और हम-आप अलग थोड़ा ही हैं, जज सिघल। दोनों जानते हैं कि बिल्ली चूहे को खाए तो स्वधर्म और कहीं चूहा घात लगा कर बिल्ली को खत्म कर दे तो अपराध है। आखिर न्याय धर्म के खिलाफ़ तो जा नहीं सकता।"

"जूस पी लीजिए, पिताजी," बीच में खोखी ने आ कर बाधा दी।

अविजित पर कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। वह बोलता गया, "जो भगवान में विश्वास करते हैं, अच्छी तरह जानते हैं कि भगवान ने सिर्फ़ बिल्लियों को बनाया है। चूहे बेचारे तो जाने किस डार्विन की मार्फ़त पैदा हो गए, इसलिए जीत हमेशा भगवान की

होती हैं," कह कर वह बहुत मनोहारी ढंग से मुस्करा दिया।

दरवाजे से अनित्य ने पुकारा, "भाई साहब !"

"कौन ? शुक्ल जी ? आ गए। आओ-आओ," अविजित ने कहा।

"शुक्ल नही, मैं अनित्य हूँ, भाई साहब।"

"रुपया मिल गया ?"

श्यामा उठी और अनित्य की बाह पकड़ कर उसे दूसरे कमरे में ले आई।

"पांच दिन से ये सख्त बीमार है, अनित्य," उसने कहा।

"मै भाई साहब को लेने आया हूँ," अनित्य ने कहा, "संगीता से एक बार मिलना ही होगा।"

"तुम देख तो रहे हो, बिस्तर पर पड़े हैं। ऐसी हालत में कहां जाएंगे ?"

"मैंने हर कोशिश करके देख ली। संगीता मुझसे मिलने को या मेरी मदद लेने को किसी तरह तैयार नही है।"

"तुम्हें हो क्या गया है, अनित्य," श्यामा ने दुखी स्वर में कहा, "तुम्हारे भाई साहब की जान जोखिम में है और तुम्हे संगीता की पड़ी है।"

"जोखिम सगीता से मिलने में भी है और न मिलने में भी, भाभी।"

"मैं संगीता की बात नहीं कर रही। तुम्हें दीख नहीं रहा, ये डिलीरियम में हैं।"

अनित्य कुछ देर चुप रहा, फिर धीमे से बोला, "इसके सिवाय उम्मीद भी क्या की जा सकती थी।"

"क्या मतलब ? तुम्हारा क्या खयाल है···"

"जो तुम्हारा खयाल है, वही मेरा भी खयाल है भाभी। तुम न खुद को धोखा दे सकती हो न मुझे।"

"डॉक्टर माचवे का कहना है, इन्हें सेरबेरल मलेरिया है।"

"उनका डाइगनोसिस ग़लत नही हुआ करता," अनित्य ने सपाट स्वर में कहा।

"अगर इन्हे कुछ हो गया !" श्यामा विह्वल हो उठी।

अनित्य चुप रहा।

श्यामा ने उसका हाथ कस कर पकड लिया। "जब से आए हैं संगीता का ही नाम ले रहे है," उसने कहा।

अनित्य चुप रहा।

"तुम मेरी बात का यकीन क्यों नही कर रहे," दर्द से कराह कर श्यामा ने कहा।

"मैं चलूंगा, भाभी," अनित्य ने कहा।

"सुनो," श्यामा ने उसके कन्धे थाम लिये, "मुझे ले चलो संगीता के पास।"

"वह तुमसे नहीं मिलेगी और न मुझसे।"

"फिर तुम कहां जा रहे हो ?"

"बाहर।"

श्यामा ने कहना चाहा, मत जाओ, अनित्य, सब चले गए एक-एक करके··· स्वर्णा···प्रभा···शुभा···शुक्लजी···अब तुम ? मैं बहुत अकेली हूं, मत जाओ तुम, अनित्य !

पर नहीं ! अनित्य रहा तो अविजित···अनित्य के रहते अविजित कभी डिलीरियम से बाहर नहीं आ सकेगा।

श्यामा ने हाथ उसके कन्धों पर से हटाकर सीने पर बांध लिये। चन्द क़दम पीछे हटकर दृढ़ स्वर में बोली, "ठीक है, अनित्य। जाओ।"

अनित्य चौंक उठा। मुंह उठा कर उसने श्यामा की सख्त मुद्रा को पढ़ा। उसके चेहरे से अविश्वास मिला अचरज नहीं मिटा। एक भूला-बिसरा, बहुत पुराना, स्नेहातुर बचपन वहां लहक आया। होश सम्भालने के बाद से शायद पहली बार, अनित्य ने ठिठक कर किसी से पूछा, "जाऊं ?"

श्यामा की नज़रों से कुछ छिपा नहीं था। वह अच्छी तरह समझ रही थी कि उसके हां कहने पर, यह जाना अनित्य का अंतिम जाना होगा।

उसने आंखें बन्द कर लीं। हाथ छाती पर बांधे रही।

"हां, जाओ," सख्त सपाट स्वर में उसने कहा।

"शुक्ल जी !" अन्दर कमरे से अविजित की आवाज़ सुनाई दी, "शुक्ल जी !"

"हां, पिताजी," खोखी कह रही है।

"शुक्ल जी," अविजित दुहराये जा रहा है, "शुक्ल जी !"

श्यामा ने आंखें खोलीं।

देखा, खाली कमरे के एक कोने में बैठा सुधांशु कैंची से कागज़ काट रहा है। आजकल यही उसका काम है और यही खेल।

छोटे-बड़े कागज़ों पर कच-कच कैंची चल रही है। कागज़ कट रहा है, टेढ़ा मेढा, बेतरतीब, बिला वजह। कट-कट कर नीचे गिर रहा है। और फिर कट रहा है। कच-कच कैंची चल रही है···

वक़्त खिसक रहा है···कटते कागज की कतरन की तरह।

श्यामा आगे बढ़ी। बांह पकड़ कर उसने सुधांशु को उठाया। दूसरे हाथ में कैंची और कागज़ की कतरनें सम्भालीं और उसे ले जाकर अविजित की बगल में बिठला दिया। कैंची हाथ में आई तो सुधांशु तन्मय होकर कागज़ कतरने लगा।

"शुक्ल जी !" अविजित ने कहा।

"उलई !" चौंककर सुधांशु ने कहा और कमरे में चारों तरफ निगाह दौड़ा दी।

"नई," उसने कहा, "उलई नई।"

"शुक्ल जी," अविजित ने फिर भी कहा।

सुधांशु अविजित के बिल्कुल पास सिमट आया और उसके ऊपर झुक कर बोला, "उलई नई !"

अविजित के बदन की गरमी महसूस करके वह खुश हो हंस दिया। फिर खूब जमकर बिस्तर पर बैठ गया और तेजी से कागजों पर कैंची चलाने लगा। कागज की कतरनें अविजित के ऊपर, आस-पास गिरने लगी। सुधांशु ने देखा और किलक-किलक कर हंसने लगा।

अविजित की आंखे कागज़ की बिला वजह, टेढ़ी-मेढ़ी, बेतरतीब कतरनो की बौछार पर जा टिकी।

वह भी हंस दिया।

वक़्त कटता रहा···

कागज़ की कतरन की तरह···

···टूटता रहा···